व्यवहारायुर्वेद

विषय सूची



विषय	पृष्ठ
अध्याय १	
सामान्य विचार	१
वर्तमान भारतीय न्यायसंस्था	२
फौजदारी-न्यायालय का कार्य तथा अधिकार	३
फौजदारी न्यायसंस्था	४
फौजदारी न्यायालयों की कार्यपद्धति	७
साक्षी के प्रकार	,,
शपथ	,,
न्यायालय में साक्ष्य लेने की विधि	८
लिखित प्रमाण	१०
चिकित्सक के प्रमाणपत्र	,,
चिकित्सक द्वारा प्रेषित प्रत्यक्ष परीक्षा का लिखित विवरण	११
मरणोन्मुख रोगी का बयान	१२
विशेषज्ञ की सम्मति	१३
गवाह द्वारा न्यायालय में दिये पिछले बयान	१३
सिविल सर्जन अथवा किसी अन्य चिकित्सक की साक्षी	१४
रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट	,,
साक्षी देते समय ध्यान में रखने के सामान्य नियम	,,

विषय	पृष्ठ
अध्याय २	
व्यक्ति की पहचान	१७
परीक्षा के लिये लिखित सम्मति	,,
व्यक्ति की पहचान में सहायक बातें	१८
जाति	,,
धर्म	२०
लिङ्ग	२२
शिशुओं में लिङ्गनिर्णय	,,
युवावस्था में लिङ्गनिर्णय	,,
मृत्यूत्तर लिङ्गनिर्णय	२३
आयु	२४
आयु का निश्चयात्मक अनुमान	२७
भ्रूण की आयु	२८
नवजात बालक की आयु	२६
बालक की आयु	,,
युवावस्था की आयु का निर्णय	३३
सामाजिक अवस्था	३४
वर्ण तथा आकृति या शरीरसौष्ठव	,,
चलने का ढङ्ग	,,
स्वभाव और आदतें	,,
केश	,,
गोंदने के चिह्न	३५

विषय	पृष्ठ
पदचिह्न	३५
शारीरिक विकृतियाँ	,,
व्यावसायिक चिह्न	३६
व्रण–वस्तु	,,
हस्त–लेख	,,
वस्त्र और आभूषण	३७
व्याख्यान और स्वरसम्बन्धी विशेषतायें	३७
बुद्धि स्मृति एवं शिक्षासम्बन्धी ज्ञान	,,
दाँत	,,
आँखें	,,
कौमार्य अथवा पूर्वसन्तानोत्पत्ति के चिह्न	३८
व्यक्ति के चित्र	,,
व्यक्ति की पहचान के लिये आवश्यक प्रकाश	,,
अध्याय ३	
मृत्यूत्तर परीक्षा	३९
चिकित्सक द्वारा मृत्यूत्तर परीक्षा का विवरण	४०
रक्त से रञ्जित वस्त्र की परीक्षा	४४
भौतिक परीक्षा	,,
रासायनिक परीक्षा	४६
सूक्ष्मदर्शक-यन्त्र द्वारा परीक्षा	४८
अन्य परीक्षाएँ	,,
अन्य परीक्षाएँ	४९
शुक्र के धब्बों की परीक्षा	५०

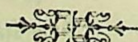
विषय	पृष्ठ
अध्याय ४	
न्यायालय की दृष्टि से मृत्यु का विचार	५२
मृत्यु के ३ मुख्य कारण	५३
हृत्कार्यावरोध	,,
श्वासावरोध	५४
मूर्च्छा तथा मस्तिष्क-कार्यावरोध	५७
आकस्मिक मृत्यु	५८
मृत्यूत्तर शारीरिक परिवर्तन	५९
रक्तसंवहन का लगातार तथा पूर्णतया रुकना	६०
श्वास-प्रश्वास का लगातार तथा पूर्णतया रुक जाना	,,
मृत्यूत्तर पेशीगत आकस्मिक सङ्कोच	६१
त्वचा में परिवर्तन	६२
नेत्रों में परिवर्तन	६३
शरीर का ठंडा होना	,,
मृत्यूत्तर पेशियों में परिवर्तन	६५
मृत्यूत्तर अधस्त्वक् नीलिमा	६७
कोथ तथा सड़न	६९
शारीरिक मेद में परिवर्तन	७३
शरीर का शुष्क होना	७४
मृत्यु का समय	,,
अध्याय ५	
पिच्चित अभिघात तथा अन्य सद्योव्रण	७५
पिच्चित अभिघात	,,

विषय	पृष्ठ
घृष्टव्रण	७८
सद्योव्रण	७९
शरीरावयवों के क्षत	८४
शिर	८५
मुख	८७
ग्रीवा	८८
वक्ष	८९
मेरुदण्ड	९०
उदर	९१
बाह्य जननेन्द्रिय	९२
ऊर्ध्व और निम्न शाखायें	९३
क्षत युक्त व्यक्ति की परीक्षा का विवरण	,,
मृत्यु का कारण	९६
अनेक आघातों में से किससे मृत्यु हुई ।	९८
मृत्यु के पूर्व और मृत्यूतर किये हुए क्षतों में भेद	९८
आत्मकृत, परकृत-या दुर्घटना जन्य क्षतों में भेद	९९
अध्याय ६	
श्वासावरोधजन्य मृत्यु	,,
फांसी	१००
फांसी द्वारा मृत्यु के कारण	,,
अध्याय ७	
कण्ठ पीडन या गला घोटने से मृत्यु	१०६

विषय	पृष्ठ
दम घुटना	१११
डूबना	११४
अध्याय ८	
अनशन, शीत और उष्णता के कारण मृत्यु	११९
शीत के कारण मृत्यु	१२३
उष्णता के कारण मृत्यु	१२४
अध्याय ९	
अग्नि से जलने और दागने से मृत्यु	१२८
विद्युत्पात और विद्युत्-स्पर्श से मृत्यु	,,
विद्युत्पात	१३४
विद्युत्-स्पर्श	१३५
अध्याय १०	
नपुंसकता और वन्ध्यात्व की परीक्षा	१३६
कौमार्य की परीक्षा	१३८
गर्भिण्यवस्था	१४०
अध्याय ११	
बलात्कार	१४४
अध्याय १२	
अस्वाभाविक मैथुनसंबन्धी अभियोग	१५०
गुदमैथुन	,,
हस्तमैथुन	१५२

विषय	पृष्ठ
एक स्त्री का दूसरी स्त्री के साथ मैथुन	१५२
पशु मैथुन	,,
अध्याय १३	
गर्भपात	१५३
भ्रूणहत्या	१५४
अध्याय १४	
नवजात बालक की हत्या	१५६
अध्याय १५	
मानसरोग	१६७
मानसरोगों के कारण	१६८
,, ,, ,, लक्षण तथा चिह्न	१६६

विषय	पृष्ठ
उन्माद के भेद	१७७
मानसरोग-निदान	१७८
मानसिक विकृति का बहाना	१७६
मानसरोग से पीडित रोगी की व्यवस्था	१८०
अध्याय १६	
चिकित्सक और उनके सम्बन्धी कानून	१८३
APPENDIX	
उत्तर प्रदेश इण्डियन मेडिसिन एक्स की कुछ महत्त्व की धारायें	१८६



व्यवहारायुर्वेद और विषविज्ञान

प्रथम विभाग

व्यवहारायुर्वेद या न्यायवैद्यक

पहला अध्याय

सामान्य विचार

व्याख्या, पर्यायवाचक नाम तथा विषय—यह चिकित्साशास्त्र की एक शाखा है। इसके ज्ञान से न्यायालय में योग्य न्यायप्रदान में मदत होती है। समाज को सुनियन्त्रित रखने के लिये 'नीतिशास्त्र' या 'न्याय-शास्त्र' (Jurispendence) की आवश्यकता होती है। इसी को 'व्यवहारशास्त्र' भी कहते हैं। इस न्यायशास्त्र के अनुसार न्यायप्रदान में 'आयुर्वेद शास्त्र' या 'चिकित्सा शास्त्र' के ज्ञान का सम्बन्ध अनेक विषयों के साथ आता है। ऐसे चिकित्साशास्त्र से सम्बन्धित न्यायालयीय विषयों का अभ्यास जिस शास्त्र में होता है उसको 'न्याय-वैद्यक' (Judicial, Legal or Forensic Medicine) कहते हैं। इसीको 'व्यवहारायुर्वेदशास्त्र' (Medical Jurisprudence) भी कहते हैं।

व्यवहारायुर्वेदशास्त्र में दीवानी (Civil) और फौजदारी (Griminal) न्यायविभाग-सम्बन्धी अनेक विषयों का अन्तर्भाव होता है। उदाहरण के लिये सज्ञान-युवावस्था (Majority) का निर्णय किसी 'दीवानी' मामले में या बलात्कार (Rape) जैसे फौजदारी मामले में विशिष्ट अपराधी व्यक्ति के 'आयु' का निर्णय चिकित्सक के व्यावसायिक ज्ञान की सहायता से किया जाता है।

किसी व्रण के विषय में वह आत्मकृत, परकृत या अपघातजन्य है, वह व्रण घातक है या नहीं ? इत्यादि बातों का निर्णय चिकित्सक के प्रमाण पर निर्भर करता है। किसी व्यक्ति के 'आकस्मिक मृत्यु' के कारण या काल के निर्णय में चिकित्सक के ज्ञान की सहायता ली जाती है। संक्षेप में ऐसे बहुविध विषय हैं—जिनका निर्णय न्यायालयों को चिकित्साशास्त्र के ज्ञान की सहायता से करना पड़ता है—इस शास्त्र में अन्तर्भूत हैं।

प्राचीन भारतीय चिकित्साशास्त्र में चिकित्साशास्त्र के इस विभाग का उल्लेख अलग नहीं है। परन्तु न्यायसंस्था अर्थात् तत्कालीन राजसत्ता तथा चिकित्सक का सम्बन्ध अत्यन्त निकट का होना अनिवार्य माना जाता था। प्राचीन विष-विज्ञान या 'अगदतन्त्र' के अभ्यास से यह स्पष्ट होता है कि विषयुक्त अन्न-पान, विष-पीडित या विषमृत-व्यक्ति, इन विषयों का विचार चिकित्सक की सहायता से ही होता था। उस काल में भी चिकित्सक की योग्यता राजा से प्रमाणित होना आवश्यक माना जाता था। राजाज्ञा के बिना कोई चिकित्सक व्यवसाय प्रारम्भ नहीं कर सकता था। तत्कालीन राजसत्ता या न्यायसंस्था और चिकित्सक का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध देखते हुए यह स्पष्ट है कि योग्य न्यायप्रदान में चिकित्सा-शास्त्र से मदद लेने की प्रवृत्ति तत्कालीन न्यायसंस्था में भी थी।

वर्तमान भारतीय न्यायसंस्था

प्राचीन भारत में न्यायप्रदान मनु—याज्ञवल्क्यादि स्मृतियों से निर्धारित न्याय-शास्त्र के आधार पर तथा आप्तवाक्य और तत्कालीन सामाजिक रूढियों के आधार पर किया जाता था।

वर्तमान काल में भारतीय न्यायसंस्था के मुख्य दो विभाग हैं। (१) दीवानी (Civil) और (२) फौजदारी (Criminal) प्रथम विभाग में व्यक्तिगत अधिकार या संपत्ति इत्यादि के विषय में विचार किया जाता है। द्वितीय विभाग में वर्तमान कानूनों के अनुसार जिनको 'अपराध' माना जाता है ऐसे विषयों का विचार होता है। व्यवहारायुर्वेद का सम्बन्ध विशेषतया फौजदारी विभाग के साथ आता है। अतः यहाँ इस विभाग के कार्य-पद्धति पर अधिक विचार आवश्यक है।

फ़ौजदारी—न्यायालय का कार्य तथा अधिकार ।

फ़ौजदारी न्यायालय—चार प्रकार के होते हैं:—

१. उच्च न्यायालय (High Courts)

२. सेशन के न्यायालय (Courts of Session)

३. मजिस्ट्रेट के न्यायालय (Courts of Magistrates):—

(क) प्रेसीडेन्सी मैजिस्ट्रेट (Presibency Magistrate)

(ख) प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट (First class ,,)

(ग) द्वितीय श्रेणी के मैजिस्ट्रेट (Second class ,,)

(घ) तृतीय श्रेणी के मैजिस्ट्रेट (Third class ,,)

४. कारोनर का न्यायालय (Coroner's Courts)

(१) **उच्च न्यायालय**—इस श्रेणी के न्यायालयों को सब प्रकार के अपराधों पर विचार करने और सब प्रकार के दण्ड-विधान कर सकने का अधिकार होता है।

(२) **सेशन के न्यायालय**—इस प्रकार के न्यायालयों को उच्च न्यायालयों की भांति सब प्रकार के अपराधों पर विचार करने और सब प्रकार के दण्ड दे सकने का अधिकार होता है, किन्तु यदि इस श्रेणी का कोई न्यायालय किसी बड़े अपराध के लिये प्राणदण्ड की व्यवस्था करता है तो अपराधी न्यायालय में विचार करने के लिये स्वीकृत दण्ड के विरुद्ध 'अपील (Appeal)' कर सकता है और जब तक उच्च न्यायालय उस दण्ड को स्वीकृत न कर दे, तब तक अपराधी को दण्डित नहीं किया जा सकता है।

जूरी और असेसर (Jury and Assessor)—उच्च न्यायालयों और सेशन के न्यायालयों में न्यायाधीश (Judge) को किसी अपराध के सम्बन्ध में विचार करने में सहयोग देने के लिये एक जूरी (Jury) होता है और कहीं कहीं पर असेसर (Assessor) भी होते हैं।

(३) **मैजिस्ट्रेट के न्यायालय**—(क-ख) प्रेसीडेन्सी और प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट—ये नरहत्या, बलात्कार, गर्भपात इत्यादि बड़े अपराधों को छोड़कर शेष सभी प्रकार के छोटे-छोटे मामलों की सुनवाई कर सकते हैं और

किसी एक अपराध के लिये दो वर्ष तक का कारावास और एक हजार रुपये तक का अर्थ-दण्ड दे सकते हैं।

(ग) द्वितीय श्रेणी के मैजिस्ट्रेट—ये लघु अपराधों पर विचार एवं दण्ड-व्यवस्था कर सकते हैं और किसी एक अपराध के लिये छै मास तक का कारावास और दो सौ रुपये तक का अर्थ-दण्ड दे सकते हैं।

(घ) तृतीय श्रेणी के मैजिस्ट्रेट—ये किसी एक अपराध के लिये एक मास तक का कारावास और पचास रुपये तक का अर्थ-दण्ड दे सकते हैं।

(४) **कारोनर (Coroner) का न्यायालय**—आकस्मिक अथवा सन्देह-जनक मृत्यु, आत्महत्या, परहत्या इत्यादि अस्वाभाविक मृत्यु के कारणों का पता लगाने के लिये एक न्यायालय होता है जिसे 'कारोनर का न्यायालय' कहते हैं। इसका कार्य सरकार से नियुक्त 'कारोनर' नामक अधिकारी द्वारा कुछ सहायकों (Jury) के साथ किया जाता है। ये न्यायालय बम्बई, मद्रास, कलकत्ता जैसे बड़े शहरों में होते हैं।

फौजदारी न्यायसंस्था।

पुलिस विभाग तथा फौजदारी न्यायालय, इनके द्वारा इस विभाग का कार्य किया जाता है।

पुलिस की प्रारम्भिक जांच (Police Inquest) :—प्रत्येक नगर में एक पुलिस सब इन्सपेक्टर की श्रेणी का अफसर होता है जो किसी भी प्रकार की सन्दिग्ध मृत्यु, आघात तथा अन्य अस्वाभाविक घटनाओं की सूचना पाकर शीघ्रातिशीघ्र घटनास्थल पर जाता है और निकटतम स्थित मैजिस्ट्रेट को इसकी सूचना देता है। घटनास्थल पर जाकर वह पड़ोस के दो या दो से अधिक स्थानीय सभ्य व्यक्तियों के समक्ष शव अथवा मामले की जाँच करता है और मृत्यु के कारण वा घायल व्यक्ति के शरीर पर व्रण अथवा अन्य आघात के चिह्न का वर्णन करते हुए रिपोर्ट लिखता है और उसमें यह भी लिखता है कि सम्भवतः किस प्रकार के शस्त्र से आघात किया गया है। तत्पश्चात् पुलिस अफसर तथा अन्य सभ्य पुरुषों के हस्ताक्षर होते हैं।

सन्दिग्ध शवों के सम्बन्ध में पुलिस अफसर सिविलसर्जन अथवा अन्य अधिकृत चिकित्सक के पास शव को शवच्छेदन के लिये भेजता है और अपनी

जाँच द्वारा पाये हुए समस्त विषयों को लिखकर भेज देता है। सिविलसर्जन मृत्यूत्तर परीक्षा करने के बाद पुलिसके फार्म नम्बर २८६ पर अपनी रिपोर्ट लिखकर शव के साथ आये हुये कानस्टेबिल के द्वारा पुलिस अफसर को भेज देता है। और बाद में पुलिस के फार्म नम्बर ३३ पर शव का पूरा विवरण लिखकर पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास भेज देता है। तत्पश्चात् पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट उस रिपोर्ट को सम्बन्धित सबडिविजनल अफसर अथवा मैजिस्ट्रेट के पास भेज देता है। शव का किसी स्थान से सिविलसर्जन के पास अथवा अन्य किसी स्थान को शवच्छेदन के लिए भेजते समय ऋतु, स्थान की दूरी तथा अन्य बातें ध्यान में रखनी चाहिये।

बलात्कार तथा अन्य जानने योग्य अपराधों के मामलों में पुलिस सबइन्सपेक्टर व्यक्तिको सिविलसर्जन के पास स्थानीय भाषा में अपनी रिपोर्ट लिखकर भेज देता है। आक्रमण या अन्य अज्ञात अपराधों के मामलों में घायल व्यक्ति पुलिस अफसर से आज्ञा लेकर स्वयं सिविलसर्जन के पास सीधे जा सकता है या घायल व्यक्ति मैजिस्ट्रेट के न्यायालय में प्रार्थनापत्र देकर मैजिस्ट्रेट से एक पत्र प्राप्त करके सिविलसर्जन के पास परीक्षा करा सकता है।

अपराध का निर्णय करने में कठिनाइयां (Difficulties In detection of crime):—कभी कभी व्यवहारायुर्वेद-सम्बन्धी चिकित्सक को किसी व्यक्ति के परीक्षण तथा उसके मृत्यु के कारण का निर्णय करने में कठिनाइयाँ होती हैं। इसके कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) खोजने वाले पुलिस अफसर का घटनास्थल पर विलम्ब से पहुँचना—इसका कारण पुलिस अफसर का आलस्य करना या उसका किसी अन्य आवश्यक कार्य में लगा रहना हो सकता है।

(२) पुलिस अफसर का स्वयं अपने हाथों से शव को न छूना, पक्षपात करना या जाति आदि शंका के कारण आघात के चिह्नों को न तलाश करना अपितु अन्य ग्रामीण व्यक्तियों से निरीक्षण कराकर रिपोर्ट लिखना।

(३) पुलिस द्वारा अपर्याप्त सूचना का मिलना—पुलिस की रिपोर्ट बहुत थोड़ी लिखी हो जिसके कारण व्यवहारायुर्वेदज्ञ किसी ठीक निर्णयपर न पहुँच सके।

(४) असत्य एवम् षड्यन्त्र रचित साक्षी देना—ग्रामीण व्यक्तियों, मृत व्यक्ति के सम्बन्धियों एवम् उसके पड़ोसियों के भय अथवा किसी अन्य कारण से

ठीक ठीक बातों का न बताना। बहुत से ग्रामीण न्यायालय में आने से डरते हैं और जानते हुये भी विषय को गुप्त रखने का यत्न करते हैं।

(५) मृत-शरीर को छिपाने या उसको नष्ट करने की सुगमतायें—हिन्दुस्थान में चिकित्सक का प्रमाण-पत्र लिये बिना ही मृत्यु के बाद शव का दाह-संस्कार अथवा दफन करने की क्रिया शीघ्रातिशीघ्र कर दी जाती है। इसके अतिरिक्त शव को किसी समीपस्थ जंगल में छिपा दिया जाता है। अथवा उसे नदी, नहर, तालाब, आदि में फेंक दिया जाता है अथवा किसी घर की दलदली भूमि में गाड़ दिया जाता है, जिससे शव की दुर्दशा हो जाती है।

(६) शव का शीघ्रता से सड़ना—हिन्दुस्थान की उष्ण जलवायु के कारण शव शीघ्रता से सड़ने लगता है। विलम्ब के कारण और उसके परिणाम-स्वरूप सड़न का शीघ्र प्रारम्भ होना :—

(क) घटनास्थल से पुलिस के थाने का दूरी पर होना।

(ख) घटनास्थल से चिकित्सक का बहुत दूरी पर होना।

(ग) पुलिस अफसर का आलस्य करना अथवा उसका किसी अन्य आवश्यक कार्य में लगा रहना।

(घ) एक स्थान से दूसरे स्थान-पर शव को ले जाने के लिये उचित प्रबन्ध का न होना।

(ङ) सड़न को रोकने के लिये किसी प्रकार का साधन न होना।

(७) कभी-कभी कुछ लोग अपने शत्रुओं को फसाने के लिए स्वयं अपने किसी निकट-सम्बन्धी (प्रायः शिशुओं अथवा वृद्ध पुरुषों) का बध करके शत्रु के द्वार पर डाल देते हैं जिससे मृत्यु का ठीक-ठीक कारण नहीं मालूम हो पाता और अपराधी की खोज में कठिनाई उपस्थित होती है।

न्यायसम्मत-दण्डविधान—(Sentences authorised by Law) :—'इण्डियन पिनल कोड' के अनुसार निम्न दण्डविधान है। अपराध के अनुसार दण्डविधान निश्चित है और भिन्न २ फौजदारी न्यायालयों के अधिकार निश्चित हैं। अपने अधिकार के भीतर प्रत्येक न्यायालय कार्य करता है। निम्न दण्डविधान न्यायसम्मत है :—

१. प्राणदण्ड (Death)।

२. आजीवन निर्वासन (Transportation)।

३. कारावास (Imprisonment)
४. आर्थिक दण्ड (Fine)
५. कोड़ा लगाना (Whipping)

फौजदारी न्यायालयों की कार्यपद्धति

न्यायालयप्रेषित आज्ञापत्र (Subpoena)—न्यायालय में साक्ष्य देने के लिये (उपस्थित रहने के लिये) न्यायालय से साक्षी के पास 'आज्ञापत्र' (Subpoena) भेजा जाता है। इस आज्ञा का पालन न करने पर 'साक्षी' को न्यायालय से शासन हो सकता है।

साक्षी के प्रकार (Kinds of Witnesses)

सामान्य साक्षी—साक्षी (Witnesses) दो प्रकार के माने जाते हैं जो 'साक्षी' प्रत्यक्ष देखी हुई या सुनी हुई बात को कहने के लिये न्यायालय में उपस्थित होता है, उसको सामान्य साक्षी (Common Witness) कहते हैं।

विशेषज्ञ साक्षी—जो साक्षी देखी हुई या सुनी हुई बात पर अपने व्यावसायिक विशेषज्ञान के कारण अपने विशिष्ट ज्ञान के आधार पर 'साक्षी' देता है, उसको विशेषज्ञ साक्षी (Expert Witness) कहते हैं।

शपथ (Oath)

जिस समय गवाह गवाही देने के कटघरे (Witness box) में खड़ा होता है तो साधारणतया गवाही देने से पूर्व उसको शपथ लेनी पड़ती है। गजटेड मेडिकल अफसरों और सिविल सर्जनों को कटघरे में नहीं खड़ा होना पड़ता, अपितु उनको न्यायाधीश के मंच पर एक ओर कुर्सी दे दी जाती है।

शपथ तीन प्रकार की होती है—(१) प्रथम प्रकार की शपथ में ईसाई धर्म के अनुयायियों को गवाही देने से पूर्व इंजील को मस्तक पर लगाकर चूमना पड़ता है परन्तु यह स्वास्थ्यरक्षा के नियम के विरुद्ध होने के कारण अब 'स्काच विधान' के अनुसार शपथ लेनी होती है और गवाह अपना दाहिना हाथ उठाकर गम्भीर एवम् दीर्घ-स्वर में निम्नलिखित वाक्य कहता है—

..'I Swear by Almighty God, as I shall answer to God at the Great Day of Judgement that I will tell the truth, the whole truth and nothing but the truth.,

अर्थात् 'मैं सर्वशक्तिमान ईश्वरकी शपथ खाता हूँ—क्योंकि न्याय के उस महान दिवस पर मुझे ईश्वर को उत्तर देना होगा, कि मैं सत्य कहूँगा, सर्वथा सत्य कहूँगा और सत्य से अतिरिक्त कुछ नहीं कहूँगा।'

(२) द्वितीय प्रकार की शपथ में अन्य मतावलम्बियों को खड़े होकर निम्नलिखित वाक्य कहना पड़ता है --

'The evidence which I shall give to the court Shall be the truth, the whole. truth and nothing but the truth, so help me God.'

अर्थात् 'साक्षी जो कि मैं न्यायालय को दूंगा—सत्य हो, सर्वथा सत्य हो और सत्य से अतिरिक्त कुछ नहीं हो-इसलिये ईश्वर मेरी सहायता करे।'

(३) तृतीय प्रकार की शपथ गम्भीर शपथ कहलाती है। इसमें खड़े होकर निम्नलिखित वाक्य कहना पड़ता है--

'I solemnly affirm that the evidence which I shall give to the court shall be the truth, the whole truth and nothing but the truth.'

अर्थात् 'मैं गम्भीरता के साथ प्रतिज्ञा करता हूँ कि साक्षी जो कि मैं न्यायालय को दूंगा—सत्य होगी, सर्वथा सत्य होगी और सत्य से अतिरिक्त कुछ नहीं होगी।'

किसी भी तरह से गवाही दी जाय, यदि न्यायालय की ओर से वह झूठी गवाही सिद्ध हो जाय तो इस प्रकार की गवाही देने वाले व्यक्ति पर इंडियन पेनल कोड (Indian Penal code) की धारा १९३ के अनुसार झूठी गवाही देने का मुकदमा चलाया जाता है।

न्यायालय में 'साक्ष्य' लेने की विधि
(Recording of evidence)

प्राथमिक परीक्षा (Examination in chief)—गवाह का यह प्रथम परीक्षण है। इसमें जो पक्ष उसको बुलाता है—वही उसकी परीक्षा करता है। सरकारी मुकदमों में सरकारी न्यायालय का इन्सपेक्टर अथवा सरकारी बेरिस्टर और निजी मुकदमों में मुकदमा चलाने वाले व्यक्ति का वकील उससे और उसके पक्ष के गवाहों से प्रश्न करता है और इस प्रकार से मुकदमों से

सम्बन्धित मुख्य २ बातें ग्रहण कर ली जाती । इससे ऐसे प्रश्न नहीं किये जा सकते जो उत्तर देने में सहायक हों।

(२) द्वितीय परीक्षा (Cross-examination):—इसमें अपराधी (accused) का वकील मुकदमा चलाने वाले पक्ष के प्रथम परीक्षण के कथन के ऊपर वाद-विवाद और प्रश्न करता है और वह अपने पक्ष (accused) को विजयी बनाने के हेतु किसी भी प्रकार का प्रश्न कर सकता है। इसमें एकदम स्पष्ट प्रश्न किये जा सकते हैं। गवाह को प्रश्नों का उत्तर अत्यन्त सावधानी एवम् सतर्कता से देना चाहिये और वह जब तक बात को अच्छी तरह समझ न जाये, तब तक उसे प्रश्नों का उत्तर नहीं देना चाहिये। इस प्रकार के प्रश्नों को करने का कोई निश्चित समय नहीं है किन्तु न्यायाधीश सारहीन बातों को रुक सकता है।

(३) तृतीय परीक्षा (Re-examination):—इसमें मुकदमा चलाने वाले व्यक्ति या उसके पक्ष के गवाहों के उत्तर दी हुई बातों पर मुख्य परीक्षण करने वाला वकील या इन्सपेक्टर उनसे पुनः इसलिये प्रश्न करता है कि यदि द्वितीय परीक्षा के समय उनसे किसी प्रकार की विरुद्धता की बात हो तो वे उसे स्पष्ट कर दें।

(४) न्यायाधीश का परीक्षण (Judge's examination):—इसमें न्यायाधीश अपनी पंचायत (Jurors or Assesors) के सहित उनकी सहायता लेकर प्रश्न करता है। यदि कोई बात उनकी समझ में नहीं आये, तो इस प्रकार के प्रश्न वह पूर्वोक्त तीन प्रकार के परीक्षण के बीच में भी कर सकता है।

चिकित्सक की साक्ष्य (Medical Evidence)—चिकित्सक की साक्षी दो प्रकार की होती है:—मौखिक (Oral) और (२) लिखित प्रमाण (Documentary)।

(१) **मौखिक साक्षी**—सभी परिस्थितियों में मौखिक साक्षी या तो वह स्वयं आँखों द्वारा देखी हुई होनी चाहिये या फिर वह घटना से संबंधित होनी चाहिये।

(क) प्रत्यक्ष साक्षी (Eye witness) :—यदि यह वास्तविकता का निर्देश करता है तो साक्षी उस की होनी चाहिये जिसने स्वयं देखा हो, सुना हो

या उस वास्तविकता को जानता हो। लिखित की अपेक्षा मौखिक साक्षी का अधिक महत्त्व है क्योंकि इसमें प्रश्नोत्तर-परीक्षण होता है।

(ख) घटना से सम्बन्धित साक्षी (Circumstantial evidence) :—इसमें सहायक घटनायें सम्मिलित हैं अर्थात् गोली से मारने की घटना में अपराधी घटना से पूर्व पड़ोस में बन्दूक लेकर जाते हुये देखा गया होगा-बन्दूक लेकर जाते हुये देखा जाना, सहायक घटना है जो कि घटना अर्थात् गोली मारने से संबंधित है।

लिखित प्रमाण— चिकित्सक के लिखित प्रमाण निम्नलिखित हैं :—

१. स्वास्थ्य में विकृति, मृत्यु, उन्माद, आयु, कुष्ट, बलात्कार आदि के प्रमाण-पत्र।

२. चिकित्सक की परीक्षा का विवरण :—(क) आघातसम्बन्धी। (ख) मृत्यूत्तर परीक्षा का विवरण।

३. मृत्यु के समय का बयान।

४. पुस्तकों से विशेषज्ञ (ऐक्सपर्ट) की सम्मति।

५. गवाह द्वारा (न्यायालय में) दिये गये पिछले बयान।

६. सिविलसर्जन या अन्य किसी चिकित्सक की गवाही जो कि किसी न्यायालय में अपराधी के सम्मुख पिछले बार दी जा चुकी हो और मैजिस्ट्रेट द्वारा प्रमाणित हो चुकी हो।

७. रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट।

(१) चिकित्सक के प्रमाण-पत्र[1]।

चिकित्सक के प्रमाण-पत्र— चिकित्सक के वे लिखित प्रमाण-पत्र हैं जिनमें कि चिकित्सक किसी व्यक्ति की व्याधि, मस्तिष्कजन्य विकार, आयु, बलात्कार, मृत्यु, कुष्ठ आदि के संबन्ध में लिखता है।

समस्त प्रकार के प्रमाण-पत्रों को असावधानी के साथ नहीं लिखना चाहिये अपितु उन्हें बहुत संभाल कर सतर्कता एवम् सावधानी के साथ लिखना चाहिये और अन्त में सम्बन्धित मेडिकल अफसर द्वारा उचित समय में हस्ताक्षर किये जाने चाहिये। इस प्रकार के प्रमाण-पत्रों में सर्वदा तिथि, समय और परीक्षा

1. Medical certificates.

करने का स्थान लिखना आवश्यक है। रजिस्टर्ड चिकित्सक के अतिरिक्त अन्य चिकित्सकों द्वारा लिखित प्रमाण-पत्र न्यायालय में मान्य नहीं होते। इंडियन मेडिकल कौंसिल द्वारा तथा बोर्डस् ऑफ् इंडियन मेडिसिन द्वारा रजिस्टर्ड चिकित्सकों के प्रमाणपत्र न्यायसंस्था तथा किसी भी सरकारी विभाग को मान्य होते हैं।

(क) 'मृत्यु का प्रमाण-पत्र'[1]--यदि किसी रोगी की चिकित्सा करते समय रोगी की मृत्यु हो जाय तो सम्बन्धित चिकित्सक को सरकारी नियम के अनुसार मृत्यु के कारण के सम्बन्ध में प्रमाण-पत्र देना पड़ता है। इस प्रकार के प्रमाण-पत्रों में चिकित्सक को अपने अधिक से अधिक ज्ञान एवम् विश्वास के आधार पर मृत्यु का कारण लिखना चाहिये और प्रमाण-पत्र लिखने में किंचित् भी बिलम्ब नहीं करना चाहिएं, चाहे उसे रोगी के जीवन-काल की फीस न भी मिली हो प्रमाणपत्र देने के बाद यदि चिकित्सक अपनी फीस लेना ही चाहता है तो वह मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारी पर नालिश करके अपनी फीस प्राप्त कर सकता है।

यदि रोगी की मृत्यु चिकित्सक के सम्मुख न हुई हो अथवा चिकित्सक को उस रोगी की मृत्यु पर सन्देह हो तो वह प्रमाण-पत्र देने से इनकार भी कर सकता है किन्तु इस अवस्था में शव की अन्तिम-क्रिया किये जाने के पूर्व ही उसे पुलिस को सूचित कर देनी चाहिए। जब तक रोगी की पूर्णतया मृत्यु न हो जाय तब तक प्रमाण-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करना चाहिए।

(२) चिकित्सकद्वारा प्रेषित 'प्रत्यक्ष परीक्षा' का लिखित विवरण—
(Medico-Legal report)

यह सरकार द्वारा नियुक्त चिकित्सक को लिखना पड़ता है। जब कोई आकस्मिक दुर्घटना से क्षतयुक्त या खून, बलात्कार इत्यादि के सन्दिग्धावस्था में पुलिस के हाथ में जीवित या मृत व्यक्ति आता है, तब पुलिस उस व्यक्ति की परीक्षा के लिए उसे उपर्युक्त चिकित्सक के पास भेज देती है। चिकित्सक के लिखित विवरण में स्पष्टतया दो भाग होते हैं। (१) प्रथम भाग में प्रत्यक्ष शारीरिक परीक्षा का सम्पूर्ण विवरण और (२) दूसरे भाग में अपने व्याव-

1. Death certificate.

सायिक ज्ञान के आधार पर और प्रत्यक्ष परीक्षा के आधार पर विचार करते हुए मृत्यु का कारण या जीवित अवस्था में क्षत या क्षतों के 'उपकरण' क्षतों का 'काल' इत्यादि बातों के विषय में 'अनुमान' लिखना चाहिए।

जीवित अवस्था में शारीरिक क्षतों के विषय में यदि क्षत सामान्य, गम्भीर या प्राणघातक हो उसके विषय में तत्काल अनुमान न हो सके, तो रोगी को १ या २ दिन तक अस्पताल में रखने के बाद इस विषय में अपना मत प्रकट करना चाहिये। परीक्षा के लिये प्रेषित व्यक्ति के शरीर पर के वस्त्र तथा अन्य चीजें अपने पास सुरक्षित रखकर उस पर सील और अपनी मुहर कर देनी चाहिए।

चिकित्सक का यह क्षतसम्बन्धी एवम् मृत्यूत्तर-परीक्षा का विवरण तब तक प्रमाण नहीं माना जाता जब तक कि विवरण लिखने वाला मेडिकल अफसर अपराधी की उपस्थिति में न्यायालय में शपथ लेकर मौखिक साक्षी देते हुए अपनी लिखित प्रमाण के विषयों की पुष्टि नहीं कर देता। तथापि निम्नलिखित प्रमाण न्यायालय में मौखिक साक्षी दिये विना ही मान्य हैं—

(क) मृत्यु के समय का बयान।
(ख) पुस्तकों से विशेषज्ञ (ऐक्सपर्ट) की सम्मति।
(ग) रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट।

(३) मरणोन्मुख रोगी का बयान[1]

यह किसी व्यक्ति द्वारा लिखित या मौखिक वह वर्णन है जिसे सद्यः मुमूर्षु-व्यक्ति अपनी मृत्यु से पूर्व यह समझ कर लिखता है कि अब वह जीवित नहीं बच सकता अथवा उसकी स्थिति इतनी भयंकर हो कि उससे उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाय। जब उस व्यक्ति की मृत्यु के कारण की जाँच की जा रही हो तब यह बयान साक्षी मानी जाती है। मृत्यु के समय का बयान किसी मैजिस्ट्रेट के सामने और उसकी अनुपस्थिति में सुयोग्य मेडिकल अफसर के सामने लिया जाना चाहिए। पुलिस अफसर को बयान लेने का अधिकार नहीं है।

मेडिकल अफसर का यह कर्तव्य है कि क्षत-युक्त व्यक्ति का बयान लेने के लिए वह पुलिस या सब डिवीजनल अफसर को सूचित कर दे, किन्तु यदि वह मैजिस्ट्रेट के आने से पूर्व व्यक्ति को मृत्यु के सन्निकट अथवा मूर्छाऽवस्था प्राप्त

1. Dying declaration

होने के निकट समझे तो मेडिकल अफसर को स्वयं उसका बयान ले लेना चाहिये।

यदि सम्भव हो सके तो बयान देने वाले व्यक्ति को ही बयान लिखने देना चाहिए किन्तु यह असम्भव हो तो बयान देने वाले व्यक्ति के ही शब्दों में बयान लिख लेना चाहिए। बयान देने वाले व्यक्ति से निर्देशक प्रश्न नहीं करना चाहिए और बयान दे चुकने के बाद उसे पढ़कर सुना देना चाहिए तथा जहाँ तक सम्भव हो, उससे हस्ताक्षर करा लेना चाहिए। अन्य गवाह यदि उपस्थित हों तो उनके भी हस्ताक्षर करा लेना चाहिए।

मृत्यु के समय के बयान का महत्त्व—यदि बयान देने वाला व्यक्ति क्षत के कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाय तो वह बयान न्यायालय में मान्य होता है किंतु यदि वह स्वस्थ हो जाय तो उस बयान का कोई महत्त्व नहीं समझा जाता।

(४) विशेषज्ञ की सम्मति[1]

पुस्तकों में प्रकाशित निपुण व्यक्तियों (Experts) की सम्मतियाँ केवल साक्षीरूप में तभी मान्य हैं जब कि उसके लेखक की मृत्यु हो चुकी हो अथवा साक्षी देने के लिए अयोग्य हो अथवा उसका ठीक पता मालूम न हो। इस प्रकार की सम्मति न्यायालय में उस समय भी मानी जा सकती है जब कि उस निपुण व्यक्ति के स्वयं आने में आवश्यक विलम्ब एवं अत्यधिक धन का व्यय करना पड़े।

(५) गवाह द्वारा न्यायालय में दिये पिछले बयान[2]

निम्नलिखित अवस्थाओं में इस प्रकार की साक्षी मान्य होती है—

(क) यदि व्यक्ति की मृत्यु हो गई हो अथवा साक्षी देने में किसी कारण-वश असमर्थ हो अथवा उसका ठीक पता न मालूम हो।

(ख) यदि प्रतिपक्षी उसकी आवश्यकता न समझता हो।

(ग) यदि उसकी उपस्थिति अत्यधिक विलम्ब अथवा अत्यधिक व्यय किये विना न प्राप्त हो सके--जिसे कि न्यायालय अनुचित समझता हो।

---

1. Expert opinion.
2. Evidence of a witness in a previous Judicial proceeding.

(६) सिविलसर्जन अथवा किसी अन्य चिकित्सक की साक्षी[1]

यदि किसी छोटे न्यायालय में सिविल सर्जन अथवा किसी अन्य चिकित्सक की साक्षी अपराधी के सम्मुख दी गयी हो, जिसे कि द्वितीय परीक्षा का अवसर प्राप्त हो चुका हो और वह मैजिस्ट्रेट द्वारा प्रमाणित हो चुकी हो तो वह उच्चश्रेणी के न्यायालयों एवम् सेशन के न्यायालयों (Session courts) में साक्षी के रूप में मान्य होती है।

(७) रासायनिक परीक्षक की रिपोर्ट[2]

शरीर के मूत्र, मल आदि अवयवों का विश्लेषण करके रासायनिक परीक्षक द्वारा जो रिपोर्टें दी जाती हैं, उन्हें न्यायालय रासायनिक परीक्षककी मौखिक साक्षी लिये विना ही साक्षी के रूप में मानता है।

साक्षी देते समय ध्यान में रखने के सामान्य नियम

(१) धीरे धीरे, स्पष्ट एवम् ऊँचा बोलना चाहिए, ताकि मैजिस्ट्रेट, न्यायाधीश आदि उसे अच्छी तरह सुन सकें।

(२) सरल एवम् साधारण भाषा का प्रयोग करना चाहिए। चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित पारिभाषिक एवम् गूढ़ शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(३) अतिशयोक्ति एवम् विशेषणों का प्रयोग कदापि न करना चाहिए, जैसे–भयंकर आघात, असाधारण घृष्ट व्रण आदि।

(४) यथार्थ कहना चाहिए—ठीक समय, प्रत्येक क्षत को ठीक-ठीक माप और ठोस पदार्थों का ठीक भार बतलाना चाहिए।

(५) प्रश्नों का उत्तर संक्षिप्त होना चाहिए। यदि सम्भव हो तो उत्तर हाँ अथवा ना में देना चाहिए। जिन शब्दों की परमावश्यकता न हो, उनका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(६) केवल वास्तविकता को ही कहना चाहिए और जब तक पूछा न जाय तब तक किसी विषय पर अपनी सम्मति नहीं देनी चाहिए।

(७) अपने चित्त को शान्त रखना चाहिए—प्रश्न चाहे कितना ही

---

1. Deposition of a civil surgeon or any other medical Witness
2. Chemical examiner's report.

उत्तेजित अथवा अपमानित करने वाला क्यों न हो, द्वितीय परीक्षा के समय क्रोध नहीं करना चाहिये ।

(८) सतर्क रहना चाहिये :—यदि पुस्तक से कोई वाक्य पढ़ा जाय तो चिकित्सक को चाहिये कि वह पुस्तक को लेकर देखले, क्यों कि ऐसा करने के लिये उसे अधिकार प्राप्त है । उस पुस्तक को लेकर उसकी प्रकाशन-तिथि, तत्सम्बन्धित समस्त वाक्य आदि भली प्रकार पढ़ना चाहिये और वकील उस उद्धरण को कहकर जो सिद्ध करना चाहता है, उस पर गम्भीरता से विचार करके तब उत्तर देना चाहिये ।

(९) यदि कोई व्यक्ति दीवानी न्यायालय में आज्ञापत्र (Summons) लेने के बाद नियुक्त तिथि पर साक्षी देने के लिये न्यायालय में न पहुँचे तो उसकी अनुपस्थिति के कारण जो क्षति हुई है उस क्षति की पूर्ति उस व्यक्ति को करनी पड़ सकती है ।

(१०) दीवानी न्यायालय में व्यवहारायुर्वेद-सम्बन्धी गवाह अर्थात् चिकित्सक आज्ञापत्र लेने से पूर्व अपनी फीस माँग सकता है; इस प्रकार की फीस को 'काण्डक्ट मनी' (Conduct money) कहते हैं और उसका फीस न मिलने पर वह आज्ञापत्र लेने से इनकार कर सकता है अथवा आज्ञापत्र लेकर न्यायालय में पहुँच कर साक्षी देने से पूर्व शपथ खाते समय अपनी फीस मांग सकता है और तत्सम्बन्धित न्यायाधीश उसे फीस दिलाने का यत्न करता है ।

(११) यदि फौजदारी न्यायालय में गवाह न्यायालय से प्रेषित आज्ञापत्र लेने से इनकार करे अथवा साक्षी देने से इनकार करे तो उस व्यक्तिको दण्ड अथवा कारावास तक हो सकता है । आज्ञापत्र लेते समय चिकित्सक अपनी फीस का प्रश्न उठाकर किसी प्रकार की बाधा नहीं डाल सकता, किन्तु स्वतन्त्र चिकित्सक न्यायालय में पहुँच कर शपथ लेने से पूर्व अपनी फीस माँग सकता है । फिर भी यदि न्यायालय उतने धन की आज्ञा न दे जितना कि वह माँगता है तो उसको हठ नहीं करना चाहिए अन्यथा उस पर न्यायालय का अपमान करने (Contempt of court) का मुकदमा चलाया जा सकता है ।

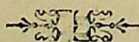
(१२) गिरफ्तारी के मुकदमों में दोनों पक्षों की फीस न्यायालय की ओर से दी जाती है और किसी भी पक्ष के लोग पृथक् से अपना कोई गवाह अर्थात्

चिकित्सक नियुक्त नहीं कर सकते। ऐसी परिस्थितियों में मैजिस्ट्रेट गवाहों की फीस नियुक्त कर देता है। इस नियुक्त फीस के दिये जाने पर भी यदि कोई चिकित्सक गवाही न दे तो मैजिस्ट्रेट उसको बलपूर्वक गवाही देने के लिये बाध्य कर सकता है।

भारतीय दण्ड विधान[1] की धारा ५४४ के अनुसार सिविल सर्जन को १६) रुपये और ऐसिस्टैण्ट सिविलसर्जन अथवा मेडिकल अफसर को १०) रुपये की फीस प्रदान की जाती है। यदि गिरफ्तारी के मुकदमों में अपराधी किसी चिकित्सक को न्यायालय में बुलाये तो उसको क्रिमिनल प्रोसीड्योर कोड (Criminal procedure code) की धारा २५७ के अनुसार उपरोक्त फीस देनी होगी, एतदर्थ यदि सरकारी चिकित्सक को साक्षी देने के लिये बुलाया जाता है तो उसको साक्षी देने की कोई फीस नहीं मिलती अपितु दो रुपये भत्ता मिलता है।

(१३) यदि एक ही तिथि में एक ही समय पर दीवानी और फौजदारी दोनों प्रकार के न्यायालयों में साक्षी देने के लिये बुलाया जाय तो चिकित्सक को पहले फौजदारी वाले न्यायालय में जाना चाहिये और फिर समय मिलने पर दीवानी वाले न्यायालय में जाना चाहिये और यदि एक ही समय पर एक ही प्रकार के दो न्यायालयों में बुलाया जाय तो गवाह को पहले उच्च श्रेणी के न्यायालय में जाना चाहिये और यदि ये न्यायालय भी समान श्रेणी के हों तो जिस न्यायालय का बुलावा पहले प्राप्त हो, वहाँ जाना चाहिये।

(१४) **व्यावसायिक रहस्य**[2] **:** गवाह के रूप में चिकित्सक किसी भी प्रकार के व्यावसायिक अतः गोपनीय विषय का न्यायालय में स्पष्टीकरण करने के लिये बाध्य है। यदि न्यायालय उस भेद को न पूछे तो चिकित्सक को स्वयं नहीं बतलाना चाहिये किन्तु जब न्यायालय उसको स्पष्टीकरण करने के लिये बाध्य करे तो उसे अपनी अनिच्छा प्रकट करते हुए-बतला देना चहिये अन्यथा उस पर न्यायालय का अपमान करने का मुकदमा चलाया जा सकता है।



1. Indian penale code
2. Professional Secrets.

दूसरा अध्याय

व्यक्ति की पहचान[1]

जीवित तथा मृत दोनों अवस्थाओंमें व्यक्तित्व की पहचान करनी पड़ती है।

(१) न्यायालयों में निम्न अवसरों पर जीवित अवस्था में व्यक्तित्व के निर्णय का प्रश्न उपस्थित होता है :—

(क) फौजदारी न्यायालयों में—सेना से भागे हुए सिपाही या जेल से भागे हुए अन्य अपराधियों के विषय में व्यक्तित्व का निर्णय करने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार से मारपीट (Assault), खून (Murder) या बलात्कार (Rape) इत्यादि फौजदारी मामलों में भी व्यक्तित्व का निर्णय करने की आवश्यकता पड़ती है।

(ख) दीवानी न्यायालयों में जब किसी मृत व्यक्ति के उत्तराधिकारी के रूप में कोई अपरिचित व्यक्ति उपस्थित होता है। (Fraudulent personation) या मृत या दूरदेश-स्थित व्यक्ति को पेन्शन लेने के लिए कोई अन्य अपरिचित व्यक्ति उपस्थित होता है तब उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्णय करने का प्रश्न न्यायसंस्था में उपस्थित होता है।

(२) मृतावस्था में सम्पूर्ण शरीर या शरीर के कुछ भाग या कुछ अस्थियों के आधार पर उस मृत व्यक्ति के व्यक्तित्व का अनुमान करना पड़ता है। अग्निकांड, रेलवे दुर्घटनायें, जलप्रवाह में बहते हुए शव, जंगल में या किसी निर्जन स्थान में पड़े हुए आधे या पूर्ण सड़े हुए या जंगली जानवरों से खाये हुए शव, इत्यादि अवसरों पर व्यक्तित्व की पहचान का प्रश्न उत्पन्न होता है।

परीक्षा के लिए लिखित सम्मति :—

जीवित अवस्था में किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्णय करने के लिए उस व्यक्ति की सम्पूर्ण शारीरिक परीक्षा करना आवश्यक होता है।

जिस व्यक्ति की शारीरिक परीक्षा करनी है उसकी परीक्षा के लिए लिखित सम्मति लेना आवश्यक है। लिखित सम्मति न होने पर परीक्षा नहीं करनी चाहिए।

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्णय करने के लिए निम्नलिखित अनेक बातों में से अधिक से अधिक सम्भाव्य बातों की परीक्षा करके सबका एक साथ

1. Personal identity (Identification)

संकलितरूप से अभ्यास करते हुए व्यक्तित्व के निर्णय के विषय में निश्चयात्मक अनुमान किया जाता है।

व्यक्ति की पहिचानमें निम्नलिखित बातोंपर ध्यान देनेसे सहायता होती है:—

१. जाति
२. धर्म
३. लिंग
४. आयु
५. सामाजिक अवस्था
६. आकृति
७. चलने का ढंग
८. स्वभाव और आदतें
९. केश
१०. गोंदने के चिह्न
११. पद-चिह्न
१२. शारीरिक विकृतियाँ या वक्रतायें
१३. व्यावसायिक चिह्न
१४. व्रण-वस्तु
१५. हस्त-लेख
१६. वस्त्र और आभूषण
१७. व्याख्यान और स्वर-सम्बन्धी विशेषतायें
१८. बुद्धि, स्मृति एवम् शिक्षा-सम्बन्धी ज्ञान
१९. दाँत
२०. आँख
२१. कौमार्य अथवा पूर्व-सन्तानोत्पत्ति के चिह्न
२२. व्यक्ति के चित्र
२३. व्यक्ति की पहचान के लिए आवश्यक प्रकाश

(१) जाति[1]

जंगल में, नदी या समुद्र या रास्ते के किनारे, रेलवे के डब्बे में या अन्य किसी स्थान पर लावारिस शव मिलने पर उस व्यक्ति की 'जाति' का प्रश्न उपस्थित होता है। भारत में प्रायः हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ख्रिश्चन तथा युरोपियन ये जातियाँ होती हैं। पूर्वोक्त परीक्ष्य–विषयों की परीक्षा करने से जाति का निर्णय करने में कठिनाई नहीं होती।

शिर की चौड़ाई और लम्बाई का अनुपात (Cephalic Index or Index of beadth)[2]:—इससे जाति का निर्णय सुविधा से होता है। शिर

---

1. Race

2. Cephalic Index = $\frac{\text{कपाल की चौड़ाई} \times १००}{\text{कपाल की लम्बाई}}$

अधिक से अधिक चौड़ाई को १०० से गुना करके फल को शिर के अधिक से अधिक लम्बाई से भाग देते हैं। इससे जो फल आता है उसको 'किफॅलिक इंडेक्स' कहते हैं।

भारतीय पौराणिक जातियाँ (Aborigines) के और आर्य जातियों के शिर लम्बे होते हैं। (Dolicho-Cephalic or Long Headed) इनका शिर का अनुपात ७० से ७४·५ तक होता है। यह अनुपात युरोपियन तथा चीनी जातियों में ७५ से ७९.९ होता है। ऐसे शिरों को 'मध्यम शिर' (Mesati cephalic) कहते हैं। मंगोलियन जाति के मनुष्य में यह अनुपात ८० से ८४·९ तक होता है अतः इनके शिर को 'ह्रस्व शिर' (Brachy-Cephalic) कहते हैं।

अस्थिपंजर का अवलोकन करके जाति का निर्णय किया जा सकता है, एतदर्थ निम्नलिखित तालिका से सहायता मिलती है :-

विवरण	काकेशियन	मंगोलियन	नीग्रो
१. कपाल (खोपड़ी)	गोलाकार	समचतुर्भुजाकार	संकुचित एवम् लम्बाकार
२. ललाट	उठा हुआ	ढालू	छोटा और दबा हुआ
३. मुख	छोटा और कपोलास्थियाँ यथोचित	बड़ा और चपटा तथा कपोलास्थियां उठी हुई	कपोलास्थियां और जबड़े उभरे हुये तथा दाँत तिरछे लगे हुये
४. ऊर्ध्वशाखा	साधारण	छोटी	लम्बी और प्रकोष्ठास्थि प्रगंडास्थि की अपेक्षा बड़ी तथा हाथ छोटे
५. अधःशाखा	साधारण	छोटी	जंघाप्रदेश—उरःप्रदेश की अपेक्षा बड़ा, पैर चौड़े और चपटे तथा एँड़ी की अस्थियां पीछे की ओर बढ़ी हुई

(२) धर्म[1]

जब कभी कोई शव कुवां, गली, सड़क, तालाब, नहर, झील आदि के समीप में पड़ी हुई मिलती है तो उस समय जाति के अतिरिक्त उसके धर्म का भी प्रश्न उठता है। हिन्दुस्थान में विशेषतया हिन्दू और मुसलमान धर्म के लोग रहते हैं, अतएव उनमें पायी जानेवाली विशेषतायें भी ज्ञात होनी चाहिये। निम्नलिखित तालिका में इन दोनों धर्मावलम्बियों के विशेष रूपों का वर्णन किया गया है जिससे उनका परस्पर भेद सरलता से समझ में आ सकता है। पुरुष और स्त्री—दोनों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया गया है :—

पुरुष	मुसलमान	हिन्दू
१. शिश्न	खतना-प्रायः १०-११ वर्ष की आयु तक हो जाता है।	खतना—नहीं होता।
२. कान	कानों में छेद नहीं होते—यदि हुआ तो एक ही कान में।	प्रायः दोनों कानों में छेद होता है।
३. चोटी	सिर पर चोटी नहीं होती।	सिर पर चोटी होती है।
४. ढट्टे	नमाज पढने के कारण माथे और घुटनोंपर ढट्टे पड़ जाते हैं।	ढट्टे नहीं होते।
५. हाथ	हथेली और छगुनियों के नखों पर मेंहदी लगाते हैं।	मेंहदी नहीं लगाते या कम लगाते हैं।
६. जनेऊ	नहीं पहनते।	बायें कंधे पर द्विज लोग पहनते हैं।
७. वस्त्र	अंगरखा या मिरजई छाती के बायें तरफ खुलती हैं। सलवार, शेरवानी, पैजामा, सुथन्ना, टर्की टोपी—पहनते हैं।	कुर्ता, कोट, साफा, टोपी पहनते हैं।
८. सुर्मा	ज्यादा लगाते हैं।	कम लगाते हैं।

1. Religion

स्त्री	मुसलमान	हिन्दू
१. गोदने के चिह्न	नहीं गुदातीं—केवल वेश्याएँ गुदातीं हैं।	भ्रुकुटी के मध्य में, वक्ष पर और कुहनी के नीचे अन्दर की ओर नीच कौमों में गुदना गुदातीं हैं—(देवताओं की तस्वीर राम आदि)
२. कान	बाली पहनने के लिये बहुत से छिद्र होते हैं।	थोड़े से छिद्र होते हैं।
३. सिर	मांग में सिन्दूर के चिह्न नहीं होते।	मांग में सिन्दूर या उसके चिह्न होंगे। और सिर पर गहने होंगे।
४. नाक	बाली पहनने के लिये नाक के बीच के पर्दे (Septum) में प्रायः छिद्र होते हैं।	बाली पहनने के लिये बायें नथुने और बीच के पर्दे में छिद्र होते हैं।
५. हाथ	विवाहित स्त्रियां कांच की चूड़ियाँ या लोहे के छल्ले नहीं पहनतीं।	विवाहित बंगाली स्त्रियाँ लोहे का छल्ला, यू० पी० में दोनों हाथों में काँच, लाख, सोना आदि की चूड़ियाँ पहनती हैं।
६. वस्त्र	सुथन्नी, सलवार और ओढ़नी ज्यादा पहनती हैं।	साड़ी, लँहगा और धोती अधिक पहनती हैं।
७. विधवा	×	हिन्दू विधवा स्त्री के सिन्दूर और चूड़ी का अभाव होता है।

पारसी	पुरुष	स्त्री
१. वस्त्र	कमर में कश्ती बाँधते हैं और मलमल का कुर्ता अधिक पहनते हैं।	सिर पर सफेद कपड़ा बांधती हैं।

(३) लिंग[1]

इसको स्त्री-पुरुष भेद भी कहते हैं। जीवितावस्था में लिङ्गनिर्णय की निम्न समयों पर आवश्यकता पड़ती है :—

(क) शिक्षा (Education)
(ख) विवाह (Marriage)
(ग) नपुंसकता (Impotency)
(घ) बलात्कार (Rape)
(ङ) धनसम्बन्धी मामले (Inheritance)
(च) वोट देना (Voting)
(छ) नौकरी (Services)
(ज) अन्य मामले (Allied subjects)

(१) शिशुओं में लिङ्ग-निर्णय।

गर्भावस्था में लिङ्गोत्पत्ति के समय विकृति के कारण ऐसे व्यक्ति भी देखने में आते हैं जिनमें स्त्री-पुरुष दोनों के व्यामिश्र चिह्न मिलते हैं। इनको द्विलिङ्गी[2] व्यक्ति कहते हैं। यह २ प्रकार का होता है :—

(क) यथार्थ (True) (ख) मिथ्या (False)

१. यथार्थ-द्विलिङ्गी :—इसमें स्त्री-पुरुष दोनों के आभ्यन्तरिक जननेन्द्रियाँ होती हैं।

२. मिथ्या-द्विलिङ्गी :—इसमें स्त्री-पुरुष दोनों के बाह्य जननेन्द्रियां होती हैं। इसके २ भेद होते हैं :—

(क) स्त्री-सदृश पुरुष :—जिसके पुरुषीय अङ्ग स्त्री के से मिलते-जुलते हों।
(ख) पुरुष सदृश स्त्री :—जिसके स्त्रीय अंङ्ग पुरुष के से मिलते-जुलते हों।

(२) युवावस्था में लिङ्गनिर्णय

१. (क) पुरुष :—जिस व्यक्ति में कम से कम एक वृषण[3]—जो शुक्राणु युक्त तरल को स्रवित करता—पाया जाय तो वह पुरुष समझा जाता है।

(ख) स्त्री:—जिस व्यक्ति में कम से कम एक बीज-कोष[4] हो और जननेन्द्रिय के समीप कहीं पर एक छिद्र हो, जिसमें से सामयिक आर्तवस्राव होता हो तो वह स्त्री समझी जाती है।

---

1. Sex, 2. Hermaphrodite 3. Testicle. 4. Ovary

(२) शरीर की आकृति एवम् वृद्धि भी देखी जानी चाहिए :–

(क) पुरुषों में कटिप्रदेश[1] की अपेक्षा स्कन्धप्रदेश[2] प्रायः चौड़े होते हैं, स्त्रियों में इसके विपरीत होता है।

(ख) स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा स्तन अधिक बढ़े हुए होते हैं।

(ग) पुरुषों में मुख और भगास्थि प्रदेश[3] पर अधिकतासे बाल निकलते हैं।

(घ) पुरुष का स्वर स्त्री की अपेक्षा गम्भीर होता है।

(ङ) श्वेत रेखायें[4]—स्त्रियों में प्रथम गर्भावस्था के बाद स्थायीरूप से उदर तथा जंघा पर श्वेत रेखायें बन जाती हैं। किन्तु पुरुषों में केवल अति स्थूल अथवा पहलवानों को होते हैं।

(३) मृत्यूत्तर लिङ्ग-निर्णय

(१) पूर्ण शरीरः—इसके द्वारा लिंग-निर्णय में कठिनाई नहीं होती।

(२) अङ्गभङ्ग शरीरः—जिन शवों के उत्पादक अङ्ग गायब होते हैं, उनमें प्रायः कठिनाई होती है। जहाँ किसी विधि से निर्णय नहीं किया जा सकता, वहां पर निम्न विधि से सहायता ली जाती है:—

(क) पुरुषों में पेशियों की वृद्धि सम्यक्तया होगी और वे दृढ़ होगीं। स्त्रियों में अङ्ग-प्रत्यङ्ग कोमल और दुर्बल होंगे।

(ख) स्त्रियों में लम्बे-लम्बे केश और मांग में सिंदूर पाया जा सकता है, पुरुषों में ऐसा नहीं होता।

(ग) यदि शरीर में दाढ़ी, मूँछ और हाथ, पैर तथा वक्ष पर अत्यधिक बाल हों तो वह पुरुष का शरीर होगा। केवल कक्षा[5] और विटप[6] प्रदेशों पर बाल होने की अवस्था में शरीर किसी स्त्री का होगा।

(घ) स्त्रियों में अस्थियां—१. छोटी, पतली और हल्की होती हैं। २. श्रोणिचक्र[7]–छिछला और चौड़ा होता है। ३. जघनकपाल[8] फैला हुआ होता है। ४. भगास्थियों की सन्धि[9] छोटी और ५. त्रिकास्थि[10]–कुछ कम वक्र होती हैं'

---

1 Hips, 2. Shoulders, 3. Pubes, 4. Linea albicantes
5. Axxila, 6. Pubic region, 7. Pelvis. 8, Ilrum,
9· Symphysis, 10. Sacrum.

(ङ) स्त्रियों में पर्शुकायें अधिक वक्र और तिरछी तथा वक्षास्थि[1] (उरः-फलक) छोटी होती है।

(च स्त्रियों में सिर और मुख की अस्थियां भी छोटी होती हैं।

(४) आयु

निम्नलिखित अवस्थाओं में विशिष्ट व्यक्ति की 'आयु' का प्रश्न उपस्थित होता है। आयु का निश्चयात्मक अनुमान चिकित्सक की सहायता से किया जाता है :—

१. व्यक्ति की पहचान।

२. फौजदारी अपराध करने योग्य 'आयु' (Criminal responsibility)।

३. विवाह (Marriage Contract)

४. भगा ले जाना (Kidnapping or Abducting)।

५. बलात्कार (Rape)।

६. सज्ञान युवावस्था (Attainment of Majority)।

७. न्यायालय में 'साक्ष्य' देने योग्य आयु (Competency as a witness)।

८. नोकरी के लिये योग्य आयु (Eligibiliy for Employment)

९. न्यायसम्मत शासन और आयु का विचार (Judicial punishment)।

१०. नवजात बालक की हत्या (Infanticide)।

११. गर्भपात का अपराध (Criminal Aborti n)।

(१) व्यक्ति की पहचान :—व्यक्ति की पहचान के लिये अनेक परीक्ष्य विषयों में आयु (अवस्था) का निश्चित से विशेष सहायता मिलती है।

(२) फौजदारी अपराध करने योग्य आयु :—(क) 'इंडियन पिनल कोड' के अनुसार ७ वर्ष से कम आयु वाले बच्चे फौजदारी अपराध करने योग्य नहीं माने जाते न उनको सजा होती है। परन्तु 'इण्डियन रेलवे ऐक्ट' की धारा १३० के अनुसार ७ साल से कम आयु वाला बचा भी समझ बूझकर कोई अपराध करे तो वह दण्डार्ह माना जाता है।

---

1. Sternum

(ख) ७ से १२ साल तक के आयु वाले बच्चों की मानसिक तथा शारीरिक प्रगल्भता को देखते हुए अपराध करने योग्य या अयोग्य इसका निर्णय न्यायसंस्था द्वारा किया जाता है और अपराध सिद्ध होने पर उनकी सजा भी होती है।

(ग) यदि १२ साल से कम आयु वाला बालक ऐसे काम के लिये सम्मति दे जिससे उसकी शारीरिक हानि हो सकती है—यद्यपि वह काम उसके भले के लिये क्यों न हो, तो भी कानून के अनुसार १२ साल से कम आयु वाले बालक की सम्मति ऐसे काम के लिये नहीं मानी जाती। जिस काम से मृत्यु या गम्भीर क्षत की सम्भावना न हो, परन्तु कुछ शारीरिक हानि पहुँचना निश्चित हो, तो भी १८ साल से कम आयु वाले बालक की सम्मति ऐसे काम के लिए नहीं मानी जाती।

(३) **विवाह :**—१९२९ के सारदा कानून (Child Marriage restaint Act of 1929) के अनुसार १४ साल से कम लड़की और १८ साल से कम लड़के का विवाह करना अपराध माना जाता है। (इंग्लैण्ड में १६ साल से कम आयु वाले लड़का या लड़की का विवाह कानून-सम्मत नहीं है।)

(४) **भगा ले जाना :**–(क)—१० साल से कम बालक को उसके बदन पर के मूल्यवान वस्त्र, अलङ्कार या पैसे लेने की दृष्टि से भगा ले जाना इंडियन पिनल कोड सेक्शन ३६९ के अनुसार दण्डार्ह है।

(ख) १४ साल से कम बालक को या १६ साल से कम बालिका को उनके योग्य पालक (Lawful Guardian) के पास से भगा ले जाना अपराध है। (इं० पि० को० से ३६१ से ३६६)

(ग) १८ साल से कम बालिका को वेश्या-व्यवसाय के लिये या अनैतिक-संभोग के लिये बेचना या खरीदना अपराध है। (Section 366 A, 372 and 373 I. P. C.)।

(५) **बलात्कार :**—इंडियन पिनल कोड की ३७५ धारा के अनुसार १३ साल से कम आयु वाली लड़की के साथ वह अपनी विवाहिता स्त्री होने पर भी तथा १४ साल से कम किसी लड़की के साथ उसकी सम्मति होते हुए भी संभोग करना अपराध माना जाता है!

(६) **सज्ञान युवावस्था :**—१८ वर्ष पूर्ण होने पर 'सज्ञान युवावस्था' (Major) माना जाता है। इसके पहिले अज्ञान युवक या युवती (Minor)

अपनी सम्पत्ति रेहन रखना–बेचना या दान देना इत्यादि कार्य नहीं कर सकते। न्यायालय से नियुक्त पालक या 'व्यवस्थापक न्यायालय' (Court of Wards) के अधिकार में रहे हुए युवक को २१ वर्ष पूर्ण होने पर सज्ञान माना जाता है।

(७) **न्यायालय में 'साक्ष्य' देने योग्य आयु** :—कानून द्वारा इसके लिये 'आयु' की कोई सीमा नहीं है। परन्तु बाल्यावस्था के आयु के अनुसार बालक को मानसिक प्रगल्भता तथा सत्यासत्य विचार और उसके परिणाम इनको समझने की मानसिक शक्ति बालक में है या नहीं इस बात का विचार बालक की साक्ष्य लेने के पूर्व न्यायालय को करना पड़ता है।

(८) **नौकरी के योग्य आयु** :—कानून (Factories Act 1934) के अनुसार १५ वर्ष की आयु पूर्ण होने तक व्यक्ति को 'बालक' कहा जाता है। १५ से १७ वर्ष पूर्ण होने तक 'अस्फुट युवावस्था' (Adolescent) कहते हैं और १७ वर्ष पूर्ण होने पर स्फुट युवावस्था (Adult) कहते हैं।

(क) सामान्यतया सरकारी नौकरी के लिये २५ वर्ष की आयु निश्चित है।

(ख) १२ वर्ष पूर्ण होने के पूर्व बालक को किसी कारखाने (Factory) में नौकरी के लिये नहीं रखा जाता। १२ से १७ साल पूर्ण होने तक कारखाने में काम करने के लिये शारीरिक सुदृढता का चिकित्सक का प्रमाणपत्र कारखाने में तथा उस व्यक्ति के पास काम करते समय रखना आवश्यक है। किसी बालक से ५ बजे प्रातः से ७-३० बजे शाम के बीच में ही अधिक से अधिक ५ घण्टा तक काम ले सकते हैं।

(ग) १९२३ के खान कानून (Indian Mines Act. 1923) के अनुसार किसी बालक को जमीन के नीचे खान में काम पर नहीं रख सकते। १५ से १७ साल पूर्ण होने तक सुदृढता का प्रमाणपत्र आवश्यक होता है।

(घ) 'उत्तर प्रदेश मादक द्रव्य कानून' (United provinces Excise Act 1910) के अनुसार १६ साल के नीचे के बालक के हाथ कोई मादक द्रव्य नहीं बेच सकते तथा १४ साल से कम आयु वाले बच्चों को दुकान में नौकरी के लिये नहीं रख सकते।

(९) **न्यायसम्मत शासन और आयु का विचार** :—४५ वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्तिओं को कोड़े लगाने की सजा (Whipping) नहीं दी जाती। १५ वर्ष पूर्ण होने के पहिले किसी व्यक्ति को निर्वासन या

कारावास की सजा होने पर उसको अपराधी सुधार स्कूल (Reformatory school) में भेजा जाता है। जहाँ वह बालक केवल १८ वर्ष पूर्ण होने तक ही रहता है। ऐसे अपराधियों को न्यायालय ठीक समझे तो उसके माता-पिता या अन्य योग्य पालक के पास भी रखने की आज्ञा दे सकता है।

कोई युवक अपराधी को देहान्त शासन देते समय उसके 'युवावस्था' का ख्याल करके न्यायालय इससे कम सजा दे सकता है।

(१०) नवजात बालक की हत्या :— मृत बालक का प्रसव गर्भिएय-वस्था के ६ महीने पूर्ण होने के पूर्व ही हुआ है - ऐसा सिद्ध हो तो 'नवजात बालक की हत्या का अपराध' सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि गर्भिएयवस्था के ६ महीने पूर्ण होने पर ही प्रसव होने पर बालक जीवित उत्पन्न होकर विशेष प्रयास से जीवित रखा जा सकता है। गर्भिएयवस्था का ७ वाँ महीना पूर्ण होने पर प्रसव होने पर बालक का जन्म जीवित अवस्था में होकर उसकी जीवित रहने की संभावना लगभग निश्चित मानी जाती है।

(११) गर्भपात का अपराध :— यदि स्त्री की आयु प्रजोत्पादन के लिये योग्य न हो तो उससे गर्भपात का अपराध नहीं हो सकता। इस अवसर पर गर्भाशय से निकले हुए 'भ्रूण' की प्रगल्भता देखते हुए उसकी आयु का अनुमान करना पड़ता है।

आयु का निश्चयात्मक अनुमान

Jamp. 1960

विशिष्ट व्यक्ति की आयु का निश्चयात्मक अनुमान करने के लिये उस व्यक्ति के विषय में निम्न बातों में से एक या अधिक बातों पर विचार करने से आयु के निश्चिति में सहायता होती है :—

१. दाँतों की संख्या और उनके विषय में अन्य विशेषताएँ।

२. व्यक्ति की ऊँचाई और वजन।

३. अस्थि-विकास केन्द्रों तथा उत्पत्ति का समय और मृद्वस्थि और अस्थि-शरीर का परस्पर जुड़ने का समय।

४' अन्य सामान्य (Minor signs) लक्षण और चिह्न।

आयु निर्णय करने के लिये जीवन काल की भिन्न-भिन्न अवस्थायें

(१) भ्रूण[1] (२) शिशु[2] (३) बालक[3] (४) युवा[4]

---

1. Foetus, 2. Infant. 3. Child, 4. Adult,

भ्रूण की आयु

जीवित या मृत दोनों अवस्थाओं में भ्रूणहत्या एवम् 'गर्भपात' के अपराध के मामलों में भ्रूण की आयु का निश्चय करने की आवश्यकता पड़ती है।

छठें महीने के अन्त में :—

१. भ्रूण की लम्बाई :—९ से १२ इंच तक होती है।

२. भ्रूण का भार :—१ से २ पौंड तक होता है।

३. त्वचा :—में सिलवटें पड़ी होती हैं।

४. आँखें :—बन्द होती हैं।

५. नख :—निकलने लगते हैं।

६. भ्रू और पक्ष्म :—बनने लगते हैं।

७. वृषणग्रन्थि :—वृक्क के समीपस्थित होते हैं।

८. बृहत् मस्तिष्क के गोलार्ध :—अनुमस्तिष्क को ढके रहते हैं।

सातवें महीने के अन्त में :—

१. लम्बाई :—१५ इंच तक हो जाती है।

२. भार :—४ पौंड होता है।

३. त्वचा :—में सिलवटें कम पड़ जाती हैं।

४. आँखें :—खुली हुई होती हैं और उसके ऊपर की झिल्ली नष्ट होने लगती है।

५. नख :—अच्छी तरह निकल आते हैं लेकिन अंगुलियों के सिरे तक नहीं पहुँच पाते।

६. वृषणग्रन्थि :—नीचे उदरगुहा में नीचे खसकने लगते हैं।

आठवें महीने के अन्त में :—

१. लम्बाई :—१६ से १७ इंच तक होती है।

२. भार :—लगभग ५ पौंड होता है।

३. नख :—अंगुलियों के सिरे तक करीब करीब पहुँच जाते हैं।

४ वृषण :—वङ्क्षण नलिका[1] में पहुँच जाता है।

पूर्ण विकसित भ्रूण :—

१. लम्बाई :—२१ से २२ इंच तक होती है।

२. भार :—५॥ से ६ पौंड तक होता है।

1· Inguinal canal

३. कपाल :—केशयुक्त होता है।

४. नख :—अंगुलियों के सिरे तक पहुँच जाते हैं।

५. वृषणग्रन्थि :—वृषण-कोष में होते हैं।

नवजात बालक की आयु

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से उत्पन्न होने के दिन से १५ दिन तक—वह बालक नवजात बालक (Infant) कहा जाता है। निम्नलिखित बातों को देखकर उसकी आयु का अनुमान किया जाता है :—

प्रथम दिवस में—नाभि-नाड़ी—अवशेष संकुचित एवम् शुष्क होने लगता है और यह परिवर्तन ४ या ५ दिन तक होता रहता है।

पांचवें या छठे दिन—नाभि के साथ सम्बन्धित नाड़ी का हिस्सा नाभि से पृथक् हो जाता है और नाभि के स्थान पर व्रण दिखाई देता है।

दसवें से बारहवें दिन तक—व्रणित सतह का रोपण होकर त्वक् का सामान्य वर्ण हो जाता है और व्रण के स्थान पर 'व्रणवस्तु' दिखाई देती है।

हिन्दुस्थान में उत्पत्ति के समय शिशु का भार प्रायः ५॥ पौंड होता है और प्रथम सप्ताह में उसका भार कुछ कम हो जाता है, तदनन्तर प्रति सप्ताह दो छटांक भार बढ़ता जाता है और छठें महीने तक ऐसा ही होता रहता है।

बालक की आयु

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से उत्पत्ति के सोलहवें दिन से लेकर युवा होने तक के बीच के समय में उसे 'बालक' कहते हैं। इस अवस्था में आयु के विषय में निश्चयात्मक अनुमान करने के लिये निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:—

१. दन्त-विवरण

२. ऊँचाई और भार

३. अस्थि-विकास-केन्द्र[1]

४. अन्य चिह्न

(१) दन्त-विवरण:—दांतों द्वारा आयु का निर्णय निश्चयात्मक रूप से केवल २४ या २५ वर्ष की अवस्था तक ही संभव है।

---

1. Centres of ossification.

दाँत २ प्रकार के होते हैं :—

१. अस्थायी :—इसकी संख्या २० होती है।

२. स्थायी :—इसकी संख्या ३२ होती है।

अस्थायी दाँत :—इन्हें दूध के दाँत भी कहते हैं।

बालकों में प्रायः ६–७ मास के बीच में पहला दूध का दाँत निकलता है। साधारणतया २ वर्ष के बालक में २० अस्थायी दाँत होते हैं।

यदि बालक दुर्बल हो और उसे अस्थियों के रोग जैसे अस्थिवक्रता आदि हो तो प्रायः दाँत देर में निकलते हैं। आनुवंशिक उपदंश (Congenital syphilis) से पीड़ित बालकों में या तो दाँत समय से पूर्व ही निकल आते हैं या जन्म से ही उनके दाँत होते हैं।

स्थायी और अस्थायी दाँतों में भेद

स्थायी	अस्थायी
१—आकार में बड़े और लंबे होते हैं।	१—आकार में छोटे होते हैं।
२—प्रायः आगे के दाँत कुछ न कुछ आगे की ओर झुके होते हैं।	२—आगे के दाँत लम्ब रूप में होते हैं।
३—दन्तशिखरों (Crowns) का वर्ण हाथी के दाँत की तरह श्वेत (Ivory white) होता है।	३—शिखरों का वर्ण चीनी मिट्टी के वर्तन की तरह श्वेत (China-white) होता है।
४—दन्तशिखर के दन्तमूल (Fang) से मिलने के स्थान पर कोई उभार नहीं होता।	४—दन्तशिखर के दन्तमूल से मिलने के स्थान पर एक उभार (Ridge) होता है।

३१ पेज की टिप्पणियां:—1. Upper and lower Central incisors 2. Lateral Incisors (upper & lower) 3. Canines, 4. Pre-molars or Bicuspids (anterior and pesterior) 5. Molars-first, second and third). 6. Wisdom.

दाँतों के निकलने का समय

दाँतों के नाम	संख्या	अस्थायी दांत	स्थायी दांत
नीचे के अन्तः कर्तनक[1]	२	६ से ८ मास तक	७ से ८ वर्ष तक
ऊपर के अन्तः कर्तनक[1]	२	८ से १० मास तक	
नीचे के बाह्य कर्तनक[2]	२	१० से १२ मास तक	८ से ९ वर्ष तक
ऊपर के बाह्य कर्तनक[2]	२	७ से ९ मास तक	
भेदक[3]	४	१७ से १८ मास तक	११ से १२ वर्ष तक
अगले अग्रचर्वणक[4]	४	अनुपस्थित	९ से १० वर्ष तक
पिछले अग्रचर्वणक[4]	४	अनुपस्थित	१० से १२ वर्ष तक
प्रथम चर्वणक[5]	४	१२ से १४ मास तक	६ से ७ वर्ष तक
द्वितीय[5] चर्वणक	४	२२ से २४ मास तक	१२ से १४ वर्ष तक
तृतीय[5] चर्वणक[6]	४	अनुपस्थित	१७ से २५ वर्ष तक

(२) ऊँचाई और भार (उत्पत्ति काल से बाल्यावस्था तक)

आयु	सामान्य भार	ऊँचाई
१ दिन	६·४ पौंड	१९ से २० इञ्च तक
१ मास	७·४ पौंड	
२ मास	८·४ पौंड	
३ मास	९·६ पौंड	२१ से २२ इञ्च तक
४ मास	१०·८ पौंड	
५ मास	११·८ पौंड	
६ मास	१२·४ पौंड	२४ इञ्च
७ मास	१३·४ पौंढ	
८ मास	१४·४ पौंड	
९ मास	१५·८ पौंड	२६ इञ्च (लगभग)
१० मास	१६·८ पौंड	
११ मास	१७·८ पौंड	
१२ मास	१८·५ पौंड	२७ इञ्च से २९ इञ्च तक

टिप्पणी १–६, पृष्ठ ३० में देखिए

पुरुषों और स्त्रियों में सामान्य ऊँचाइ और भार[1]

आयु	पुरुष				स्त्री			
वर्ष	ऊँचाई		भार		ऊँचाई		भार	
	फुट	इञ्च	स्टोन*	पौंड	फुट	इञ्च	स्टोन	पौंड
१	२	५·५०	१	४·५०	२	३·५०	१	४·००
२	२	८·५०	२	४·५०	२	७·००	१	११·२५
३	२	११·००	२	६·००	२	१०·००	२	३·५०
४	३	१·००	२	९·००	३	१·००	२	८·००
५	३	४·००	२	१२·००	३	३·००	२	११·००
६	३	७·००	३	२·५०	३	६·००	२	१८·७५
७	३	१०·००	३	७·७५	३	८·००	३	५·५०
८	३	११·००	३	१३·००	३	१०·५०	३	१०·००
९	४	१·७५	४	४·५०	४	०·७५	३	१३·५०
१०	४	३·७५	४	११·५०	४	३·००	४	६·००
११	४	५·५६	५	२·००	४	५·००	४	१२·००
१२	४	७·००	५	६·७५	४	७·५०	५	६·५०
१३	४	९·००	५	१२·५०	४	९·७५	६	३·००
१४	४	११·२५	६	८·००	४	११·७५	६	१२·७५
१५	५	२·२५	७	४·७५	५	१·००	७	८·२५
१६	५	४·२५	८	७·००	५	१·७५	८	१·००
१७	५	६·२५	९	५·००	५	२·५०	८	३·५०
१८	५	७·००	९	११·५०	५	२·५०	८	९·००
१९	५	७·२५	९	१३·५०	५	२·७५	८	१२·००
२०	५	७·५०	१०	३·२५	५	३·००	८	११·५०
२१	५	७·५०	१०	५·००	५	३·००	८	१०·००
२२	५	७·५०	१०	७·००	५	३·००	८	११·५०
२३	५	७·५०	१०	७·५०	५	३·००	८	१२·००
२४	५	७·७५	१०	८·००	५	२·७५	८	९·००
२५	५	७·७५	१०	१२·२५	५	२·००	८	८·००

1 From–Practical Knowledge Magazine of Calcutta.

* स्टोन=१४ पौंड

ऊँचाई ज्ञात करने की सामान्य विधि :—

१. ऊर्वस्थि (Femur) की लम्बाई × ४ + ४ इञ्च

२. प्रगंडास्थि (Humerus) की लम्बाई × ६ + ६ इञ्च

३. १ भुजा (Arm) की लम्बाई × २ + १३½ इञ्च

(४) युवावस्था की आयु का निर्णय

युवावस्था में आयु का निर्णय निम्न बातोंको देखकर किया जा सकता है:—

१. ऊँचाई और भार : पूर्वोक्त तालिका से सहायता लेनी चाहिये।

२. दंत विवरण :—२५ वर्ष तक की आयु का सरलता से निर्णय किया जा सकता है जैसा कि तालिका में दिया है।

३. केशवृद्धि :—पुरुषों में १५ से १८ वर्ष की आयु के बीच में दाढ़ी और मूँछ निकलने लगती है। प्रायः १३–१४ वर्ष की अवस्था में कक्षा और विटप प्रदेशों में बाल निकलने लगते हैं।

४. स्त्री :—१२ या १३ वर्ष की बालिकाओं के स्तन बढ़ने लगते हैं और जैसे जैसे आयु बढ़ती जाती है—वैसे वैसे ये अधिक फूलते जाते हैं। इसी अवस्था में नितम्ब-प्रदेश चौड़ा होने लगता है।

५. बाह्यजननेन्द्रिय :—पुरुषों में शिश्न बढ़ता जाता है और उसमें दृढ़ता आती जाती है। स्त्रियों में भगोष्ठ फूल जाते हैं और स्पष्ट हो जाते हैं।

६. रजःस्राव :—भारतवर्ष की बालिकाओं में प्रायः १२ या १३ वर्ष की अवस्था में रजःस्राव शुरू हो जाता है।

७. स्वर :—लगभग १६-१८ वर्ष की अवस्था में पुरुषों का स्वर गम्भीर होने लगता है।

(३) अस्थि–विकासकेन्द्रों की उत्पत्ति का समय :—जीवित अवस्था में एक्स रे की सहायता से देखे जा सकते हैं, शरीर के भिन्न २ अस्थियों में २० साल की आयु तक भिन्न २ स्थानों में वृद्धि–केन्द्र उत्पन्न होकर अस्थियों का विकास पूर्ण हो जाता है उसी तरह अस्थि–शरीर के साथ मृद्वस्थि के मिलने का समय भी भिन्न होता है। यह लगभग ४० साल की आयु तक आयु की निश्चिति में सहायक हो सकता है।

(४) **अन्य सामान्य लक्षण और चिह्न :**—व्यक्ति की मानसिक और शारीरिक परीक्षा कर के उसकी आयु की अवस्था के अनुसार जो मानसिक और शारीरिक लक्षण तथा चिह्न उत्पन्न हो जाते हैं, उनको देखने से भी आयु की निश्चिति में सहायता होती है। इनसे विशेषतया युवावस्था की आयु के निर्णय में सहायता मिलती है जो पूर्व में हम देख चुके हैं।

(५) सामाजिक अवस्था[1]

व्यक्ति की सामाजिक अवस्था से भी व्यक्ति की पहचान करने में जीवितावस्था में बहुत कुछ सहायता मिलती है किन्तु मृतावस्था में इससे कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता।

(६) वर्ण तथा आकृति या शारीरसौष्ठव[2]

व्यक्ति स्थूल है या कृश है, उसकी पेशियों का उपचय किस प्रकार का है, इनसे तथा शरीर का वर्ण देखकर भी व्यक्ति की पहचान में सहायता मिलती है।

(७) चलने का ढंग[3]

प्रायः प्रत्येक व्यक्ति का चलने का एक विशेष ढङ्ग होता है जिससे जीवितावस्था में व्यक्ति की पहचान की जा सकती है।

(८) स्वभाव और आदतें[4]

प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव और उसकी आदतें भिन्न भिन्न होती हैं जिनको देखते हुए व्यक्ति की पहचान करने में सहायता मिल सकती है।

(९) केश

इसमें विशेषतया सिर के बाल देखे जाते हैं। कुछ व्यक्तियों के बाल स्वभाव से ही काले होते हैं और कुछ के भूरे रङ्ग के होते हैं। इसी प्रकार वृद्धावस्था में बाल श्वेत वर्ण के हो जाते हैं। इन सब बातों को जानने की आवश्यकता है और इससे व्यक्तित्व निर्णय में सहायता मिलती है।

कभी २ व्यक्तित्व को छिपानेके लिये बालों का 'रंजन' किया जाता है। सीसा

---

1. Social position.
2. Complexion and features.
3. Gait.
4. Tricks of manner and habits.

(Lead), रजत (Sliver) या बिस्मथ से बनाये हुए रंजक द्रव्यों (Cosmetics) से बालों का रंजन किया जाता है। या क्लोरीन, हायड्रोजन पेरॉक्साईड, नाइट्रिक अम्ल, या नायट्रो हायड्रोक्लोरिक अम्ल इत्यादि पदार्थों से बालों का रंजन किया जाता है।

रंजित बालोंकी परीक्षा :—

(१) बालों की सूक्ष्म परीक्षा करने पर रंजन कुछ असमान तथा मूल प्रायः कम रंजित मिलेंगे। शरीर के अन्य स्थानों के बालों के साथ तुलना करने पर उनका रंग भिन्न मिलेगा। शिर का मुण्डन करनेपर नये निकलने वाले बालों का वर्ण भिन्न होगा।

(२) रंजित बालों को हायड्रोक्लोरिक ॲसिड या नाईट्रिक ॲसिड में रखकर घोल की उपर्युक्त धातुओं के लिये रासायनिक परीक्षा की जाती है।

(१०) गोंदने के चिह्न[1]

शरीर के किस स्थान पर गुदना गुदा है? और वह किस प्रकार का है? यह देखना चाहिये। इससे जीवित एवम् मृत शरीर के व्यक्तित्व निर्णय में यथेच्छ सहायता मिलती है।

(११) पद-चिह्न[2]

व्यक्तित्व निर्णय में इससे कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है, केवल घटनास्थल पर पैरों के चिह्न कुछ सहायता कर सकते हैं—एतदर्थ उसकी आकृति ह्रस्व या दीर्घ, आकार—साधारण या चपटा और ढट्टों के चिह्न आदि को देखना चाहिये। बालू या धूलि जैसे पदार्थों पर के पदचिह्न प्रायः आकार में छोटे होते हैं। कीचड़ पर के पदचिह्न आकार में कुछ बड़े होते हैं। चलते समय निकला हुआ पदचिह्न उसी खड़े व्यक्ति के पदचिह्न से कुछ बड़ा होता है।

(१२) शारीरिक विकृतियाँ[3]

इनके द्वारा व्यक्ति की पहचान विशेष रूप से की जाती है। हाथ-पैर की अंगुलियों का जालयुक्त होना, किसी हाथ या पैर में छै अंगुलियों का होना, तिल, मस्सा, ओष्ठ पतले या मोटे, जन्म से ही किसी प्रकार के चिह्न अथवा अन्य विकृतियों का होना-आदि बातें इसमें देखनी चाहिये।

---

1. Tattoo marks, 2. Foot prints, 3. Malformations.

(१३) व्यावसायिक चिह्न[1]

भिन्न भिन्न प्रकार के व्यवसाय करनेवाले व्यक्तियों में कुछ विशेष चिह्न मिलते हैं जिनको देखने से व्यक्ति की पहचान की जा सकती है।

कहारों के कन्धे पर, किसानों के हाथों पर या दर्जियों के उंगलियों पर ऐसे चिह्न दिखाई देते हैं।

(१४) व्रणवस्तु[2]

गोली लगने, झुलसने या जलने आदि के बाद व्रण-रोपण होने पर शरीर पर व्रणवस्तु बन जाते हैं जिनसे व्यक्तित्व-निर्णय में सहायता मिलती है।

व्रणवस्तु तांतव धातु (Fibrous Tissue) से बनता है। इसमें केश-ग्रन्थि या स्वेदग्रन्थियाँ नहीं होतीं, कुछ सूक्ष्म रक्त-नलिकाएँ रहती हैं। व्रणवस्तु का आजीवन नाश नहीं होता परन्तु उनके आकृति, लम्बाई तथा चौड़ाई में अपराधी फरक कर सकता है। बाल्यावस्था के व्रणवस्तु में आकृति तथा आयाम, विस्तार में वृद्धि होती है। व्रणवस्तु की परीक्षा का विवरण लिखते समय निम्न बातें लिखनी चाहिये।

१. आकृति २. लम्बाई, चौड़ाई तथा गहराई।

३. स्थान ४. 'आयु' का अनुमान।

व्रणवस्तु के समय या आयु का अनुमान (Age of a Scar) :— व्रणवस्तु के वर्ण और मृदुता या कठिनता को देखते हुए व्रणवस्तु के समय का अनुमान किया जाता है। प्रारम्भ में वह लालिमा लिये होता है। बाद में कुछ भूरा और अन्त में श्वेत और चमकीला होता है। इन परिवर्तनों के लिये प्रायः उसे ४ महीने लगते हैं।

(१५) हस्त-लेख[3]

प्रत्येक व्यक्ति की लिखावट पृथक् होती है किन्तु कुछ लोग अन्य व्यक्तियों की ही भाँति अक्षरादि बनाने में विशेष योग्यता रखते हैं और उन्हें इस बात का अभ्यास होता है, इसलिए लिखावट की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है, हस्तलेख के निपुण व्यक्तियों (Experts) के अतिरिक्त अन्य साधारण व्यक्ति इसका निर्णय नहीं कर सकते। चिकित्सक का इससे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

---

1. Occupational marks, 2. Scars, 3, Hand writing.

(१६) वस्त्र और आभूषण[1]

व्यक्ति की सामाजिक अवस्था और उसकी पहचान वस्त्रों और आभूषणों द्वारा सरलता से की जा सकती है।

(१७) व्याख्यान और स्वरसम्बन्धी विशेषतायें[2]

इसके द्वारा जीवितावस्था में व्यक्ति की पहचान की जाती है।

(१८) बुद्धि, स्मृति एवं शिक्षासम्बन्धी ज्ञान[3]

जीवितावस्था में व्यक्तिकी पहचान के लिये इसका जानना बहुत आवश्यक है।

(१९) दाँत

दाँतों के सम्बन्ध में निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए :—

(क) कितने और कौन से दाँत टूटे हैं।
(ख) कृत्रिम दाँत।
(ग) दाँत में कील जड़ी होना।
(घ) सोने-चाँदी के खोल चढ़े होना।
(ङ) हिलते हुए दाँतों का तार आदि से बँधा होना–आदि।

(२०) आँख

आँखों के सम्बन्ध में निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए:—

(क) भूरी हैं या काली हैं।
(ख) आँखें तिरछी तो नहीं हैं।
(ग) बहुत बड़ी या बहुत छोटी हैं।
(घ) अन्दर को धंसी होना या बाहर निकली होना।
(ङ) दृष्टि।
(च) रोग।
(छ) अन्य विकृतियाँ।

---

1. Clothes and ornaments. 2. Speech and voice.
3. Mental power. memory and education.

(२१) कौमार्य अथवा पूर्वसन्तानोत्पत्ति के चिह्न[1]

इसके द्वारा स्त्रियों में व्यक्तित्व-निर्णय सरलता से हो सकता है।

(२२) व्यक्ति के चित्र[2]

यदि चित्र हाल का ही खींचा हुआ है तो व्यक्ति की पहचान जीवित और मृत दोनों अवस्थाओं में सरलता से हो सकती है। यदि चित्र हाल का नहीं है तो उस चित्र में प्राकृतिक एवम् अप्राकृतिक विशेषताओं को देखकर उस की पहचान की जा सकती है।

(२३) व्यक्ति की पहचान के लिये आवश्यक प्रकाश[3]

जिस व्यक्ति को अपराधी ठहराया जा रहा है—उसके अपराध करने के समय पर उसको पहचानने के लिये पर्याप्त प्रकाश था या नहीं—यह प्रश्न उठता है, एतदर्थ निम्न बातें ध्यान देने योग्य हैं:—

(क) कृत्रिम प्रकाश :—लालटैन, चिराग, विद्युत् आदि में जिसका प्रकाश होगा, उसी के ऊपर व्यक्ति की मुखाकृति को ठीक से पहचानना या न पहचानना निर्भर है।

(ख) चन्द्रप्रकाश :—चन्द्रमा की रोशनी में १५ या २० गज से अधिक दूरी से व्यक्ति की मुखाकृति को ठीक पहचाना ही नहीं जा सकता।

(ग) आकाशीय विद्युत्-प्रकाश :—में मुखाकृति ठीक से पहचानी जा सकती है।

(घ) चमक :—यदि व्यक्ति ५ या १० फीट से अधिक दूरी पर नहीं है—तो अग्नि, रगड़ से उत्पन्न प्रकाश आदि में व्यक्ति की मुखाकृति पहचानी जा सकती है।



1. Signs of virginity and previous child-birth.
2. photographs, 3. Illumination

तीसरा अध्याय

मृत्यूत्तर-परीक्षा[1]

निम्न कारणों से मृत्यूत्तर-परीक्षा करनी पड़ती है :—

१. व्यक्ति की पहचान के लिये।

२, 'मृत्यु' के काल का अनुमान करने के लिये।

३. मृत्यूत्तर समय का अनुमान करने के लिये।

४. 'नवजात बालक' की 'गर्भाशयीन आयु' और वह जीवित उत्पन्न होकर कुछ कालतक जीवित रहने योग्य था या नहीं, यदि जीवित उत्पन्न होकर कुछ कालतक जीवित था तो मृत्यु का कारण क्या हुआ इत्यादि प्रश्नों का निश्चयात्मक अनुमान करने के लिये।

कोई भी सरकार से नियुक्त चिकित्सक मृत्यूत्तर-परीक्षा करने से इनकार नहीं कर सकता, चाहे शव एक दम सड़ ही क्यों न गया हो, तथापि रोहिणी, मसूरिका आदि संक्रामक रोगों से मृत शरीर के सम्बन्ध में, वह इनकार भी कर सकता है।

जब कोई शव मजिस्ट्रेट या पुलिस के द्वारा किसी सिविल सर्जन अथवा अन्य किसी सरकार से नियुक्त चिकित्सक के पास मृत्यूत्तर-परीक्षा के लिये भेजी जाती है तो उसके साथ पुलिस के किसी अफसर अथवा कानेस्टेबिल का पहरा अवश्य होना चाहिये।

चालान :—यह एक प्रार्थना-पत्र होता है जिसे पुलिस अफसर सिविल सर्जन को मृत्यूत्तर-परीक्षा करने के लिये लिखता है। इसमें मृत व्यक्ति का नाम, आयु, लिङ्ग और धर्म, मृत्यु का सम्भव कारण तथा मृत्यूत्तर-परीक्षा कराने का हेतु लिखा होना चाहिये।

प्रारम्भिक जाँच करने का विवरण[2] :—यह वह विवरण है जो जाँच

---

1. Post mortem examination. 2. Inquest report.

करने वाले पुलिस द्वारा शव के साथ मृत्यूत्तर-परीक्षा के लिये नियुक्त चिकित्सक के पास भेजा जाता है।

पुलिस द्वारा प्रेषित प्रारम्भिक विवरण में स्पष्ट दो भाग होते हैं :--

(१) घटनास्थल का विवरण—समय, तारीख इत्यादि के साथ साथ व्यक्ति के सम्बन्धी तथा पड़ोसियों का घटना के विषय में लिखित बयान।

(२) शव की परीक्षा का विवरण—इसमें निम्न स्पष्ट विवरण होना आवश्यक है :--

चिकित्सक द्वारा मृत्यूत्तर-परीक्षा का विवरण

शवकी पहचान—पुलिस द्वारा प्रेषित चालान या प्रारम्भिक जाँच करने का विवरण अच्छी तरह से पढ़ने के बाद शव के साथ आये हुए पुलिस तथा चौकीदार द्वारा तथा मृत व्यक्ति के निकट के सम्बन्धी द्वारा व्यक्ति की पहचान कराना चाहिये।

स्थान :—सामान्यतया मृत्यूत्तर-परीक्षा सरकार द्वारा नियुक्त स्थान पर ही करना चाहिये जबतक अन्य स्थान में परीक्षा करने के लिए विशेष आज्ञा न मिले।

मृत्यूत्तर-परीक्षा करने वाले चिकित्सक को प्रायः घटना-स्थल पर पहुँचने का मौका नहीं मिलता। खोज करने वाले पुलिस अफसर द्वारा जो प्रारम्भिक जाँच करने का विवरण भेजा भी जाता है वह मृत्यूत्तर-परीक्षा में सहायता एवम् लाभ की दृष्टि से प्रायः बहुत थोड़ा और असंतोषजनक होता है।

परीक्षा के विवरण में निम्न ३ भाग स्पष्ट होना चाहिये :—

(अ) सामान्य विवरण।

(आ) बाह्य परीक्षा का विवरण।

(इ) आभ्यन्तरिक परीक्षा का विवरण।

(अ) सामान्य विवरण :—

१. मृत व्यक्ति का नाम, आयु, लिङ्ग, धर्म और पता।

२. पहरा देने वाले पुलिस कानेस्टेबिल का नाम और नम्बर तथा पहचान बतलाने वाले मृतव्यक्ति के सम्बन्धी का नाम।

३. थाने का नाम जहाँ से मृत शरीर भेजा गया है।

(आ) बाह्य परीक्षा का विवरण:—

१. पहचान के चिह्न :—गुदना, विकृति, तिल, घाव के चिह्न आदि।

२. शारीरिक अवस्था :—स्थूल, कृश, सड़ा हुआ, पाण्डु वर्ण आदि।

३. शरीर पर रक्त या वमन के धब्बे।

४. मृत्यूत्तर संकोच[1], मृत्यूत्तर, अधस्त्वक् नीलिमा[2] तथा सड़न के चिह्न।

५. वस्त्रों के कटाव, वे शरीर पर ठीक होते हैं या नहीं।

६. शरीर पर के आघात[3] और क्षतों के विषय में निम्न विवरण लिखना चाहिये :—

(क) संख्या:—एक, दो या इससे अधिक।

(ख) प्रकार या भेद :—पिच्चन, भेदन, उधड़न, गोली के व्रण, जलना, झुलसना आदि।

(ग) आकृति तथा आयाम-विस्तार:—प्रत्येक आघात की आकृति, लम्बाई, चौड़ाई और गहराई।

(घ) दिशा :—प्रत्येक आघात की दिशा।

(ङ) स्थिति :—प्रत्येक आघात शरीर के किस स्थान पर है।

(च) उपकरण :—शस्त्र जिससे आघात किया गया—नुकीला, तेज या टेढ़ा आदि।

(छ) आघात :—मृत्यु से पूर्व के हैं या बाद के।

(इ) आभ्यन्तरिक परीक्षा का विवरण :—

बाह्य परीक्षा करने के बाद शरीर का क्रमशः छेदन करके आभ्यन्तरिक अङ्गों एवम् रचनाओं को देखना चाहिये। आभ्यन्तरिक परीक्षा एक विशिष्ट क्रमसे करनी चाहिये।

1. Rigor mortis, 2, Cadaveric lividity, 3 Injury,

वक्ष :—

१. भित्ति :—

(क) मृदु रचनाओं के क्षत ।

(ख) अस्थि-भग्नः—अक्षकास्थि, वक्षोऽस्थि और पर्शुकायें आदि ।

२. फुफ्फुसावरण ।

३. फुफ्फुस ।

४. हृदय और उसकी गुहायें ।

५. हृदयावरण और हृदय की आभ्यन्तरिक श्लैष्मिक कला का आवरण[1] ।

उदर :—

१. महाप्राचीरा की स्थिति ।

२. उदर के सब अङ्गों की दशा ।

३. किसी अङ्ग या रचना में आघात अथवा रोग ।

स्त्री के सम्बन्ध में निम्न बातें भी देखना चाहिये :—

१. योनि और उसकी श्लैष्मिक कला की दशा अर्थात् विस्फार, आघात, शोथ, रक्तिमा, बाह्य-पदार्थ[2] या शल्य—जैसे छड़ी, बेंत आदि ।

२. योनिच्छद[3] की दशाः—कटा है या अक्षत है ।

२. गर्भाशय की दशाः—आकार, भार, उसकी श्लैष्मिककला की दशा, बाह्य पदार्थ की या भ्रूण की उपस्थिति या अनुपस्थिति, वर्तमान गर्भ[4] के जन्म के चिह्न ।

विष से संदिग्ध मृत्यु में निम्नलिखित रचनाओं और अङ्गों को भली प्रकार काँच के पात्रों में रखकर रासायनिक संरक्षक पदार्थ[5] मिलाकर चिकित्सक अपनी निजी सील लगाकर रासायनिक परीक्षक के पास भेजने के लिये रक्खे :—

१. आमाशय और उसके पदार्थ ।

२. यकृत् के खण्ड और वृक्क ।

---

1. Endocardium, 2. Foreign body, 3. Hymen.
4. Recent delivery, 5. Preservative

३. मूत्र ।
४. रासायनिक संरक्षक पदार्थ का नमूना ।
५. आमाशय का धावन :—विना रासायनिक संरक्षक मिलाये ।

इसके अतिरिक्त विशेष अवस्थाओं में निम्नलिखित वस्तुओं की भी आवश्यकता पड़ती है :—

१. हृदय और मस्तिष्क का एक भाग :—सन्देहयुक्त कुचला विष में ।
२. क्षुद्रान्त्र का ऊपरी भाग :—सन्देहात्मक वानस्पतिक विष में ।
३. क्षेपक कोष्ठों का रक्त :—कार्बन मानो आक्साइड (Carbon monoxide) और क्लोरोफार्म (Chloroform) विष में ।

शिर:—

निम्न बातें देखना चाहिये:
१. कपाल की दशा ।
२. सीवनियों का पृथक् होना ।
३. कपाल का अस्थिभग्न :—विशेषतया उसके तल पर ।
४. मस्तिष्क के अन्दर और बाहर की ओर रक्ताधिक्य ।
५. मस्तिष्कीय धमनियों की दशा ।

ग्रीवा :

निम्न बातें देखना चाहिये:—

१. बन्धन या अन्य चिह्न:—जो गलपाश, गला-घोटना आदि को बतलाते हैं ।
२. चिन्हों के नीचे या आस-पास रक्ताधिक्य अथवा सतह पर घृष्टव्रण आदि के चिह्न ।
३. कंठकास्थि अथवा स्वर-यंत्र की तरुणास्थियों का अस्थि-भग्न ।
४. आघात :—स्वकृत, परकृत आदि ।

सुषुम्ना और सुषुम्नाशीर्षक :—

इसमें यदि सुषुम्ना के रोग अथवा कशेरुकाओं का अस्थि-भग्न या स्थानच्युति हो, तो लिखना चाहिये ।

रक्त से रञ्जित वस्त्र की परीक्षा[1]

आघात-सम्बन्धी मामलों में जब आक्रमणकारी किसी व्यक्ति पर चाकू, छुरी, तलवार आदि शस्त्रों से आक्रमण करता है तो शरीर की धमनियों, शिराओं आदि के कटने से रक्तस्राव होकर आक्रमणकारी और घायल व्यक्ति के वस्त्रों पर, शस्त्र, दीवार, खिड़की, दरवाजा, शय्या, बिस्तर, ईट, पत्थर, भूमि आदि एवम् समीपस्थ अन्य वस्तुओं—पत्र, तृण, लता आदि पर रक्त गिरता है और उन पर रक्त के धब्बे पड़ जाते हैं।

इन मामलों में धब्बों के विषयमें दो प्रश्न उठते हैं जिनका निर्णय करना होता है:—

१. क्या यह धब्बा रक्त का है ?

२. यदि धब्बा रक्त का ही है, तो क्या यह मानवीय रक्त का है ?

इन दोनों बातों का निर्णय करना सरल नहीं है। इसीलिये इसका विश्लेषण करने के हेतु इनको रासायनिक परीक्षक के पास भेजने का नियम है।

इसकी परीक्षा करने की निम्नलिखित विधियाँ हैं:—

१. भौतिक परीक्षा।

२. रासायनिक परीक्षा।

३. सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा परीक्षा।

४. परीक्षा की अन्य विधियाँ।

(१) भौतिक परीक्षा

यदि रक्त का धब्बा अभी हाल ही का है, तो केवल दर्शन मात्र से ही इसका सरलता से ज्ञान हो सकता है, किन्तु जब इस प्रकार के धब्बों को पड़े हुये बहुत समय बीत जाता है, तब कठिनाई होती है। रक्त का धब्बा किसी पदार्थ पर किस समय पर पड़ा, यह बतलाना एक निपुण चिकित्सक के लिये भी कठिन है।

रक्त के धब्बों की विशेषतायें:—

(१) श्वेत वस्त्र पर नवीन रक्त का धब्बा चमकदार रक्त वर्ण का होता है

---

1 Examination of blood stain

जो धीरे धीरे रक्त कपिल वर्ण का हो जाता है—इस परिवर्तन में प्रायः २४ घंटे लगते हैं और इसका कारण रक्त की हिमोग्लोबिन (Haemoglobin) का मेटहिमोग्लोबिन (Methaemoglobin) में परिवर्तित हो जाना है।

(२) गंदे या गहरे रंग के वस्त्रों पर पड़े हुये रक्त के धब्बे किसी अंधेरी कोठरी में ले जाकर कृत्रिम प्रकाश के सामने रखकर देखने पर गहरे लाल या काले रंग के दिखाई पड़ते हैं।

(३) रुई, रेशम, फलेनेल आदि मृदु और हल्के वस्त्रों पर रक्त के धब्बे पड़ने से वे कड़े पड़ जाते हैं और उनका स्पर्श श्वेतसार की भांति होता है।

(४) लौह, स्फटिक आदि कठोर एवम् ठोस पदार्थों पर पड़ा हुआ रक्त का नवीन धब्बा चमकदार, गहरे रंग का एवम् मृदु होता है। यदि धब्बा पुराना है, तो वह कई स्थान से चटका हुआ होता है।

(५) नवीन रक्त के धब्बे की हिमोग्लोबिन (Haemoglobin) पुराने की अपेक्षा जल में अधिक घुलनशील होती है।

(६) धमनी का रक्त यदि वस्त्र आदि पर हाल ही में गिर पड़ा है तो वह चमकदार रक्तवर्ण का होगा और एक दीर्घ क्षेत्र में नाशपाती के आकार की तरह चिह्न पाये जायेंगे।

(७) आर्तव शोणित और सामान्य रक्त में भेद जानना आवश्यक है, अतएव उनका भेद नीचे दिया जाता है :—

आर्तव रक्त	साधारण रक्त
१. वर्ण :—गहरा लाल होता है।	१. वर्ण :—चमकदार लाल होता है।
२. प्रतिक्रिया :—अम्लीय अथवा कम क्षारीय होती है।	२. प्रतिक्रिया :—सर्वदा क्षारीय होती है।
३. जमता नहीं है।	३. रक्तनलिकाओं से बाहर आकर रक्त सदैव जम जाता है।
४. अति पिच्छिल होता है।	४. कम पिच्छिल होता है।
५. गंध :—अप्रिय होती है।	५. गंध :—अप्रिय नहीं होती।
६. इसमें योनि एवं गर्भाशय के श्लैष्मिक स्तर की सेलस् भी मिलते हैं।	६. इस प्रकार की सेलस् बिलकुल नहीं मिलते।

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से धब्बों के भौतिक रूप का कोई विशेष महत्त्व नहीं है क्योंकि कई प्रकार के कृत्रिम रंग, वनस्पतियों के रस, ताम्बूल-पत्र को चबाकर उसकी पोक थूकने आदि के कारण इस प्रकार का भ्रम हो सकता है। अतएव परीक्षा की अन्य विधियों से इसका निर्णय करना आवश्यक है।

(२) रासायनिक परीक्षा

(I) ग्वायकम टेस्ट (Guaiacum test):—

एक सफेद फिल्टर पेपर को जल में भिगोकर रक्त के ऊपर रखकर धीरे धीरे फिल्टर पेपर को तब तक मलना चाहिये जब तक कि रक्त का धब्बा उस पर न आ जाये। फिर पेपर पर नवीन निर्मित टिंचर ग्वायकम (Tincture Guaiacum) की १ या २ बूँद डालो। इस पेपर के ऊपर रक्त के धब्बे का वर्ण लाल हो जायेगा। अब इस पर तारपीन का तेल, ओज़ोनिक ईथर (Ozonic ether) अथवा जलमिश्रित हाइड्रोजन पर आक्साइड (Hydrogen peroxide) का १ वा २ बूँद डालो—उसका वर्ण तत्काल नीला हो जायगा। यदि रक्त का धब्बा बहुत पुराना न हो तो रक्त के $\frac{१}{५०००}$ या $\frac{१}{६०००}$ शक्ति के घोल में इसको परीक्षा की जा सकती है। किन्तु यह भी स्मरण रहे कि यह रक्त की बिलकुल ठीक ही परीक्षा नहीं है क्योंकि लालारस, दुग्ध, स्वेद, पित्त, सैन्धव लवण आदि के साथ भी यही प्रतिक्रिया होती है।

(II) बेन्ज़ीडीन टेस्ट—(Benzidine test) :—

किसी रक्त से रंजित वस्त्र पर बेन्ज़ीडीइन रीएजंट (Benzidine reagent) और हायड्रोजन पर ऑक्साईड का ३ प्रतिशत का घोल—दोनों की एक एक या दो दो बूँद डालने पर तत्काल उसका चमकदार नीला वर्ण हो जायगा $\frac{१}{३००००}$ शक्ति के घोल में इसकी परीक्षा की जा सकती है। किन्तु यही प्रतिक्रिया थूक और पूय के साथ भी होती है।

बेंज़ीडीन-द्रव (Benzidine reagent) :—

विशुद्ध ग्लेशियल सिरकाम्ल (Pure Glacial acetic acid) में बेंज़ीडीन का १० प्रतिशत का घोल बनाओ—इसके १ सी० सी० में,

३ प्रतिशतका हायड्रोजन पेरॉक्साईड (Hydrogen peroxide) २ सी० सी० मिलाओ—यही बैंजीडीन का द्रव है।

(III) क्यास्टल मेयर टेस्ट (Kastle meyer test) :—

इसमें दो प्रकार के द्रवों की (reagents) आवश्यकता पड़ती है:—

(क) हायड्रोजन पेराक्साईड—२० प्रतिशत की शक्ति वाला।

(ख) फ़िनॉफ्थालिन-द्रव (Phenolophthalein reagent):—

Phenolophthalein	2 grammes,	
Potassium Hydrate	20 grammes.	
Distilled water ad	100 c. c.	

रक्त-रंजित वस्त्र के धब्बे के घोल में १ या २ बूँद (क) और ८ या १० बूँद (ख) द्रव के मिलाने पर पोटाशियम परमाँगनेट की भाँति गहरा रंग हो जायगा। अब इसमें यशद चूर्ण १० से २० ग्रेन तक थोड़ा थोड़ा करके डालो जब तक कि घोल वर्णहीन न हो जाय। रक्त के ८०००१०००० शक्ति के घोल में यह परीक्षा सफलता के साथ की जा सकती है।

(Iv) हीमिन क्रिस्टल टेस्ट (Haemin crystal test) :—

रक्त से रंजित वस्त्रों के सूत्रों को एक काँच की स्लाइड (Slide) में रक्खो और इसमें सैन्धव लवण के १ या २ कण तथा Glacial acetic acid की कुछ बूंदें डालकर धीरे धीरे मन्द आँच में गरम करके सुखा लो। अब इसे उच्च शक्ति के सूक्ष्मदर्शक यंत्र के द्वारा देखने पर समानान्तर चतुर्भुजाकार के गहरे भूरे रंग के अथवा पीत रक्त वर्ण Haemin के स्फटिक दिखाई देंगे, यदि ये धब्बे रक्त ही के होंगे।

(v) हिमोक्रोमोजेन क्रिस्टल टेस्ट

(Haemo-chromogen Crystal test):—

रक्त-रंजित वस्त्र के टुकड़ों को एक काँच की स्लाइड (Slide) पर रखकर, उस में टाकायामा नामक द्रव (Takayama solution) की २—३ बूंद डालकर—इसे ठण्डा होने दे, फिर इसके ऊपर एक कवर स्लिप (Cover slip) लगा दो अब इसे सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखो—पंख के सदृश स्फटिक सामूहिक रूप में पाये जायेंगे। स्फटिक ४ या ५ मिनट में प्रगट हो जाते हैं कभी कभी अधिक समय भी लग जाता है।

टाकायामा-द्रव Tekayama solution:—

Re/ Sodium Hydroxide 10 % 3 c. c.
pyridine 3 c. c.
Dextrose (जल में संतृप्त विलयन) 3 c. c.
Distilled water 7 c. c.

सबको मिलाकर शीशी में रख लो ।

(३) सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा परीक्षा

एक घड़ी के शीशे में रक्तरंजित वस्त्र के टुकड़ों को वायबर्ट्स फ्ल्यूड (Vibert's fluid) में घोलो और इसे ३० मिनट तक रक्खा रहने दो । तदनन्तर वस्त्र के टुकड़ों को निचोड़ दो और इस प्रकार से प्राप्त द्रव की १ बूंद काँच की स्लाइड पर रक्खो और सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा इसको देखो—यदि धब्बा मानवीय रक्त का होगा तो इसमें गोलाकार द्वि-नतोदर, केन्द्रहीन कपिल या पीत-रक्त वर्ण के रक्ताणुओं की टिकियाँ दिखाई देंगी । ऊँट के रक्त में ये अण्डाकार और द्वि-उन्नतोदर तथा रेंगने वाले पशुओं, चिड़ियों एवम् मछलियों में--अण्डाकार, केन्द्र युक्त एवम् द्वि-उन्नतोदर होते हैं ।

यदि रक्त के धब्बे २४ घण्टे से कम समय के हैं, तब तो इस परीक्षण से यथेच्छ सहायता मिलती है, इसके बाद ये रक्ताणु संकुचित एवम् शुष्क होकर नष्ट हो जाते हैं ।

व्हायबर्ट का द्रव Vibert's fluid:—

Sodium chloride 2 grs.
Mercuric chloride 30 grs.
Distilled water ad 100 c. c.

(४) अन्य परीक्षाएँ

(१) प्रेसीपिटीन टेस्ट (Precipitin test) :—

सिद्धान्तः—

यदि किसी एक वर्ग (Species) के पशु की लसिका अन्य वर्ग के किसी पशु में 'इन्जेक्ट' (inject) कर दी जाय तो कुछ समय के अन्दर उसके सीरम

(Serum) में एक प्रकार का प्रतियोगी पदार्थ (Anty-body) उत्पन्न होकर अवक्षेप पैदा कर देता है। व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से यह परीक्षण अपना एक विशेष महत्त्व रखता है क्योंकि इससे मनुष्य के रक्त और अन्य पशुओं के रक्त में परस्पर भेद का सम्यक्रूपेण ज्ञान हो जाता है।

विधि :—

रक्तरंजित वस्त्र के टुकड़ों में से ३ वर्ग इञ्च काट कर उसका रक्त किसी चाकू आदि से खुरच कर ४० सी० सी० लवणोदक (Normal saline) में डाल दो और उसे २४ घंटे रक्खा रहने दो। इस प्रकार से रक्त का घोल $\frac{१}{१०००}$ शक्ति का होना चाहिये। यदि धब्बा बहुत पुराना हो तो लवणोदक में किंचित् पोटाशियम सायनाइड का घोल भी मिला देना चाहिये।

अब किसी खरगोश आदि का रक्त—जिसको कि इससे पूर्व ही मानवीय रक्तलसिका के कम से कम चार दिन के अन्तर पर ४ सी० सी० और ८ सी० सी० के दो इन्जेक्शन दिये जा चुके हों—निकाल कर, उसके सीरम को पृथक् कर लेते हैं।

फिर एक संकीर्ण परीक्षा-नलिका लेकर उसमें इस प्रकार से प्राप्त सीरम की कुछ बूँद डाल देते हैं। फिर धब्बे का जो घोल तैय्यार किया गया था, उसे १ सी० सी० लेकर एक पीपेट की सहायता से परीक्षा-नलिका में धीरे-धीरे दीवार के सहारे से डालना चाहिये। यदि दोनों के मध्य में एक कपिल-श्वेत वर्ण का वलय २ से ५ मिनट में दिखाई पड़े तो वह धब्बा मानवीय रक्त का होगा।

अन्य परीक्षाएँ

उपर्युक्त परीक्षाओं के अतिरिक्त विशेषतया ब्लड ग्रूपिंग टेस्ट (Blood Grouping Test) तथा स्पेक्ट्रोस्कोपिक (Spectroscopic Test) ये दो परीक्षाएँ रक्त की परीक्षा में महत्त्व की हैं। इनको अन्य विस्तृत पुस्तकों में देखना चाहिये।

शुक्र के धब्बों की परीक्षा

इस प्रकार को परीक्षा की आवश्यकता बलात्कार एवम् अस्वाभाविक मैथुन सम्बन्धी अभियोग के समय पर पड़ती है। ये शुक्र के धब्बे बलात्कार की हुई स्त्री, कर्मपुरुष और कर्ता के शरीर एवम् वस्त्रों पर, कीचड़, पत्थर और भूमि आदि पर पाये जा सकते हैं। इसकी परीक्षा की ४ विधियाँ हैं :—

१. भौतिक परीक्षा।

२. रासायनिक परीक्षा।

३. सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षा।

४. जन्तुओं पर प्रयोग।

(१) भौतिक परीक्षा—

शुक्र एक पिच्छिल और श्वेत या किंचित् पीत-श्वेत वर्ण का गाढ़ा द्रव होता है जिसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है। जिस वस्त्र पर यह लग जाता है, शुष्क हो जाने पर वह भाग कड़ा पड़ जाता है और उसका वर्ण किंचित् कपिल पीत हो जाता है, यदि इसे गरम किया जाय तो इसका वर्ण पहले की अपेक्षा गहरा हो जाता है।

(२) रासायनिक परीक्षा—

१. फ्लोरेन्स टेस्ट (Florences test):—

शुक्र के धब्बों को पृथक् पृथक् चिह्नित करके नम्बर लगा देना चाहिये और जिसकी परीक्षा करनी हो—उसको कैंची से ¼ इञ्च भाग काटकर एक घड़ी के शीशे में ग्लीसरीन डालकर भिगो दो और ४–५ मिनट के बाद वस्त्र को निचोड़ दो। फिर एक काँच को स्लाइड पर फ्लोरेन्स के घोल की एक बूँद डालकर ऊपर कहे हुए निर्मित द्रव की भी २–१ बूँद डालकर 'कवर स्लिप' लगा दो और इसे सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा देखो। यदि वास्तव में यह शुक्र का धब्बा होगा तो उसमें समानान्तर चतुर्भुजाकार कपिल वर्ण के बड़े कण दिखलाई देंगे। इसी प्रकार प्रत्येक धब्बे का परीक्षण करके ज्ञात करना चाहिये कि उसमें से कितने शुक्र के ही धब्बे हैं।

---

1. Examination of seminal stains

(२) रासायनिक परीक्षा की एक विधि 'बारबेरिओज टेस्ट' भी है।

(३) सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षा—

लवणोदक में शुक्र के धब्बों को घोलकर सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षा की जाती है। इसमें शुक्राणुओं को देखना चाहिये।

बलात्कार के मामले में उस स्त्री की योनि में एक फुरहरी डालकर उसकी 'स्लाइड' बनाकर परीक्षा करनी चाहिये। मनुष्य के शुक्राणु के ३ भाग होते हैं:—

१. शिर :—यह अण्डाकार होता है। इसकी लम्बाई $\frac{१}{१००००}$ से $\frac{१}{१०००}$ इञ्च तक होती है।

२. गात्र :—इसकी लम्बाई भी सिर के बराबर ही होती है।

३. पुच्छ :—इसकी लम्बाई $\frac{१}{५०००}$ से $\frac{१}{४०००}$ इञ्च तक होती है। यन्त्र द्वारा देखने पर यह गति करती हुई दिखलाई पड़ती है।

शुक्राणु की लम्बाई $\frac{१}{१०००}$ से $\frac{१}{५००}$ इञ्च तक होती है।

(४) जन्तुओं पर प्रयोग :—[1]

शुक्र का धब्बा चाहे नया हो या पुराना:—इस परीक्षा के द्वारा उसका ठीक ठीक ज्ञान हो सकता है। मनुष्य के शुक्र को १० सी. सी. की मात्रा में खरगोश को उदरावरणीय गुहा (Peritonial cavity) में ६ से ८ दिवस का अवकाश देकर ५ से ८ इन्जेक्शन लगाते हैं और फिर उस खरगोश का सीरम निकाल कर यदि सन्देहयुक्त धब्बे के घोल में मिला दिया जाय तो यदि वह शुक्र का धब्बा होगा तो उसमें अवक्षेप पैदा हो जायगा।

1, Biological test,

चौथा अध्याय

न्यायालय की दृष्टि से 'मृत्यु' का विचार

(Medico-Legal Aspects of death)

न्यायालय में 'मृत्यु' के विषय में निम्न बातों पर विचार करने की आवश्यकता हो सकती है।

१. व्याख्या।

२. मृत्यु के ३ मुख्य कारण (Modes of death)।

३. आकस्मिक 'मृत्यु' (Sudden death)।

४. मृत्यूत्तर शारीरिक परिवर्तन (Post-Mortem-Changes in the body)।

५. 'मृत्यु' का समय।

६. न्यायालय द्वारा व्यक्ति को 'मृत' माना जाना जब तक यह सिद्ध न हो कि वह जीवित है (Presumption of death)।

(१) व्याख्या :—

जीवित शरीर के समस्त महत्त्व के कार्यों (Vital Functions) का स्थायी रूप से रुक जाने को मृत्यु कहते हैं। न्यायालय द्वारा इसकी दो अवस्थायें मानी जाती हैं[1] :—

१. स्थूल मृत्यु[2] :—यह मृत्यु की प्रथमावस्था है। इसमें मस्तिष्क, हृदय और फुफ्फुस की क्रियायें पूर्ण रूप से बन्द हो जाती हैं और सम्पूर्ण शरीर चेतनाहीन हो जाता है।

२. आणविक मृत्यु[3] :—यह मृत्यु की द्वितीयावस्था है। इसमें शारीरिक सेल्स और धातुओं में तापक्रम का ह्रास होते-होते कुछ अन्स परिवर्तन होकर सम्पूर्ण शरीर पंचत्व में मिल जाता है।

---

1. Modes of death, 2. Somatic death, 3. Molecular death.

(२) मृत्यु के ३ मुख्य कारण

प्राकृतिक या आकस्मिक मृत्यु होने पर निम्न तीन कारणों में से एक या अधिक उपस्थित होते हैं।

(अ) हृत्कार्यावरोध (Syncope)।

(ब) श्वासावरोध (Asphyxia)।

(स) मूर्छा तथा मस्तिष्क-कार्यावरोध (Coma)।

(अ) हृत्कार्यावरोध

कारण :—

१. पांडु या रक्तोल्पता Anaemia)।

२. हृत्पेशी-दौर्बल्य (Asthenia)।

३. हृदयावसाद (Shock)।

४. चिरकारी रोग (Exhausting disease)।

(१) **पाण्डु या रक्ताल्पता** :—परिभ्रमण करने वाले रक्त की कमी। दो अवस्थाओं में हो सकती है :—

(क) किसी रोग अथवा आघात के कारण शरीर से अत्यधिक रक्तस्राव का होना।

(ख) विषम ज्वर, विसूचिका, प्रवाहिका, संखिया विष आदि के कारण रक्त-तरलांश का अत्यधिक मात्रा में कम हो जाना या रक्त के 'लाल' कणों का नाश हो जाना।

(२) **हृत्पेशी-दौर्बल्य** :—हृत्पेशी में 'मेदापक्रांति' (Fatty degeneration), हृत्कपर्दिकों के रोग (Valvular diseases) या किसी हृद्विष के कारण हृत्पेशी का दौर्बल्य उत्पन्न हो जाता है।

(३) **हृदयावसाद (Shock)** :—शिरपर, उदरपर या सुषुम्नापर तीव्र आघात के कारण तथा मूत्राशय से मूत्र का या फुप्फुसावरण, हृदयावरण या अंत्रावरण में स्थित जल का अकस्मात् तीव्र गति से विस्रावण करने से भी सभी शारीरिक क्रियाओं में आकस्मिक अवसाद (Shock) उत्पन्न

होता है और साथ २ हृत्कार्यावरोध भी होता है। अत्यधिक परिश्रम के बाद अधिक मात्रा में शीतल जल पीने से भी हृदयावसाद की अवस्था उत्पन्न होती है।

(४) चिरकारी रोग :— यक्ष्मा, कुष्ठ, मधुमेह आदि चिरकारी रोगों के कारण शक्ति का अत्यधिक ह्रास होने के बाद हृदयावसाद उत्पन्न होता है।

लक्षण तथा चिह्न :—

१. मुखाकृति पीतवर्ण की हो जाती है।
२. त्वचा—शीतल एवम् स्वेदयुक्त होती है।
३. जी मचलाने लगता है।
४. वमन—होता है।
५. बेचैनी—बहुत बढ़ जाती है।
६. रोगी हाँफने लगता है।
७. नाड़ी :—
   (क) रक्ताल्पता में :—दुर्बल, शिथिल और अनियमित चलती है।
   (ख) हृदय के रोग में नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है।
८. रोगी प्रलाप (Delirium) की अवस्था में पहुँच जाती है।
९. आँखों की पुतलियाँ प्रसारित होती हैं।

मृत्यूत्तर रूप :—

१. (क) रक्ताल्पता में हृदय संकुचित होता है और उसके दोनों कोष्ठ रिक्त होते हैं।
   (ख) हृदय के रोगों में :—हृदय के दोनों कोष्ठ भरे हुये होते हैं।
२. दोनों अवस्थाओं (क और ख) में फुफ्फुस, मस्तिष्क और उदर के अवयव पीले पड़ जाते हैं।

(ब) श्वासावरोध

श्वास-प्रश्वास की क्रिया में अवरोध होने से शारीरिक सेल्स को प्राण वायु (Oxygen) न मिलने के कारण मृत्यु होती है। इसमें प्रथम श्वासावरोध होने के बाद हृत्कार्यावरोध होता है।

कारण :—

(१) श्वासमार्ग में अवरोध:—श्वासमार्ग में भीतर कोई बाह्यवस्तु, श्लेष्मा जल या अर्बुद के कारण आभ्यन्तरिक अवरोध या कंठपीडन या फांसी जैसे बाह्य दबाव के कारण (श्वासमार्ग) में अवरोध हो सकता है। कभी २ स्वरयन्त्र के प्रारम्भिक भाग (Glottis) में शोथ या किसी ऍसिड या अन्य पदार्थों के बाष्प से इस स्थानमें क्षोभ होने से श्वासमार्ग में आकस्मिक संकोच (Sudden Spasm of the Glottis) होकर श्वासावरोध होता है।

(२) अत्यन्त उच्च पर्वतीय हवा में प्राणवायु की कमी होने से या स्थानिक हवा में अन्य ग्यासेस की उपस्थिति होने से प्राणवायु की कमी होती है।

(३) श्वास-प्रश्वास की पेशिओं की शक्ति का ह्रास या उनमें स्थायी संकोच जैसे धनुर्वात (Tetanus) या कुचला-विष के प्रभाव से होता है। फ्रिनिक या न्युमोगॅस्ट्रिक नाड़ियों के रोग या क्षत, सुषुम्नाशीर्षक (Medulla) के क्षत या आघात के कारण भी श्वास-प्रश्वास की पेशियों का कार्य रुक सकता है। अत्यन्त शारीरिक कृशता के कारण या तीव्र शीत से भी पेशिओं की शक्ति नष्ट हो सकती है। वक्ष या उदर पर लगातार अत्यधिक दबाव आने से भी पेशिओं का कार्य स्थगित हो सकता है।

(४) फुफ्फुस का घनीभूत होना (Collapse)—फुप्फुसावरण में स्थित हवा, जल सदृश द्रव या पूय के कारण फुफ्फुस पर दबाब आने से फुफ्फुस घन हो जाते हैं। बाह्य वक्ष के दीवाल को छेदकर वक्षगुहा में पहुँचने वाला व्रण (PenctratingWound , से बाह्य हवा अन्दर घुसने से फुप्फुस घन होता है।

(५) फुप्फुसीय धमनीगत अवरोध (Embolism) :—धमनीगत अवरोध के कारण फुप्फुसों में रक्त नहीं पहुँचता।

लक्षण तथा चिह्न :—

इसकी ३ अवस्थायें होती हैं।

[१] **प्रथम अवस्था** Stage of exaggerted breathing—

१. श्वास-क्रिया जल्दी जल्दी और परिश्रमशील होती है।

२. हृदय की गति तीव्र होती है।

३. मुख, ओष्ठ और नख—नीले पड़ जाते हैं।

[२] द्वितीयावस्था (Stage of Convulsions)

१. मल-मूत्र का अनैच्छिक उत्सर्ग हो जाता है। पुरुषों में कभी कभी शिश्न फूला हुआ मिलता है और वस्त्रों पर वीर्य निकल पड़ने के कारण धब्बे पाये जाते हैं।

२. श्वास झटके के साथ दौरे के रूप में आती है।

३. पेशियों में आक्षेप होते हैं।

[३] तृतीयावस्था (Stage of Exhaustion):—

१. श्वास—केन्द्र का पक्षाघात हो जाता है।

२. आँखों की पुतलियाँ प्रसारित होती हैं।

३. प्रत्यावर्तन नष्ट हो जाते हैं।

४. पेशियाँ शिथिल पड़ जाती हैं।

तदनन्तर मृत्यु हो जाती है। ये तीनों अवस्थाएँ ५ से १५ मिनिट में समाप्त होती हैं।

मृत्यूत्तर रूप:—

(क) बाह्य :—

१. मुख, ओष्ठ और नख–नीले पड़ जाते हैं।

२. मुख और ग्रीवा की शिरायें रक्तसे भरी होने के कारण फूली हुई होती हैं।

३. मल-मूत्र त्याग के चिह्न पाये जाते हैं। पुरुषों में कभी कभी शिश्न फूला हुआ और वस्त्रों पर शुक्र के चिह्न मिलते हैं।

४. मृत्यूत्तर-संकोच धीरे धीरे आरम्भ होता है। परन्तु मृत्यूत्तर नीलिमा (Cadaveric Lividity) जल्दी उत्पन्न होती हैं।

५. जिह्वा बाहर निकली हुई होगी।

(ख) आभ्यन्तरिक:—

१. श्वास-प्रणाली और श्वास–नलिकाओं में रक्त-मिश्रित फेन पाया जायगा।

२. फुफ्फुस में रक्ताधिक्य होगा—यदि धीरे धीरे मृत्यु हो। किन्तु अकस्मात् मृत्यु होने पर रक्त की कमी पायी जायगी।

३. हृदय का दाहिना भाग गहरे तरल रक्त से भरा होता है और बायाँ भाग खाली होता है। और कभी कभी दोनों भाग रक्त से भरे होते हैं।

४. मस्तिष्क में प्रायः रक्ताधिक्य हो जाता है।

५. वृक्क, यकृत्, प्लीहा आदि उदर के अवयवों में रक्ताधिक्य पाया जाता है।

६. मस्तिष्कावरण, हृदयावरण और फुफ्फुसावरण के नीचे रक्तस्राव के कारण रक्तस्राव की लाल-लाल बुँदियाँ (Tardieu's spots) दिखाई देती हैं।

(स) मूर्छा तथा मस्तिष्क-कार्यावरोध (Coma)

इसमें किसी भी कारण से प्रारम्भ में मूर्छा होकर अन्त में 'मस्तिष्क कार्यावरोध' होने से मृत्यु होती है।

कारण :—

१. रोग:—मधुमेह या मूत्रविषमतया[1] के कारण उत्पन्न मूर्छा।

२. मस्तिष्कीय रक्तस्राव, या मस्तिष्कगत रक्ताधिक्य[2]

३. मस्तिष्क पर दबाव आने से, जैसे निम्न कारणों से :—

(क) कपालास्थियों का नत भग्न।

(ख) मस्तिष्कीय अर्बुद[3]।

(ग) मस्तिष्कावरण शोथ [4]।

४. मस्तिष्क पर क्रिया करने वाले विष :—जैसे अफीम, मद्य कार्बोलिक ऍसिड आदि।

लक्षण तथा चिह्न :—

१. रोगी बेहोश हो जाता है किन्तु अस्थायी रूप से जागृत किया जा सकता है।

---

1. Uraemia, 2. Apopexy 3. Cerebrel Tumour, 4. Meningitis.

२. प्रत्यावर्तन—नष्ट हो जाते हैं ।

३. श्वास-क्रिया—अनियमित, खरखराहट के साथ और मन्द होती है ।

४. नाड़ी गति—मन्द और भारी होती है ।

५. तापक्रम—साधारण या साधारण से भी कम होता है ।

मृत्यूत्तर रूप :—

१. यदि मृत्यु का कारण आघात है, तो मस्तिष्क के ऊपर रक्तस्राव पाया जायगा ।

२. मस्तिष्कावरण रक्तिमायुक्त होगा और उस पर रक्त जमा हुआ होगा ।

३. हृदय का वाम भाग प्रायः रिक्त होगा ।

(३) आकस्मिक मृत्यु (Sudden death)

कारण:—आकस्मिक दुर्घटना, आघात या विष के कारण मृत्यु होने पर पुलिस द्वारा 'मृत्यूत्तर-परीक्षा' की व्यवस्था की जाती है । कभी कभी शारीरिक कारणों से भी आकस्मिक मृत्यु होती है । आकस्मिक मृत्यु के कारणों का विचार करते समय शारीरिक रोग या अन्य कारणों को भी ध्यान में रखना आवश्यक है । आकस्मिक मृत्युके शारीरिक कारणोंका अभ्यास निम्न विभागों में कर सकते हैं:—

(क) रक्तवाहक-संस्थान-सम्बन्धी कारण:—

(१) हृत्पेशी में मेदापक्रान्ति, हृत्कपर्दिकों के रोग, हृद्धमनियों में अवरोध (Embolism or thrombosis), हृदयावरण के रोग ।

(२) धमनी-दार्ढ्य (Arterio-Sclerosis), धमनीविस्तार (Aneurism), धमनी में अवरोध (Embolism) तथा शिरावक्रता और विस्तार (VaricoseVeins) ।

(३) मस्तिष्कगत रक्तस्राव—यह प्रायः मस्तिष्कगत 'धमनीविस्तार' के फट-जाने से होता है । मदात्यय से पीड़ित या फिरंग से पीड़ित व्यक्तियों में यह अधिक होता है ।

(ख) पाचकसंस्थान तथा अन्य औदरिक अंगों से संम्बन्धित कारण:—

(१) आमाशय या ग्रहणी के व्रण का फटना ।

(२) प्लीहा, यकृत्, पित्ताशय, मूत्राशय या गर्भाशय का विदार।

(३) अत्यधिक भोजन के बाद परिश्रम करना या अत्यधिक परिश्रम के बाद ठंडे पदार्थ पीना।

(४) अग्न्याशय (Pancreas) का अति तीव्र रक्तस्रावी शोथ।

(ग) श्वास-संस्थान-सम्बन्धी कारण:--

श्वास-संस्थान के भिन्न-भिन्न रोग जिनके कारण श्वासावरोध उत्पन्न होकर प्राणवायु को कमी से मृत्यु होती है।

(घ) नाडी-संस्थान-सम्बन्धी कारण :--

(१) मानसिक या शारीरिक आकस्मिक अवसाद की अवस्था (Shock)।

(२) सामान्य कर्म जैसे योनि-परीक्षा, उत्तर वस्ति, मूत्रमार्ग में विशोधिनी शलाका प्रवेश इत्यादि से कभी कभी आकस्मिक अवसाद होकर हृदयावसाद से मृत्यु होती है।

(३) फुफ्फुसावरण, हृदयावरण या अन्त्रावरण में स्थित उदक का अकस्मात् पूर्ण विस्रावरण करने से भी रक्तदाब (Blood Pressure) अकस्मात् कम होने से मृत्यु हो सकती है।

(ङ) संक्रामक रोग :--

विसूचिका, प्लेग, इन्फ्लुएँजा, रोहिणी इत्यादि तीव्र संक्रामक रोगों के कारण भी अकस्मात् मृत्यु हो सकती है।

(४) मृत्यूत्तर शारीरिक परिवर्तन

(Post-Mortem Changes in the boby)

संक्षेप में मृत्यूत्तर शरीर में निम्न परिवर्तन होते हैं:—

१. रक्तसंवहन का लगातार तथा पूर्णतया रुक जाना[1]।

२. श्वास-प्रश्वास का लगातार तथा पूर्णतया रुक जाना[2]।

३. मृत्यूत्तर पेशीगत आकस्मिक संकोच। (Cadaveric spasm)

४. त्वचा में परिवर्तन[3]।

५. नेत्रगत परिवर्तन[4]।

---

1. Cessation of circulation 2. Cessation of respiration; 3. Changes in the skin, 4. Changes in the eyes

६. शरीर के तापक्रम में परिवर्तन [१] ।
७. मृत्यूत्तर पेशिश्रों में परिवर्तन ।
८. मृत्यूत्तर नीलिमा [२] ।
९. कोथ तथा सड़न [३] ।
१०. शारीरिक 'मेद' में परिवर्तन (Saponification)
११. शरीर का शुष्क होना (Mummification)

[१] रक्त-संवहन का लगातार तथा पूर्णतया-रुकना

लगातार ५ मिनट तक हृदय के स्पन्दन को श्रवणयंत्र (Stethoscope) से परीक्षा करनी चाहिये ।

परीक्षा:--

१. हृदय की धड़कन बहुत धीरे धीरे होने के कारण नाड़ी में स्पन्दन नहीं होगा ।
२. इसी कारण (१) से हृदय का स्पन्दन भी नहीं सुनाई पड़ेगा ।
३. किसी अंगुली के चारों ओर एक बन्धन कसकर बाँध देने पर बन्धन से आगे के भाग में शोथ नहीं उत्पन्न होगा ।
४. किसी छोटी धमनी को काट देने पर उसमें से फुहारे के रूप में रक्त नहीं निकलेगा ।
५. त्वचा को अग्नि से दग्ध करने पर जीवन काल का छाला नहीं पड़ेगा ।
६. नखों पर दबाव डालने पर रक्तिमा नहीं होगी ।
७. हाथ को अत्यन्त तीव्र प्रकाश जैसे सूर्य, १०० W की बत्ती आदि—के सामने रखकर देखने पर चमकदार लाल नहीं दिखाई देगा ।

[२] श्वास-प्रश्वास का लगातार तथा पूर्णतया रुक जाना

लगातार ५ मिनट तक श्रवण-यंत्रसे फुफ्फुस की परीक्षा करनी चाहिये ।

कुछ अवस्थाओं में कुछ समय के लिये श्वासक्रिया बन्द हो जाने पर भी व्यक्ति जीवित रह सकता है:—

---

1. Cooling of the body.
2. Cadaveric lividity.
3. Putrefaction

१. तत्काल उत्पन्न शिशु में ।

२. मामूली तरह से डूबे हुए व्यक्तियों में ।

३. श्वासकृच्छ्रता की दशा में ।

परीक्षाः—

(१) किसी चमकदार, स्वच्छ, शीतल दर्पण को नासिका के छिद्रों एवम् मुखद्वार के समीप लाकर दर्पण को देखना चाहिये । यदि उस पर कुछ धुँध सा दिखलाई पड़े तो श्वास-क्रिया हो रही है अन्यथा धुंध के अभाव में श्वास-क्रिया का अवरोध होगा ।

(२) नासिका के छिद्रों के सामने किसी रुई के ड़ोरे अथवा किसी पक्षी के पंख को रखना चाहिये । यदि उसमें किञ्चित् भी कम्पन न हो तो समझना चाहिये कि श्वास-क्रिया का अवरोध हो गया है, विपरीत दशा में श्वास-क्रिया हो रही है यह ज्ञान होता है ।

(३) किसी छिछले पात्र में पारद डालकर छाती पर रक्खो और उस पर तीव्र प्रकाश डालकर उसका प्रतिबिम्ब देखो, उसमें कम्पन नहीं होगा ।

कभी २ 'योगसाधन' के कारण विसूचिका, योषापस्मार, क्लोरोफार्म-विष इत्यादि के कारण श्वास-प्रश्वास और हृदय की गति लगातार कुछ मिनटों से आधा घंटे तक पूर्णतया रुक सकती है । इस कारण उपर्युक्त परीक्षाओं को करना आवश्यक होता है ।

[३] मृत्यूत्तर पेशीगत आकस्मिक संकोच (Cadaveric spasm)

अत्यधिक शारीरिक परिश्रम और मानसिक उत्तेजना के बाद मृत्यु होने पर मृत्यु के पूर्व ही शारीरिक पेशियाँ संकुचित और कड़ी रहती हैं । श्वासावरोधजन्य आकस्मिक मृत्यु के बाद, सुषुम्नाशीर्षक में आघात या क्षोभ के कारण मृत्यु होने पर भी पेशियाँ मृत्युपूर्व ही कड़ी होती हैं ।

नाडीसंस्थान की उत्तेजना, जीवित अवस्था में उत्पन्न पेशिओं में ऐच्छिक संकोच तथा **सारकोलक्टिक** (Sarcolactic) तथा अन्य अम्लों की जीवित अवस्था में ही अत्यधिक मात्रा में उपस्थित होने से, मायोसीन का जीवित अवस्था में ही जमना, इन कारणों से पेशीगत आकस्मिक संकोच की अवस्था मृत्यु के

पूर्व में ही उत्पन्न होती है। और मृत्यूत्तर तत्काल जारी रहती है। इस मृत्यूत्तर जारी रही हुई पेशिओं की संकोच की अवस्था और कठिनता को 'मृत्यूत्तर पेशोगत आकस्मिक संकोच' की अवस्था कहते हैं।

इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ पायी जाती हैं:--

१. मृत्यु के बाद तुरंत पेशियाँ कड़ी बनी रहती हैं। इनमें 'प्रारम्भिक विस्तार' की अवस्था उत्पन्न नहीं होती।

२ आणविक मृत्यु नहीं होती।

३. पेशियों में विद्युत्-स्पर्श से क्षणिक उत्तेजना आ जाती है।

४. हाथों में शस्त्र, वस्त्र और केश खूब मजबूती से पकड़े हुये पाये जा सकते हैं।

५. शरीर उष्ण एवम् कड़ा ही होता है।

व्यवहारायुर्वेदीय महत्त्व:--

इससे--१. मृत्यु का समय २. मृत्यु के समय शरीर की स्थिति और ३. मृत्यु स्वकृत है या परकृत है--इन बातों का अनुमान हो सकता है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि निम्नलिखित कारणों द्वारा हुई मृत्यु में भी पेशियों में आकस्मिक संकोच की अवस्था पायी जा सकती है:--

१. धनुर्वात २. कुचला-विष ३. बच्चों में आक्षेप ४. तीव्र मस्तिष्कीय क्षोभ।

[४] त्वचा में परिवर्त्तन

मृत्यूत्तर त्वचा में निम्न लिखित परिवर्तन देखे जाते हैं :--

(१) चमक जाती रहती है जिसके कारण शव का वर्ण पीत अथवा स्लेटी-श्वेत हो जाता है।

परंतु 'कामला' या फॉस्फोरस से मृत व्यक्तिओं में त्वचा का वर्ण नहीं बदलता। गोंदने के चिह्नों के रंग में भी परिवर्तन नहीं होता।

(२) उसकी स्थिति-स्थापकता नष्ट हो जाती है। तीक्ष्ण शस्त्र से प्रहार होने पर त्वचा के कटे हुये सिरे पृथक् पृथक् न होकर परस्पर मिले रहते हैं और उनमें रक्तस्राव अथवा लालिमा नहीं होती।

[५] नेत्रों में परिवर्तन

मृत्यु के पश्चात् आँखों में प्रायः निम्नलिखित परिवर्तन पाये जाते हैं:—

(१) आँखों की पुतलियों की संज्ञा नष्ट हो जाती है, उसमें अंगुली-स्पर्श करने पर भी वे बंद नहीं होतीं और कष्ट नहीं होता।

(२) कृष्णमंडल की पारदर्शकता नष्ट हो जाती है और वह धुंधला और अपारदर्शक हो जाता है।

पोटॉसियम सायनाइड और कार्बन मानोक्साइड विष तथा अॅपोप्लैक्सी की दशा में कृष्णमंडल स्वच्छ और पारदर्शक बना रहता है।

मूत्रविषमयता, विसूचिका एवम् निद्रालु विष की अवस्था में मृत्यु के पूर्व ही कृष्णमंडल धुधला एवम् अपारदर्शक हो जाता है।

(३) कृष्णमंडल पर दबाव डालने पर वह गड्ढे में चला जाता है।

(४) अक्षि-गोलक का तनाव नष्ट हो जाता है।

[६] शरीर का ठंढा होना

मृत्यु के पश्चात् सम्पूर्ण शरीर ठंढा हो जाता है और शव का तापक्रम धीरे धीरे आस-पास के वातावरण के तापक्रम के समान हो जाता है। मृत्यु के बाद प्रथम ३ घंटों में शव का तापक्रम ४° फारेनहाइट प्रति घंटे के हिसाब से और उसके बाद १° फा० प्रति घंटे के हिसाब से तापक्रम के समान नहीं होता।

शरीर का तापक्रम विलंब से धीरे २ या शीघ्रता से कम होने में (Rate of cooling) निम्न बातों का प्रभाव होता है :—

१. शव का तापक्रम और बाह्य वातावरण का तापक्रम इनमें फरक।

२. आयु।

३. शव का सुदृढ या कृश होना।'

४. बाह्य परिस्थिति।

५. मृत्यु का कारण।

निम्न लिखित अवस्थाओं में शवका तापक्रम विलंब से कम होता है:—

१. आकस्मिक मृत्यु होने पर ।

२. बातावरण का तापक्रम अधिक होने पर ।

३. वायु प्रवाह रहित होने पर ।

४. स्थूल शरीर होने पर ।

५. तीव्र ज्वर होने पर ।

६. शव को उष्ण एवम् स्थिर जल में डुबाये रखने पर ।

७. युवावस्था ।

८. ताप के बुरे परिचालकों से मृत-शरीर का ढका होना ।

निम्नलिखित अवस्थाओं में शव का तापक्रम शीघ्रता के साथ कम होता जाता है:—

१. धीरे धीरे अथवा बिलम्ब से मृत्यु होने पर ।

२. वातावरण ठंढा होने पर ।

३. वायु प्रवाहित एवम् शीतल होने पर ।

४. कृश शरीर होने पर ।

५. जीर्ण क्षयकारक व्याधियाँ तथा अत्यधिक रक्तस्राव से मृत्यु होने पर ।

६. शव को शीतल एवम् प्रवाहयुक्त जल में डुबाये रखने पर ।

७. बाल्यावस्था अथवा वृद्धावस्था ।

८. ताप के उत्तम परिचालकों से शव का ढका होना अथवा शव का खुला पड़ा रहना ।

श्वासावरोधजन्य मृत्यु में मृत्यूत्तर शरीर अधिक समय तक ऊष्म बना रहता है ।

मृत्यूत्तर तापक्रम में वृद्धि:—पीत ज्वर, विसूचिका, मसूरिका, धनुर्वात, आमवातिक ज्वर, यकृत-शोथ, कुचला-विष, उदरावरणशोथ—इनमें कभी कभी शव का तापक्रम बढ़ भी जाता है ।

परोपजीवी तथा रोगोत्पादक जीवाणुओं की शव में वृद्धि, तथा शव में होने वाले कुछ रासायनिक परिवर्तनों के कारण प्रथम २ घंटों में, तापक्रम में यह 'मृत्यूत्तर वृद्धि' होती है ऐसा माना जाता है । इस वृद्धि को 'मृत्यूत्तर तापक्रम वृद्धि' (Post-Mortem Caloricity) कहते हैं ।

(७) मृत्यूत्तर पेशियों में परिवर्तन

मृत्यूत्तर शरीर के पेशियों में क्रमशः निम्न परिवर्तन होते हैं :—

१. प्रारम्भिक विस्तार की अवस्था ।

२. मृत्यूत्तर-पेशीगत-संकोच की अवस्था ।

३. द्वितीय विस्तार की अवस्था ।

(१) प्रारंभिक विस्तार की अवस्था (Stage of Primary relaxation)—

मृत्यूत्तर तुरन्त शरीर की भिन्न २ पेशियाँ ढीली पड़ जाती हैं। इसके कारण नीचे का जबड़ा नीचे गिर जाता है। आँखों के पलक ढीले पड़ते हैं और हाथ, पैर आदि भी ढीले पड़ते हैं। यह अवस्था २ से ३ घण्टे तक रहती है। इस अवस्था में आणविक मृत्यु न होने के कारण पेशियों में बाह्य विद्युत् की उत्तेजना से संकोच होता है।

(२) मृत्यूत्तर पेशीगत संकोच की अवस्था (Stage of Rigor Mortis or Cadavence Spasm)। **कारणः**—इस अवस्था में 'आणविक मृत्यु' हो जाती है। पेशियों में स्थित सारकोलॅक्टिक अम्ल तथा तत्सदृश अन्य अम्लों के कारण पेशियों में स्थित मायोसीन नामक प्रोटीन जम जाता है। इसीसे पेशियाँ कड़ी और अपारदर्शक बन जाती हैं। इस क्रिया के साथ नाडी-संस्थान का कोई संबन्ध नहीं होता। इस क्रिया के साथ शारीरिक तापक्रम गिरता जाता है।

संकोच प्रारंभ, वृद्धि और स्थिति का समयः—यह अवस्था मृत्यूत्तर १ से २ घंटों में प्रारम्भ होती है। सर्व शरीर की पेशियों में संकोच पूर्ण होने के लिये २ से ३ घंटे लगते हैं। यह अवस्था अवसद १६ घंटे १२ मिनट तक जारी रहते देखा गया है। उत्तर प्रदेश में २४ से ४८ घंटों तक जाड़े के दिनों में तथा १८ से ३६ घंटों तक गर्मी के दिनों में यह संकोच की अवस्था जारी रहते देखा गया है।

उत्पत्तिक्रमः—यह संकोच प्रथम अनैच्छिक पेशियों में (Involuntary Muscles) और बाद में ऐच्छिक पेशियों में (Voluntary Muscles) होती है। हृदय में प्रायः मृत्यूत्तर १ घंटे में यह संकोच प्रारंभ होता है। इसी के कारण कभी-कभी मृतगर्भिणी में प्रसव होते देखा गया है। ऐच्छिक पेशियों में

विशिष्ट क्रम से संकोच उत्पन्न होता है। नेत्र की पेशियों में सबसे प्रथम और बाद में क्रमशः ग्रीवा की पश्चात् पेशियाँ, अधोहन्विका की पेशियाँ, ग्रीवा की पूर्व पेशियाँ, मुख, वक्षःस्थल, ऊर्ध्वशाखा और अन्तमें अधःशाखाओं की पेशियों में संकोच होता है।

संकोच का प्रारंभ, वृद्धि तथा स्थिति पर निम्न बातों का प्रभाव होता है:—

१. आयु।

२. पेशियों की अवस्था।

३. बाह्य हवामान।

४. मृत्यु का कारण।

(क) निम्नलिखित अवस्थाओं में मृत्यूत्तर संकोच शीघ्र प्रारंभ होता है:—

१. यदि शरीर कृश हो।

२. यदि आक्षेपण, मरोड़, ऐंठन—के कारण मृत्यु से पूर्व पेशियाँ श्रमित जैसा कि विसूचिका, धनुर्वात और कुचला विष में होता है।

३. यदि बाह्य हवामान उष्ण एवम् बाष्पयुक्त हो।
बाल्यावस्था और वृद्धावस्था।

५. मन्थर ज्वर, मूत्रविषमयता, राजयक्ष्मा और रोहिणी--रोगों में।

(ख) निम्न अवस्थाओं में मृत्यूत्तर संकोच देरसे प्रारम्भ होता है--

१. यदि शरीर पूर्ण स्वस्थ हो।

२. यदि मृत्यु से पूर्व पेशियाँ श्रमित न हुई हों जैसा कि,श्वासावरोध, निमोनिया आदि में होता है।

३. यदि बाह्य हवामान शीत एवं शुष्क हो।

४. युवावस्था।

५. पक्षाघात में।

मृत्यूत्तर संकोच के विषय में एक विशेष बात ध्यान में रखना चाहिये। संकोच जल्दी प्रारंभ होने पर संकोच की अवस्था जल्दी पूर्ण होती है और जल्दी नष्ट भी हो जाती है। इसके विरुद्ध संकोच देर से प्रारंभ होने पर

पूर्ण होने के लिए अधिक समय लगता है और यह अवस्था भी अधिक समय तक स्थिर रहती है।

सापेक्षिक निश्चितिः—शव अत्यन्त शीत या उष्ण स्थान में स्थित होने से मृत्यूत्तर पेशीगत संकोच के समान ही परन्तु मृत्यूत्तर तुरंत पेशियाँ कड़ी और अपारदर्शक हो जाती हैं। इन अवस्थाओं में सापेक्षिक निश्चिति करना आवश्यक होता है। अत्यंत शीत से शारीरिक 'मेद' अकस्मात् जम जाता है। और लगभग ७५° सें० तापक्रम पर मायोसिन के अतिरिक्त अन्य शारीरिक प्रोटीन जम जाते हैं।

(३) **द्वितीय विस्तार की अवस्था** (Stage of Secondary relaxation)—मृत्यूत्तर संकोच की अवस्था में संभवतः सारकोलैक्टिक अम्ल की मात्रा शरीर में अत्यधिक उत्पन्न होने से जमा हुआ मायोसीन फिर से पिघल जाता है। इससे शारीरिक पेशियाँ फिर से ढीली पड़ जाती हैं। इस अवस्था में आणविक मृत्यु के कारण बाह्य विद्युत् की उत्तेजना से पेशियों में संकोच नहीं होता।

(८) मृत्यूत्तर अधस्त्वक् नीलिमा

(Cadaveric Lividity, Hypostasis or Post Mortem Staining) :—

गुरुत्वाकर्षण के नियमानुसार मृत्यूत्तर लगभग ४ घंटों में शरीर का रक्त द्रवावस्था में होने से शव की स्थिति के अनुसार द्रवरक्त शरीर के सबसे नीचे के भाग में सूक्ष्म केशिकाओं में एकत्रित होता है। कुछ रक्त केशिकाओं से बाहर भी आता है। इससे त्वचा के नीचे धुन्धले, नीले या लाल रंग के धब्बे उत्पन्न होते हैं। इन्हीं को मृत्यूत्तर अधस्त्वक् नीलिमा कहते हैं। शवकी स्थिति के अनुसार आन्तरिक अँगों में भी नीचे के भागों में रक्त एकत्रित होता है। किन्तु शरीर के जो भाग किसी दबाव—बन्धन, रस्सी, वस्त्र, टाई आदि—के कारण दबे होते हैं, उन स्थानों में ऐसा नहीं होता।

सर्वप्रथम मृत शरीर के सबसे नीचे के भागों पर ऐसा परिवर्तन होता है तत्पश्चात् यह ग्रीवा तथा ऊर्ध्व और अधःशाखाओं में भी प्रसारित होता है।

यह कृष्ण वर्ण की अपेक्षा गौर वर्ण के व्यक्तियों में अधिक स्पष्ट होता है।

मृत्यु के पश्चात् ३ घंटे के अन्दर ही यह प्रकट होने लगता है और ५ घंटे में ठीक से पहचाना जा सकता है और जब तक रक्त जम नहीं जाता तब तक नीलिमा के धब्बों का आयाम-विस्तार बढ़ता जाता है। मृत्यूत्तर रक्त प्रायः ६ से ८ घंटे में जम जाता है। अतः स्पष्ट है कि रक्त के तरलावस्था में रहने का समय जितना अधिक होगा, नीलिमाप्रदेश आकार में उतने ही बड़े होंगे और रक्त के शीघ्र जम जाने पर इन चकत्तों का आकार छोटा होगा।

जब तक रक्त तरल बना रहता है मृत्यूत्तर नीलिमा-प्रदेश शरीर की स्थिति को परिवर्तित करने के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान को हटा करते हैं, किन्तु ज्यों ही रक्त जम जाता है, यह नहीं हो सकता।

निम्नलिखित दो अवस्थाओं में वैवर्ण्य प्रदेश का आकार और स्थिति बदल भी सकती है:—

१. श्वासावरोध की दशा में—क्योंकि इसमें रक्त अधिक समय तक तरल बना रहता है।

२. सड़े हुये मृत शरीर में—क्योंकि इसमें कुछ समय के बाद रक्त पुनः तरलावस्था में हो जाता है।

व्यवहारायुर्वेदीय महत्त्व :—

मृत्यूत्तर अधस्त्वक् नीलिमा के द्वारा निम्नलिखित बातों का अनुमान हो सकता है :—

१. मृत्यु के चिह्न।

२. मृत्यु का समय।

३. मृत्यु के समय शरीर की स्थिति।

४. मृत्यु का कारण :—

(क) पोटाशियम सायनाइड विष-सेवन में धब्बों का रंग रक्त वर्ण का होता है।

(ख) कार्बन मानो आक्साइड की अवस्था में गुलाबी।

(ग) श्वासावरोध में गहरा नीला वर्ण।

मृत्यूत्तर अधस्त्वक् रंजन और जीवित अवस्था में आघातजन्य रक्ताधिक्य में भेद।

मृत्यूत्तर अधस्त्वक् नीलिमा	जीवितावस्थामें आघात जन्य रक्ताधिक्य
१. शरीर के सबसे नीचे के भाग पर होता है।	१. शरीर के किसी भी भाग पर हो सकता है।
२. आसपास की सतह से उठा हुआ नहीं होता।	२. सदैव थोड़ा बहुत उठा हुआ होता है
३. इसके किनारे स्पष्ट दिखलाई देते हैं।	३. किनारे स्पष्ट नहीं होते।
४. रक्त के जमने से पूर्व शरीर की स्थिति बदलने पर इनमें स्थान–परिवर्तन हो सकता है।	४. शरीर की स्थिति बदलने पर इनका स्थान नहीं बदलता।
५. जब तक रक्त तरलावस्था में रहता है, तब तक नीलिमा-प्रदेश को दबाने पर रंग हट जाता है और दबाव के हटा लेनेपर रंग फिर आ जाता है।	५. एक बार बन जाने पर वर्ण दबाव से नहीं हट सकता।
६. स्थान को काटने पर जमा हुआ रक्त रक्त-नलिकाओं से बाहर नहीं मिलेगा।	६. काटने पर रक्त-नलिकाओं से बाहर की धातुओं में प्रायः जमा हुआ रक्त मिलेगा।
७. इसमें रंग परिवर्तन नहीं होता।	७. समय व्यतीत होने पर अधस्त्वक् रक्तस्राव में और उसके समीपस्थ प्रदेश में जीवित अवस्था में रंग में परिवर्तन होते हैं।

(६) कोथ तथा सड़न

शरीर में सड़न का प्रारम्भ हो जाना मृत्यु का सब से अधिक विश्वसनीय एवम् निश्चित चिह्न है। सड़न का प्रमुख कारण शरीरगत और शरीर के

बाहर के जीवाणुओं (Ractreia) की क्रिया है, जिसके कारण शरीर के नायट्रोजन युक्त ऐन्द्रिक यौगिक धातुयें साधारण अनैन्द्रिक पदार्थों में परिवर्तित हो जाती हैं।

ये परोपजीवी जीवाणु जीवित अवस्था में पाचननालिका में असंख्य होते हैं। मृत्यु होते ही शरीर के सभी धातुओं में फैल जाते हैं।

कोथ की अवस्थायें :--

(१) रंग परिवर्तन :--

मृत्यु के लगभग ७ घण्टे के बाद उदर के नीचे भाग में दाहिनी ओर हरित वर्ण का एक छोटा सा चकत्ता निकलता है जो धीरे धीरे ऊपर की ओर फैलता हुआ बड़ी तीव्रता से समस्त शरीर पर फैल जाता है। इस परिवर्तन का कारण फेरस सल्फाइड से धातुओं का वैवर्ण्य है जो कि हाइड्रोजन सल्फाइड और स्वतन्त्र लौह के मिलने से बनता है। हाइड्रोजन सल्फाइड शरीर के ऐन्द्रिक पदार्थों के सड़ने से उत्पन्न हो जाता है और हीमोग्लोबिन के टूटने से लौह पृथक् हो जाता है। त्वचा के साथ साथ शरीर के अन्य आन्तरिक अवयवों जैसे यकृत् आदि-पर भी वर्ण-परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है।

वर्ण-परिवर्तन की उत्पत्ति १. तापक्रम २. मृत्यु का कारण और ३. शरीर की अवस्था—इन तीन बातों पर निर्भर है। गरमी के दिनों में इसकी उत्पत्ति ६ से १२ घण्टे में और शीत काल में १ से ३ दिन में—प्रायः २४ घण्टे में होती है।

(२) आँखों का मृदु होना :--

प्रायः इसी काल में अक्षिगोलक मृदु हो जाते हैं, कृष्णमंडल अपारदर्शक और दुग्ध की भाँति श्वेत तथा उसकी सतह चपटी होकर अन्त में नतोदर और अन्दर की ओर धंसी हुई मालूम देती है।

(३) दुर्गन्धित वायु की उत्पत्ति :--

प्रायः इसी काल में हलकी और अप्रिय गन्ध शरीर से निकलने लगती है। कुछ समय के बाद यह बहुत बढ़ जाती है और सूँघने से जी मचलाने लगता है।

इसका कारण दुर्गन्धित वायु का बनना है जो कि जीवाणुओं (Micro-organisms) की क्रिया के परिणाम स्वरूप होता है।

(४) कीड़ों का पड़ना :-

इस दुर्गन्धि के कारण मृत शरीर पर बहुत सी मक्खियाँ एकत्रित होकर अपने अण्डे देती हैं, विशेषतया खुले हुए व्रणों में और शारीरिक बाह्य छिद्रों—मुख, नासिका, कर्ण आदि में ऐसा होता है। इन अण्डों से छोटे-छोटे कीड़े उत्पन्न होकर कुछ समय में बड़े हो जाते हैं और शरीर के कुपित भागों पर रहते हैं जिसके कारण शव के टुकड़ों में विभक्त होने तथा नाश होने में शीघ्रता होती है। ये कीड़े मृत्यु से पूर्व भी व्रणों की ओर ध्यान न देने अथवा उनका ठीक उपचार एवम् रक्षा न करने से उत्पन्न हो जाते हैं। कीड़े प्रायः २४ से ४० घण्टे में प्रगट होते हैं।

(५) दुर्गन्धित वायु की उत्पत्ति :—

रंगपरिवर्तन के समय से ही दुर्गन्धित वायु बनने लगती है और जीवाणुओं की क्रिया और वृद्धि के कारण अनुकूल वातावरण के अनुसार कम या अधिक तीव्रता से बनती जाती है।

(६) मृत्यु के पश्चात् छालों की उत्पत्ति :—

बाह्यत्वचा के नीचे दुर्गन्धित वायु के संचय के कारण मृत शरीर के विभिन्न भागों पर बहुत से छोटे छोटे छाले पड़ने लगते हैं, और फिर ये धीरे धीरे आपस में मिलकर बड़े बड़े छाले बन जाते हैं, इनमें दुर्गन्धित वायु की मात्रा अधिक होती है और कभी कभी थोड़ा-बहुत किञ्चित् रक्तवर्ण का तरल भी मिलता है।

जीवन काल के छालों और मृत्यु के पश्चात् के छालों में कभी कभी एक सापेक्षिक निश्चिति करने की आवश्यकता होती है। अतः उनका भेद नीचे दिया गया है :—

१. मृत्यु से पूर्व के छालों में जो तरल पदार्थ होता है, उसमें ऍलब्यूमिन (Albumin) की मात्रा अधिक होती है किन्तु मृत्यूत्तर जो छाले पड़ते हैं,

उनमें प्रायः वायु होती है और यदि तरलांश हुआ भी तो उसमें ॲलब्यूमिन कम होती है।

२. मृत्यु से पूर्व के छालों में तरल पदार्थ की मात्रा अधिक होती है किन्तु मृत्यूत्तर जो छाले पड़ते हैं, उनमें या तो तरल पदार्थ होता ही नहीं है और यदि हुआ भी तो बहुत थोड़ा एवम् किञ्चित् रक्त वर्ण का होता है।

३. मृत्यु से पूर्व के छालों के चारो ओर किनारे किनारे रक्त वर्ण का छल्ला होता है और छाले के आधार में थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य पाया जाता है किन्तु मृत्यूत्तर जो छाले पड़ते हैं उनमें इस प्रकार का कोई छल्ला नहीं होता है और इसका तल प्रायः श्वेत वर्ण का होता है और यदि शरीर अत्यधिक कुथित नहीं हो गया होता है तो उसमें चमक होती है।

५. मृत्यु से पूर्व के छालों में शोथ पाया जा सकता है और उनके समीपस्थ भागों पर भी कुछ सूजन हो सकती है अथवा उनमें रोपण के चिह्न पाये जा सकते हैं किन्तु यदि छाले मृत्यूत्तर पड़ जाते हैं तो उसमें इस प्रकार के कोई भी चिह्न नहीं पाये जाते।

(७) मृत्यु के पश्चात् धातुओंका फूलना :—

यह दुर्गन्धित गैसों के कारण होता है और इसके कारण शरीर की आकृति इतनी विगड़ जाती है कि व्यक्ति की पहचान प्रायः असम्भव हो जाती है।

(८) मृदु भागों का पृथक् होना :—

यदि सड़न जारी रहे तो शरीर की धातुयें मृदु होकर द्रवित हो जाती हैं और होते होते यह कृष्ण वर्ण का अर्ध-ठोस गाढ़ा बन जाता है इसके बाद यह गल गल कर शरीर से पृथक् होकर गिर पड़ता है और अस्थिपञ्जर की अस्थियाँ ही केवल दिखलाई पड़ती हैं।

जब शरीर की धातुयें मृदु हो जायें, शरीर की गुहायें फूट जायें और धीरे धीरे करके ये कुथित धातुयें अस्थियों से पृथक् हो जायें—तब इस अवस्था में प्राप्त हुये शरीर को मृत्यु के पश्चात् ७८ घण्टे से अधिक समय अवश्य हो गया है—यह समझना चाहिए।

सड़न के जल्दी अथवा देर से होने में निम्नलिखित बातों का प्रभाव पड़ता है।

जल्दी	देर से
१. तापक्रम—७०° से १००° फा०।	१. तापक्रम—३२° फा० से कम और २१२° फा० से अधिक।
२. वायु-प्रवेश के कारण सड़न शीघ्रता से होती है।	२. वायु के अभाव में सड़न में बाधा पड़ती है।
३. वातावरण में आर्द्रता का होना।	३. आर्द्रता की अनुपस्थिति।
४. स्थूल एवम् रोगग्रस्त शरीर।	४. कृश शरीर।
५. तुरन्त उत्पन्न हुये शिशुओंके शरीर।	५. वृद्धावस्था के शरीर।
६. रोग आदि :— जीवाणुमयता[1] उदरावरणशोथ[2] जीवाणुयुक्त अवस्थायें[3]	६. फेनाश्म, नीलांजन और जिंक क्लोराइड विषों से मृत शरीर में।

पानी में सड़न की क्रिया :—शव में पानी में सड़न क्रिया होने के लिये हवा की अपेक्षा प्रायः दुगुना समय लगता है। उष्ण ऋतु की अपेक्षा शीत ऋतु में प्रायः चौगुना या पाँचगुना समय लगता है। रंग के परिवर्तन प्रथम मुख पर प्रारंभ होकर क्रमशः निम्न भाग में दिखाई देते हैं।

शव का तैरना :—उष्ण ऋतु में शव प्रायः २४ घंटों में पानी के ऊपर तैरने लगता है। परंतु शीत ऋतु में २ से ८ दिन लगते हैं। नवजात बालक, स्त्रियाँ, स्थूल शरीर इत्यादि पानी में जल्दी तैरने लगते हैं। समुद्र के पानी का विशिष्ट गुरुत्व अधिक होने से शव जल्दी तैरने लगता है।

(१०) शारीरिक मेद में परिवर्तन (Saponification)

कभी २ शवमें सड़न उत्पन्न न होकर शरीर में स्थित 'वसा' में परिवर्तन होकर एक पदार्थ बनता है, इससे वसा मोम सदृश (Abepocere-Adeps=Fat, Cera=wax) बनता है। यह पदार्थ पानी से हलका होता है। इसका विशिष्ट गुरुत्व पानी से कम रहने से यह शरीर पानी में तैरता है। इससे

1. Septicaemia. 2. Peritonitis. 3. Septic conditions.

शरीर चिकना श्वेत भूरे रंग का मोम सदृश बन जाता है। हवा में रहने पर कड़ा, भंगुर और पीले रंग का होता है। यह अवस्था प्रायः मृत्यूत्तर १ से ५ सप्ताह में उत्पन्न होती है।

यह अवस्था विशेषतया आर्द्रता या जल की उपस्थिति में उत्पन्न होती है। शरीर में स्थित क्षारों के साथ-साथ जल की उपस्थिति में मेद में यह परिवर्तन होता है। इस अवस्था में शरीर वर्षों तक रह सकता है।

शरीर का शुष्क होना (Mumification)

सूर्य के अत्यधिक ताप और प्रवाहित शुष्क वायु के कारण सड़न क्रिया न होकर मृत शरीर के मृदु धातुओं में से द्रवांश शुष्क होता है। (Dehydration) जिससे शरीर का द्रव भाग बहुत वेग के साथ शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और शरीर संकुचित हो कर शुष्क हो जाता है, इसे 'ममीफिकेशन' कहते हैं, यह क्रिया प्रायः रेगिस्तानों में होती है।

यह अवस्था प्रायः ३ महीनों से दो साल में हो सकती है। शरीर शुष्क होकर त्वचा अस्थियों पर चिपकी रहती है। आन्तरिक अंग शुष्क होकर एक दूसरे से मिल जाते हैं।

कृत्रिमरीत्या शरीर को शुष्क बनाना :—प्राचीन काल में यह प्रथा पूर्णतया ज्ञात थी। आधुनिक काल में शरीर को सड़न से बचाने के लिये रक्तवाहिनी द्वारा संखिया, लेड सल्फाईड, तथा पोटॉशियम कारबोनेट इत्यादि के विलयन प्रविष्ट किये जाते हैं।

(१२) मृत्यु का समय (Time of death)

मृत्युत्तर परीक्षा का विवरण लिखते समय या परीक्षा के विवरण पर न्यायालय में मौखिक साक्ष्य देते समय शव मृत्यूत्तर परीक्षा के लिये आने तक मृत्यूत्तर कितना समय व्यतीत हुआ है इसका चिकित्सक को अनुमान करना पड़ता है। संक्षेप में निम्न बातों का विचार करने पर समय का अनुमान हो सकता है :—

१. शरीर का ठण्डा होना—लगभग १५ से २० घंटे लगते हैं।

२. मृत्यूत्तर नीलिमा की उपस्थिति या अनुपस्थिति :—४ से १२ घंटों में शरीर के निम्न भागों में अधस्त्वक् नीलिमा दिखाई देती है।

३. मृत्यूत्तर पेशीगत संकोच की उपस्थिति या अनुपस्थिति :—पेशीगत संकोच की अवस्था प्रायः मृत्यूत्तर ४ से १० घंटों में पूर्ण होती है।

४. आमाशयिक पदार्थों की पाचन की अवस्था और पाचनप्रणाली तथा मूत्राशय का खाली या भरा रहना इन बातों की परीक्षा करने से मृत्यूत्तर समय का अनुमान करने में मदत होती है।

५. न्यायालय द्वारा व्यक्ति को मृत माना जाना (Presumption of death)।

भारतीय 'साक्ष्य' कानून (Indian Evidence Act) के अनुसार यदि विशिष्ट व्यक्ति का गत ३० साल में जीवित रहने का निश्चय हो और उस के मृत्यु की संभावना की कोई आशंका न हो तो न्याय संस्था द्वारा उस व्यक्ति को जीवित माना जाता है जब तक उसकी मृत्यु सिद्ध न हो। परंतु यदि व्यक्ति के नजदीक के रिस्तेदारों को जिनको सामान्यतया उस व्यक्ति के जीवित रहने की खबर होनी चाहिये उनको गत ७ साल में उस व्यक्ति के जीवित रहने की खबर न हो तो न्याय-संस्था द्वारा उस को मृत माना जाता है जब तक उसका जीवित होना सिद्ध न हो।



पाँचवाँ अध्याय

पिच्चित अभिघात तथा अन्य सद्योव्रण

न्यायालय की दृष्टि से विचार।

न्यायालय की दृष्टि से सद्योव्रण निम्न ३ भागों में विभाजित किये जाते हैं:—

१. पिच्चित अभिघात (Contusions of Bruises)

२. घृष्ट व्रण (Abrasion)।

३. सद्योव्रण (Wounds)

(१) पिच्चित अभिघात

किसी वस्तु के दबाव से, विनाधार वाले यंत्र से या लाठी–पत्थर इत्यादि से आघात लगने से यह व्रण-पूर्वरूप अवस्था उत्पन्न होती है। अधस्त्वक्

धातुओं में विदार तथा रक्त-नलिकाएँ फटजाने से रक्तस्राव होता है। विदार, रक्तस्राव तथा स्थानीय शोथ से स्थान फूल जाता है और उस स्थान में तीव्र पीड़ा होती है। अधस्त्वक् धातुओं में विदार और रक्तस्राव होता है उसको 'अधस्त्वक् रक्तस्राव' (Ecchymosis) कहते हैं।

त्वचा के नीचे रक्तस्राव (Ecchymosis):—यह दो प्रकार का होता है :—

१. उत्तान (Superficial) और २. गम्भीर (Deep)

उत्तान	गम्भीर
१. आघात लगने के बाद प्रायः १ या २ घंटे के अन्दर प्रगट होता है।	१. आघात लगने के बाद प्रायः १ या २ दिन में प्रगट होता है।
२. यह उसी स्थान पर प्रगट होता है जहाँ कि आघात लगता है।	२. आघात लगने के स्थान से कुछ दूरी पर प्रगट होता है।
३. यदि मृत्यु से १ या २ घंटे पूर्व आघात लगा हो, तो कभी कभी त्वचा के नीचे रक्तस्राव प्रगट नहीं होता।	३. यदि मृत्यु से एक या दो दिन पूर्व आघात लगा हो, तो कभी कभी यह प्रगट नहीं होता।

साधारणतया अधस्त्वक् रक्तस्राव का कम या अधिक होना तथा उसका आयाम-विस्तार, आघात के लिये प्रयुक्त शक्ति, क्षतस्थान पर रक्तवाहिनियों की न्यूनाधिकता (Vascularity), उस जगह को धातुओं का काठिन्य या मृदुता तथा क्षत-युक्त व्यक्ति की दशा पर निर्भर रहता है। पक्ष्म, वृषण और भग प्रदेश पर आघात का विस्तार अधिक तथा कपाल की त्वचा पर कम होता है। अगर एक गाड़ी का पहिया व्यक्ति के उदर प्रान्त से निकल जाये और किसी आभ्यन्तरिक अंग के विदीर्ण हो जाने से मृत्यु हो जाये तो भी उसके उदर प्रान्त में इसके लक्षण प्रगट नहीं होंगे। जो बहुत ही दृढ़ और सुगठित शरीर वाले व्यक्ति हों, उनकी अपेक्षा बच्चों, कोमलाङ्गी स्त्रियों और वृद्ध पुरुषों पर थोड़ा भी आघात लगने से अतिशीघ्र त्वचा के नीचे रक्तस्राव हो जाता है।

रक्तपित्त (Scurvy), पुरपूरा (Purpura), इरीथिमा (Erythema), हीमोफीलिया (Haemophilia), तीव्र संक्रामक रोग, इत्यादि में थोड़ा सा

भी आघात अथवा दबाव पड़ने से त्वचा के नीचे विस्तृत रक्तस्राव हो जाता है। इन परिस्थितियों में अधस्त्वक् रक्तस्राव हो सकता है जिससे आघातजन्य अधस्त्वक् रक्तस्राव होने का भ्रम हो सकता है परन्तु संख्या, विस्तार और त्वचा में वृष्ट व्रण की अनुपस्थिति से उनका परस्पर भेद किया जा सकता है।

पिच्चित अभिघात के परिणाम :—

इनकी गणना साधारण आघात में है किन्तु आभ्यन्तरिक अङ्गों के विदीर्ण हो जाने पर या उस स्थान पर कोथ (Gangrene) होने से यह कभी कभी घातक भी हो सकते हैं।

पिच्चित अभिघात का समय :—

पिच्चित अभिघात का समय-निर्धारण उसके त्वगीय रक्तस्राव के शोषण के समय के रंग-परिवर्तन पर निर्भर है। यह परिवर्तन लाल रक्त कणों के टूटने और हिमोग्लोबिन (Haemoglobin) के बनाये हुए धब्बों से होता है। आरम्भ में इसका रंग लाल होता है किन्तु आगामी ३ दिनों में इनका वर्ण नीला, नील-कृष्ण, कपिल अथवा नील-रक्त हो जाता है। पाँचवें या छठे दिन इनका वर्ण हरित और ७ वें या ८ वें दिन ये पीत वर्ण के हो जाते हैं। १४-१५ दिन तक में यह पीत वर्ण धीरे धीरे धुँधला पड़ कर त्वचा का साधारण वर्ण प्राप्त कर लेता है। रुग्ण और वृद्ध पुरुषों की अपेक्षा यह वर्णपरिवर्तन स्वस्थ पुरुषों में अतिशीघ्र होता है। यह ध्यान में रहना चाहिये कि यह रंग-परिवर्तन कृष्ण वर्ण के लोगों की अपेक्षा गौर वर्ण के व्यक्तियों में अधिक स्पष्ट होता है।

स्वकृत, परकृत अथवा दुर्घटनाजन्य पिच्चित अभिघात :—

इसका निर्णय करना बहुत कठिन है परन्तु कभी कभी इनका स्थान और स्थिति को देखकर निश्चयात्मक रूप से कुछ बताया जा सकता है। गिरने पर उसके शरीर पर धूल, कंकड़, बालू या कीचड़ मिलेगा अधस्त्वक् रक्तस्राव का आकार और विस्तार प्रयुक्त उपकरण की तरह होगा जैसे कि घूँसे अथवा लाठी के गुद्दे से मारने पर गोल निशान बनेगा और लाठी मारने पर लम्बा और क्रमहीन। धारहीन उपकरणों के आघात प्रायः स्वकृत नहीं होते।

मृत्यु से पूर्व और मृत्यूत्तर पिच्चित अभिघात में भेद।

मृत्यु से पूर्व	मृत्यु के बाद
१. किंचित् शोथ और वर्णपरिवर्तन होगा।	१. शोथ और वर्णपरिवर्तन का अभाव होगा।
२. रक्त अधस्त्वक् धातुओं में जम जाता है।	२. इसमें ऐसा नहीं होता।

कभी कभी सड़न होने के कारण यह नहीं बतलाया जा सकता कि अधस्त्वक् रक्तस्राव मृत्यु से पूर्व के हैं या बाद के। कभी कभी मृत्यु के बाद २ से ३ घंटे के अन्दर आघात करने से त्वचा के नीचे रक्तस्राव के प्रांत बन सकते हैं जिनको देखने से यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि ये मृत्यु से पूर्व के हैं या बाद के।

(२) घृष्टव्रण (Abrasion)

ये वे आघात हैं जो कि किसी ठोस और खुरदरे पदार्थ से शरीर पर रगड़ लगने, नाखून से नभोटने अथवा दांत से काटने पर हो जाते हैं। इसमें त्वचा का बाह्य स्तर नष्ट हो जाता है। किसी ऊँचे स्थान से गिरते समय खुरदरे पदार्थों से रगड़ लगने के कारण जो खुरेचन बन जाते हैं, वे अधिकतर ऐसे स्थानों पर होते हैं जहाँ कि त्वचा के नीचे अस्थि का भाग हो और वहाँ पर मांसल भाग बहुत कम हो। इस प्रकार के खुरेचन मिट्टी, धूल इत्यादि से भी आच्छादित हो सकते हैं। नखों के लगने से जो खुरेचन हो जाते हैं, वे किसी लड़ाई-झगड़े के कारण ही होते हैं, अतएव यह एक अपराध माना जाता है। इस प्रकार के खुरेचन प्रायः शरीर के खुले हुए भागों—जैसे मुँह, हाथ इत्यादि—में पाये-जाते हैं। इस दशा में क्षत-स्थान के नीचे स्थित धातुओं में रक्तस्राव होता है। दाँत से काटने के कारण जो खुरेचन हो जाते हैं, उनके चिह्न प्रायः गोल होते हैं और उनकी संख्या २ अथवा ४ होती है क्योंकि काटते समय सामने के ऊपर के २ दाँतों या सामने के ऊपर और नीचे—दोनों को मिलाकर ४ दाँतों के चिह्न बन जाते हैं। इसके अतिरिक्त कभी कभी इन सब चिह्नों का आपस में मिलकर एक बड़ा क्षत बन जाता है। चिह्नों के बीच का स्थान कभी कभी पिच्चित हो जाता है।

मृत्यु से पूर्व और मृत्यूत्तर घृष्टव्रणों में भेद ।

मृत्यु से पूर्व ।	मृत्यु के बाद
१. रक्त लसीका (Serum) निकलती है ।	१. रक्त लसीका नहीं निकलती है ।
२. घृष्ट स्थान पर पपड़ी पड़ जाती है ।	२. पपड़ी नहीं पड़ती ।
३. खुरचा हुआ क्षेत्र झुलसता नहीं है ।	३. खुरचा हुआ क्षेत्र झुलस जाता है ।
४. खुरचे हुये क्षेत्र में और उसके आस पास शोथ और रोपण के चिह्न मिलेंगे ।	४. शोथ और रोपण के चिह्न नहीं मिलेंगे ।

(३) सद्योव्रण

व्याख्या :– नीचे के धातुओं के साथ २ त्वचा या श्लैष्मिककला का विदार होने पर क्षत उत्पन्न होता है ।

क्षतों का वर्गीकरण:—क्षतों की आकृति, लंबाई, चौड़ाई इत्यादि चिह्नों के अनुसार सद्योव्रणों को निम्न ४ प्रकारों में विभाजित किया जाता है ।

१. छिन्न क्षत (Incised wounds)
२. विद्ध क्षत (Punctured or Penetrating wounds)
३. पिच्चित क्षत (Lacerated or Contusted Wounds)
४. बन्दूक-गोलीसे क्षत (Gun-shot Wounds)

(१) छिन्न क्षत :--

यह किसी तेज धार वाले शस्त्र जैसे चाकू, उस्तरा, तलवार, कुल्हाड़ी इत्यादि से आघात करने पर बनता है । इस प्रकार के व्रण की लम्बाई—गहराई और चौड़ाई की अपेक्षा अधिक होती है । उदरगुहा या वक्षगुहा के भीतर के किसी 'आशय' (Viscera) में क्षत होने पर उसको 'भिन्नक्षत' (Penetrating wounds) कहते हैं । व्रण के किनारे साफ कटे हुये होते हैं । व्रण का आकार प्रायः टेकुवे (धुरा) की तरह होता है । रक्तवाहिनियों के साफ कट जाने के कारण इस प्रकार के व्रण से अन्य क्षतों की अपेक्षा अत्यधिक रक्तस्राव होता है ।

(२) विद्ध क्षत :—

(यह किसी तेज धार वाले नुकीले शस्त्र जैसे भाला, बर्छी इत्यादि से आघात करने पर बनता है। प्रायः विद्ध व्रण के छिद्र की लम्बाई प्रयुक्त शस्त्र की चौड़ाई से कुछ कम होती है। इस प्रकार के व्रण की गहराई-लम्बाई अथवा चौड़ाई की अपेक्षा बहुत ज्यादा होती है। इनमें बाह्य रक्तस्राव बहुत कम होता है किन्तु किसी किसी मर्मस्थान (Vital Organ), जैसे हृदय, फुफ्फुस और मस्तिष्क के विद्ध हो जाने पर अत्यधिक आभ्यन्तरिक रक्तस्राव हो सकता है।)

क्षत प्रारंभ में गहरा होता है और आगे अंतकी दिशा की ओर गहराई कम होती जाती है। चौड़ाई प्रायः शस्त्र की धार की अपेक्षा अधिक होती है। व्रणोष्ठ विभक्त (Retracted) और बाहर की ओर मुडे हुए होते हैं।

प्रवेश स्थान का क्षत निकास स्थान के क्षत की अपेक्षा बड़ा रहता है। क्षतोष्ठ प्रवेश-स्थान के क्षत में भीतर मुडे हुए और निकास-स्थान के क्षत में बाहर की ओर मुडे हुए होते हैं। प्रवेश-स्थान के क्षत की आकृति उपकरण की आकृति के समान होती है।

कभी २ विना धार वाले पदार्थ से शरीर के किसी मांसविहीन भाग में जैसे हनु, कूर्पर, शिर, जानु इत्यादि पर, आघात लगने पर छिन्न क्षत (Iucised Wound) के समान क्षत उत्पन्न होता है। इस समय सचमुच छिन्नक्षत है या पिच्चितक्षत (Contused Wound) है इसका निर्णय करना पड़ता है। पिच्चित क्षत के त्वग्गत वालों के मूल में स्थित ग्रन्थियों में भी पिच्चित अभिघात के लक्षण दिखाई देते हैं। इन ग्रन्थियों की परीक्षा करने पर निर्णय हो सकता है। पिच्चित अभिघात के कारण व्रणोष्ठ प्रायः अनियमित होते हैं। अधस्त्वक् धातुओं में भी आघात से विदार तथा रक्ताधिक्य और रक्तस्राव के लक्षण मिलेंगे।

(३) पिच्चित क्षत (Lacerated or contused wounds)।

किसी खुरदरे पदार्थ से रगड़ लगने से, पशु के दाँत, नाखून, पंजे अथवा सींग के लगने से, रेलवे-दुर्घटना से, किसी मशीन आदि से दब जाने से अथवा सड़क पर किसी अन्य दुर्घटना के हो जाने से इस प्रकार के व्रण वन जाते हैं। पिच्चित व्रण के किनारे अनियमित कटे हुये, फूले हुये, और अंदरकी ओर मुडे हुए होते हैं। रक्तस्राव कम होता है। बाह्य पदार्थ जैसे मिट्टी, कीचड़, केश, इत्यादि-

व्रण के ऊपर पाये जा सकते हैं। क्षत स्थान की त्वचा के नीचे रक्तस्राव होता है और धातुयें विदीर्ण हो जाती हैं। कभी कभी यदि क्षत स्थान की सतह के नीचे अस्थि हो तो उसका अस्थिभग्न भी पाया जा सकता है।

(४) बन्दूक की गोली से उत्पन्न क्षत (Gun-shot Wound)

बन्दूक अथवा राइफल की गोली या पिस्तौल के कारतूस इत्यादि के लगने से इस प्रकार के आघात हो जाते हैं और इसमें पिच्चित या उधड़े हुए व्रणों की विशेषतायें मिलती हैं। इनका रूप गोली, बन्दूक, राइफल इत्यादि से छूटने के बाद गोली के चलने की गति, गोली चलाने के समय बन्दूक आदि से शरीर तक की दूरी और शरीर पर गोली के लगने के समय का कोण—इन पर निर्भर है। इस प्रकार के व्रण २ तरह के होते हैं:—

१. गोली के प्रवेश स्थान का व्रण।
२. गोली के निकास स्थान का व्रण।

गोली के प्रविष्ट होने के स्थान का व्रण	गोली के निकलने के स्थान का व्रण
१. गोली की अपेक्षा व्रण छोटा होगा।	१. गोली की अपेक्षा व्रण बड़ा होगा।
२. वस्त्रों के तन्तु भीतर घुसे हुए मिलेंगे और बारूद की गंध मिलेगी।	२. वस्त्रों के तन्तु नहीं मिलेंगे और बारूद की गंध भी नहीं होगी।
३. व्रणोष्ठ अन्दर की ओर मुड़े हुये होंगे।	३. व्रणोष्ठ अनियमित और बाहर की ओर मुड़े हुये होंगे।
४. आस-पास की त्वचा झुलसी हुई होगी और उसमें दाग पड़ जायेंगे।	४. त्वचा में दाग और झुलसने के चिह्न नहीं मिलेंगे।
५. यदि शरीर पर समकोण बनाती हुई गोली प्रविष्ट हो तो व्रण गोलाकार होगा किन्तु यदि शरीर में तिरछी लगे तो व्रण अंडाकार होगा।	×
६. व्रण के चारों ओर किनारे किनारे त्वचा के नीचे रक्ताधिक्य होगा।	×

'गोली' की कुछ विशेषताएँ:—

१. छोटी गोली की अपेक्षा बड़ी गोली के व्रण बड़े होंगे।

२. त्रिकोणाकार गोली की अपेक्षा गोलाकार गोलियों से व्रण बड़े होंगे।

३. यदि गोली शरीर में समकोण बनाती हुई प्रविष्ट हो तो धातुओं में अत्यधिक उधड़न पायी जायेगी और अस्थियों का अस्थिभग्न भी पाया जा सकता है।

४. गोलाकार गोलियों की अपेक्षा त्रिकोणाकार गोलियों से उधड़न कम होती है किन्तु इनसे विद्ध व्रण बन जाते हैं।

५. गोलाकार गोलियाँ शरीर में प्रविष्ट होने पर टूट जाती हैं। किन्तु त्रिकोणाकार गोलियाँ नहीं टूटतीं।

गोली की गति :—

तीव्र गति से चली हुई गोली के द्वारा शरीर पर स्पष्ट, गोलाकार और पञ्च (Punch) के द्वारा बनाये गये छिद्र की भाँति व्रण बन जाते हैं। किसी अस्थि से टकरा जाने पर भी गोली अपना मार्ग नहीं छोड़ती और प्रायः अस्थियों को तोड़ देती है। मन्द गति से चली हुई गोली प्रविष्ट होते समय शरीर पर जो व्रण बनाती है, उसके किनारे उधड़े हुये और पिच्चित होते हैं। शरीर के किसी भाग से टकरा जाने पर गोली अपना मार्ग बदल देती है और प्रायः शरीर में ही रह जाती है। गोली जितना ही गहराई तक पहुँच जाती है, उसका क्षत-स्थान उतना ही बढ़ता जाता है।

गोली चलाने के स्थान से घायल व्यक्ति की दूरी :—

यदि घायल व्यक्ति के बिलकुल पास से ही गोली चलाई गयी है तो गोली के शरीर में प्रवेश करने के स्थान का व्रण उधड़ा हुआ होगा और उसका क्षेत्र व्रण के चारो ओर लगभग २ या ३ इञ्च तक होगा और उसके आस-पास की त्वचा कृष्ण वर्ण की और झुलसी हुई होगी तथा बारूद के कणों के दाग पड़ जायेंगे। क्षत स्थान के बाल झुलस जाते हैं और गैस की लपट से उस स्थान के वस्त्र जल जाते हैं। ४ फीटसे अधिक दूरी से यदि व्यक्ति पर गोली चलाई गई है तो क्षत स्थान की त्वचा न तो कृष्ण वर्ण की होगी और न झुलसी हुई ही होगी।

बन्दूक की छोटी गोली के लगने के प्रभावः—

(१) १ से ३ फीट तक की दूरीसे छोटी गोली के लगने परः—

शरीर पर एक छिद्र हो जाता है जिसके किनारे अनियमित और उधड़े हुये होते हैं। बन्दूक के मुख के छिद्र के बराबर के आकार का यह छिद्र होता है और शरीर पर लगने के बाद गोली व्रण में प्रविष्ट होकर इधर-उधर छितर-बितर जाती है और आभ्यन्तरिक धातुओं को अत्यधिक क्षति पहुँचाती है। क्षतस्थान के आस-पास की त्वचा छिलकर कृष्ण वर्ण को हो जाती है और उस पर बारूद के कणों के दाग पड़ जाते हैं।

(२) ६ फीट की दूरी से लगने पर :—

बीच में एक बड़ा छिद्र बन जाता है और साथ ही व्यास में क्षत स्थान के करीब २ इञ्च के क्षेत्र में और बहुत से छोटे-छोटे छिद्र बन जाते हैं। इस अवस्था में त्वचा न तो छिलती है और न कृष्ण वर्ण की ही होती है किन्तु बारूद के कुछ दाग बन जाते हैं।

(३) १२ फीट की दूरी से लगने पर :—

व्यास में क्षत स्थान के ५ से ८ इञ्च के क्षेत्र में कई एक पृथक् पृथक् छिद्र हो जाते हैं जो कि गोली के साथ रहने वाले छर्रों के कारण होते हैं। इसमें कृष्ण-वर्णता, छीलन अथवा दाग नहीं पाये जाते।

गोली चलाने का समयः—

बन्दूक की नली में बचे हुए अवक्षेप का रासायनिक परीक्षण करके गोली चलाने के समय का निर्णय किया जा सकता है किन्तु यदि गोली चलाने के बाद बन्दूक की नली भली प्रकार साफ कर दी गयी तो इसका निर्णय नहीं किया जा सकता।

गोली चलाने की दिशाः—

गोली चलने के समय घायल व्यक्ति की स्थिति मालूम करनी चाहिये और फिर गोली लगने का व्रण और शरीर से बाहर निकलने का व्रण—इन दोनों को जमीन पर एक रेखा के द्वारा मिलाकर रेखा को बढ़ाने से गोली चलाने की

दिशा मालूम हो जाती है किन्तु जब इस प्रकार के व्रण शरीर पर नहीं बनते, तब दिशा ज्ञात करना बहुत कठिन है ।

शरीरावयवों के क्षत
(Regional Wounds)

शरीर के अवयवों के क्षत निम्नलिखित भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—

(१) शिर ।

(क) स्काल्प (Scalp) ।
(ख) कपाल (Skull) ।
(ग) मस्तिष्क (Brain) ।

(२) मुख ।

आँख, कान, नाक, ओठ, दाँत इत्यादि ।

(३) ग्रीवा ।

वक्ष और शिर के मध्य का भाग

(४) (क) वक्ष की भित्ति (Thoracic wall) ।
(ख) हृदय (Heart) ।
(ग) फुफ्फुस (Lungs) ।

(५) मेरुदण्ड (Spinal cord) ।

(६) उदर ।

(क) औदरीय भित्ति (Abdominal wall) ।
(ख) औदरीय अङ्ग (Abdominal organs) ।

१. आमाशय २. यकृत ३. प्लीहा
४. वृक्क ५. अग्न्याशय ६. मूत्राशय
७. गर्भाशय ८. बृहत् रक्तनलिकायें

(७) बाह्य जननेन्द्रियः—

(क) पुरुषों में :— १. शिश्न २. अण्डकोष

(ख) स्त्रियों में :—१. भग २. योनि

(८) शाखायें—(क) ऊर्ध्व (Superior extremity)
(ख) निम्न (Interior extremity)

(१) शिर

(क) स्काल्प :—

भारतवर्ष में इस प्रकार के व्रण बहुत पाये जाते हैं । इसमें निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं—

(१) व्रण की विशेषताएँ :—

यह स्वकृत, परकृत अथवा दुर्घटनाजन्य हो सकता है, किन्तु परकृत अधिक होता है ।

(२) व्रण के भेद:—

१. घृष्टव्रण—गुट्ठल शस्त्रों के प्रहार से और दुर्घटना से किसी कठिन वस्तु पर गिरने से होता है ।
२. पिच्चित अभिघात—यह बहुत कम होता है । आभ्यन्तरिक रक्तनलिकाओं के विदीर्ण (Rupture) होने से ऐसा हो सकता है ।
३. पिच्चित क्षत :—यह बहुत पाया जाता है और गुट्ठल शस्त्रों के प्रहार से होता है ।
४. छिन्न व्रण :—यह तेज धार वाले भारी शस्त्रों के प्रहार से होता है । इसके साथ साथ कपाल वा मस्तिष्क में भी क्षत पाया जा सकता है ।
५. विद्धव्रण :—गोली के लगने पर होता है ।

(३) शस्त्रों के भेद :—

निम्नलिखित शस्त्रों में किसी से 'स्काल्प' पर व्रण हो सकते हैं ।

१. गुट्ठल शस्त्र:—लाठी, डण्डा, बेंत इत्यादि ।
२. तेज धार वाले शस्त्र:—कुल्हाड़ी, चाकू, रेजर इत्यादि ।
३. नुकीले शस्त्र:—चाकू, बल्लम, कटार इत्यादि ।
४. बारूद के शस्त्र:—बन्दूक, राइफल, पिस्तौल इत्यादि ।

(४) रक्तस्राव :—

खुले हुए व्रणों में बहुत ज्यादा रक्तस्राव होता है और बन्द व्रणों में रक्तसञ्चय पाया जाता है।

(५) मृत्यु :—

यदि अन्दर की रचनाओं में आघात न पहुँचा हो तो ये व्रण घातक नहीं होते किन्तु व्रण के संक्रमण के कारण जीवाणु उपद्रव पैदा करते हैं—जैसे व्रण-पाक, कोथ, उपत्वचाशोथ, विसर्प, धनुर्वात, जीवाणुमयता, मस्तिष्कावरणशोथ इत्यादि, इनसे मृत्यु हो सकती है।

(ख) कपाल :—

कपाल के ऊपर आघात लगने की दृष्टि से निम्नलिखित बातें विचारणीय हैं :—

(१) व्रण की विशेषताएँ :—

१. परकृत—अधिक।
२. स्वकृत—बहुत कम या पागलों में।
३. आकस्मिक—शिर पर किसी भारी वस्तु के गिरने या शिर का किसी भारी वस्तु पर गिरने से होता है।

(२) व्रण के भेद :—

१. छिन्न व्रण :—यह किसी भारी शस्त्र के तेज धार से होता है—जैसे तलवार, कुल्हाड़ी इत्यादि।

अस्थिभग्न :—शिर पर किसी भारी वस्तु के गिरने से, शिर का किसी भारी वस्तु पर गिरने से, किसी गाड़ी के पहिये के नीचे शिर चले जाने से, रेल, मोटर इत्यादि से गिर पड़ने से या छत पर से गिरने से या किसी भारी गुट्ठल शस्त्र—जैसे लाठी—से प्रहार करने पर कपाल की अस्थियों का भग्न हो जाता है।

(३) भग्न का स्थान :—

शिर के सामने के भाग पर आघात लगने से पुरःकपालास्थि (Frontal Bone) का भग्न हो जाता है। शिर के दाहिने या बायें भाग पर आघात लगने से अस्थिभग्न ऊपर से नीचे या पूर्व से पश्चात् की ओर को होता है।

शिर के पश्चात् भाग पर आघात लगने पर भग्न ऊपर की ओर चोटी तक जाता है। किसी भारी वस्तु के पश्चात्-कपाल पर तीव्रता से गिरने पर पश्चिम कपालास्थि का भग्न (Fracture of the occipitalbone) हो जाता है और मध्यसीवनी (Sagital suture) पृथक् हो जाती है। बालकों के शिर पर आघात लगने से शिर की सीवनियाँ पृथक् हो जाती हैं। किन्तु युवावस्था के बाद प्राय: सीवनियाँ पृथक् नहीं होतीं।

कपाल पर आघात लगने से स्तब्धता, मस्तिष्कसंक्षोभ (Concussion), मस्तिष्कवृत्तिगा मध्यमा धमनी (Middle meningeal artery) की एक या दोनों शाखाओं के विदीर्ण हो जाने से, रक्तस्रावजन्य पीड़न (Compression), इत्यादि के कारण मृत्यु हो सकती है।

(ग) **मस्तिष्क :—**

जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग (Vital organ) होने के कारण इस पर आघात लगने से प्राय: मृत्यु हो जाती है।

(१) **व्रण के भेद :—**

१. छिन्न व्रण:—तेज धार वाले भारी शस्त्रों से आघात लगने पर होता है, जैसे—तलवार, कुल्हाड़ी इत्यादि।

२. पिच्चितव्रण:—गुट्ठल शस्त्रों-जैसे लाठी आदि—के आघात से हो जाते हैं। इसमें स्तब्धता, मस्तिष्क-संक्षोभ, मस्तिष्क-पीडन इत्यादि के कारण मृत्यु हो जाती है।

सापेक्षिक निदान:—

मस्तिष्क पर आघात लगने से मूर्छा उत्पन्न हो सकती है और इस मूर्छा को देखकर अपस्मार, अत्यधिक मद्यपान और अहिफेन विष सेवन का भी भ्रम उत्पन्न हो सकता है। अतएव उनके लक्षणों से परस्पर भेद मालूम कर लेना चाहिये।

(२) मुख

भारतवर्ष में मुख पर आघात अधिक देखे जाते हैं। अपराधी आँख, कान, नाक इत्यादि भागों पर पृथक्-पृथक् आघात पहुँचा सकता है। मुख के व्रणों का

बहुत जल्दी रोपण हो जाता है किन्तु 'भयंकर आघात' (Grievous hurt) के अन्तर्गत समझे जाते हैं क्योंकि मुख पर आघात लगने से दृष्टि का नाश, श्रवण-शक्ति का नाश, आकृति में विकार या अस्थिभग्न हो जाता है।

मुख पर विभिन्न प्रकार के आघात--

१. **तेज़ धार वाले शस्त्र :**—जैसे चाकू से नाक काट लेना—यह प्रायः चोरी और व्यभिचार के मामले में देखा जाता है।

२. **स्त्रियों के नाक और कान पर आघात :**—चोरी करते समय स्त्रियों के नाक और कान के आभूषणों को शरीर से खींचकर निकाल लेने से होता है।

३. **आँखों पर आघात :**—व्यभिचार के दण्ड के रूप में किसी नुकीले शस्त्र से प्रहार करने पर आँखों में आघात पहुँचता है। कभी कभी शिर पर लाठी या डंडा मारते समय धोखे से आँख पर आकस्मिक आघात लग जाता है। परिणाम स्वरूप में अक्षिगोलक (Eye-ball)विदीर्ण हो जाता है।

४. **कान :**—चोरी और व्यभिचार का दण्ड देने के लिये भारतवर्ष के लोग अपराधी का कान काट लेते हैं क्योंकि यह किसी दुष्कर्म का चिह्न समझा जाता है।

५. **अस्थिभग्न :**—किसी गुट्ठल शस्त्र–जैसे लाठी–से प्रहार करने पर मुख की अस्थियों का भग्न (Fracture) हो जाता है। कभी कभी आपस में झगड़ा करते हुये मुँह पर कस कर घूँसा पड़ने से दाँत टूट जाते हैं। कभी कभी घूँसे या लाठी से नासिकास्थि का भग्न भी हो जाता है।

मुख का आघात घातक नहीं होता किन्तु जब इस प्रकार के आघात मस्तिष्क तक पहुँच जाते हैं या मस्तिष्क में शोथ उत्पन्न कर देते हैं, तब मृत्यु की अधिक सम्भावना रहती है।

(३) ग्रीवा

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से ग्रीवा प्रदेश के आघातों का बहुत महत्त्व होता है क्योंकि मारने वाले व्यक्ति और आत्महत्या करने वाले व्यक्ति इसी स्थान पर आघात पहुँचाने की चेष्टा करते हैं।

आघात के भेद :—

१. पिच्चित अभिघात २. घृष्ट व्रण ३. छिन्न व्रण ४. विद्ध व्रण ५. पिच्चितक्षत।

(१) पिच्चित अभिघात। (२) घृष्टव्रण
ये फाँसी, कंठपीडन और कंठरोध के कारण हो सकते हैं।

(३) छिन्न व्रण :—

यह शत्रु द्वारा किसी तेज धार वाले शस्त्र से ग्रीवा पर प्रहार करने से होता है। आत्महत्या के लिये किये गये आघात भी छिन्न व्रण उत्पन्न करते हैं। ग्रीवा के पीछे के भाग में यह अधिक घातक होता है क्योंकि मेरुदण्ड (Spinal cord) पास ही में होता है।

(४) विद्ध व्रण :—

यह ग्रीवा के आगे के भाग में हो सकता है। इसमें रक्तस्राव, रक्त के जमने या श्वासावरोध के कारण मृत्यु हो सकती है।

(४) वक्ष

इस स्थान पर परकृत और स्वकृत आघात प्रायः देखने में आते हैं। दुर्घटनाजन्य आघात भी अधिक होते हैं।

आघात के भेद :—

(१) घृष्ट व्रण :—सड़क, रेल इत्यादि से जो दुर्घटनायें हो जाती हैं, उसमें अन्य स्थानों पर आघात के साथ-साथ वक्ष की भित्ति पर भी खुरेचन हो सकते हैं।

(२) पिच्चित अभिघात :—सड़क, रेल इत्यादि की दुर्घटना में वक्ष का पिच्चित अभिघात पाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त किसी गुठ्ठल उपकरण –जैसे लाठी आदि-से आघात करने पर भी वक्ष का पिच्चित सम्भव है। इस स्थान पर पर्शुकाओं और कशेरुकाओं के अस्थिभग्न हो जाते हैं और हृदय, फुफ्फुस इत्यादि रचनाओं पर भयंकर आघात भी पाये जा सकते हैं। आघात लगने के तत्काल बाद पिच्चित अभिघात के लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

(३) छिन्न व्रण :—किसी तेज धार वाले भारी शस्त्र–जैसे तलवार–से आघात करने पर वक्ष पर छिन्न व्रण मिलते हैं। ये परकृत होते हैं और स्कन्ध प्रदेश तथा पीठ पर वक्ष की अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं।

(४) विद्ध व्रण :—वक्ष पर विशेषतया हृत्-प्रदेश पर इस प्रकार के व्रण

अधिक पाये जाते हैं और ये परकृत अधिक होते हैं। स्वकृत बहुत कम देखने में आते हैं। परकृत व्रणों की संख्या एक से अधिक होती है और ये व्रण प्रायः भयंकर होते हैं तथा शरीर के विभिन्न भागों पर भी आघात पाये जायेंगे। स्वकृत व्रण संख्या में एक होता है। यदि दो या तीन स्वकृत व्रण किये भी जायें तो प्रायः उन में से एक काफी बड़ा और भयंकर होता है और बाकी एक या दो छोटे या साधारण होते हैं। एक से अधिक भयंकर व्रणों के मिलने पर परकृत आघात की पूर्ण सम्भावना रहती है।

वक्ष पर जो आघात किये जाते हैं, उनसे फुफ्फुस को क्षति पहुँचने की अधिक सम्भावना रहती है। फुफ्फुसों पर आघात होने से पिच्चितक्षत, छिन्न व्रण या विद्ध व्रण हो सकते हैं। इसमें रक्तस्राव या जीवाणुओं के संक्रमण से मृत्यु हो जाती है।

हृदय पर विद्धव्रणों के कारण तत्काल मृत्यु हो सकती है। रोगी १००-१५० गज की दूरी तक व्रण होने के बाद भी चल सकता है। इस अवस्था में रोगी अधिक नहीं बोल सकता। हाँ, अपने शत्रु का नाम ले ले कर गालियाँ देता हुआ सुना जा सकता है। इस के अतिरिक्त वह अपनी सहायता या रक्षा के लिये भी चिल्लाता हुआ पाया जा सकता है। हृदय पर व्रण हो जाने पर स्तब्धता या रक्त-स्राव के कारण मृत्यु हो सकती है।

वक्ष की बृहत् रक्तनलिकाओं—जैसे महाधमनी, ऊर्ध्व महाशिरा और निम्न-महाशिरा-पर आघात लगने से और उनके कट जाने से रक्तस्राव के कारण सद्यः मृत्यु हो सकती है।

(५) मेरुदण्ड

(१) तृतीय ग्रैवेयक कशेरुका के ऊपर मेरुदण्ड के ऊपरी भाग पर आघात लगने से श्वास-क्रिया की पेशियों का पक्षाघात हो जाने से तत्काल मृत्यु हो जाती है।

(२) मेरुदण्ड का संक्षोभः—रेल आदि की दुर्घटनाओं या शस्त्रों के प्रहार आदि से मेरुदण्ड में शोथ और मृदुता उत्पन्न हो जाती है और फिर पक्षाघात उत्पन्न हो जाता है।

(३) मेरुदण्ड के नीचे के भाग में तीव्राघातः—इसमें तत्काल मृत्यु नहीं होती। इसके जो उपद्रव होते हैं, उनके कारण आघात लगने से बहुत समय के बाद मृत्यु हो सकती है।

(६) उदर

औदरीय भित्ति में निम्न प्रकार के आघात पाये जा सकते हैं :—

(१) घृष्टव्रणः—

सड़क या रेल आदि की दुर्घटना में अन्य आघातों क साथ-साथ औदरीय भित्ति पर खुरेचन भी हो सकते हैं।

(२) पिंचित अभिघातः—

औदरीय भित्ति पर इस प्रकार के आघात बहुत कम होते हैं।

(३) छिन्न और (४) विद्ध व्रण :—

तेज धार वाले और नुकीले शस्त्रों से इस प्रकार के आघात किये जाते हैं। ये परकृत अधिक होते हैं। स्वकृत और दुर्घटनाजन्य बहुत कम होते हैं।

ये सब आघात यदि औदरीय अङ्गों और रचनाओं को क्षत न पहुँचायें तो घातक नहीं होते। निम्नलिखित कारणों से इस में मृत्यु हो सकती है :—

(१) स्तब्धता :—

उदर पर आघात लगने से हृदयावसाद के कारण तत्काल मृत्यु हो सकती है।

(२) रक्तस्राव :—

यकृत, प्लीहा इत्यादि औदरीय अङ्गों के विदीर्ण हो जाने से या औदरीय बृहत् रक्त-नलिकाओं के फट जाने से या कट जाने से रक्तस्राव होकर कुछ समय के अन्दर मृत्यु हो सकती है।

औदरीय अङ्गों या रचनाओं पर आघात—

(१) महाप्राचीराः—

रेल आदि की दुर्घटनाओं में उदर प्रदेश पर आघात लगने से महाप्राचीरा विदीर्ण हो सकती है।

(२) आमाशयः—

आमाशयिक व्रण, कैन्सर (Cancer), इत्यादि वा किसी दुर्घटना के कारण आमाशय भी विदीर्ण हो सकता है।

(३) मलाशय :--

भारतवर्ष में चोरी, व्यभिचार, गुदमैथुन इत्यादि के अपराधियों को दण्ड के रूप में गुदमार्ग में डंडा प्रवेश करते हुये भी लोगों को देखा गया है और इस कारण से मलाशय और गुदा पर आघात पाये जा सकते हैं।

(४) यकृत :--

रेल, मोटर, गाड़ी इत्यादि भारी गाड़ियों की पहिया उदर प्रदेश के ऊपर से निकल जाने से, किसी ऊँचे स्थान से गिर पड़ने से, उदर-प्रदेश पर किसी भारी वस्तु के गिरने से या अन्य किसी प्रकार को दबाव पड़ने से यकृत विदीर्ण हो सकता है। ऐसी अवस्था में रोगी की तत्काल मृत्यु प्रायः नहीं होती है किन्तु कुछ समय के अन्दर रोगी की मृत्यु हो सकती है।

(५) प्लीहा :—

मलेरिया के बार-बार आक्रमण से, किसी दुर्घटना में प्लीहा पर आघात लगने या किसी ऊँचे स्थान से गिर पड़ने से प्लीहा विदीर्ण हो सकती है। इसमें भी कुछ समय के अन्दर ही मृत्यु होती है।

(६) गर्भाशय :--

गर्भिणी स्त्री में गर्भाशय पर धक्का लगने से गर्भाशय विदीर्ण हो सकता है। गर्भपात के अपराध के परिणामस्वरूप, गर्भाशय में लकड़ी प्रवेश करने से वा किसी अन्य कारण से ऐसा हो सकता है।

(७) इसी प्रकार वृक्क, मूत्राशय, अन्याशय, इत्यादि अङ्ग भी इन्हीं कारणों में से किसी से विदीर्ण हो सकते हैं।

(७) बाह्य जननेन्द्रिय

(१) शिश्न और अण्डकोष :--

व्यभिचार और बलात्कार के अपराध में दण्ड देने के लिये कुछ लोग अपराधी के शिश्न और अण्डकोष को क्रोधवश काट देते हैं। पागलों में भी यह प्रवृत्ति पायी जाती है।

(२) भग और योनि :—

व्यभिचार का सन्देह होने पर घर की स्त्रियाँ इस प्रकार की स्त्री के भग और योनि को गरम-गरम चिमटा, करछुल इत्यादि से दाग देती हैं। इसके अतिरिक्त परकृत या दुर्घटनाजन्य आघात लगने से भी रक्तस्राव होकर मृत्यु हो सकती है। गर्भपात कराते समय या उसके लिये यत्न करते समय योनि क्षतयुक्त हो सकती है। बलात्कार या स्त्री की इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक मैथुन करने से योनि क्षतयुक्त हो जाती है।

(८) ऊर्ध्व और निम्न शाखायें

हाथ-पैरों पर आघात लगने से किसी धमनी के कट जाने से रक्तस्राव होकर मृत्यु हो जाती है। स्तब्धता, श्रम वा धनुर्वात, कोथ, अधस्त्वक् धातुओं में शोथ, विसर्प इत्यादि व्याधियों के कारण भी मृत्यु हो सकती है।

क्षतयुक्त व्यक्ति की परीक्षा का विवरण

(Examination of the injured person)

यह प्रायः सरकार से नियुक्त चिकित्सक को लिखना पड़ता है। पुलिस या मजिस्ट्रेट क्षतयुक्त व्यक्ति की परीक्षा के लिये चिकित्सक के पास भेजते हैं। परीक्षा का विवरण छपे हुए फार्म में भरना पड़ता है। इस फार्म को भरते समय निम्नलिखित बातों पर विवरण या अपना अनुमान लिखना आवश्यक होता है :—

१. व्यक्ति का नाम, पता, विवरण लिखने का समय, दिन, तारीख, महीना, साल तथा स्थान का सविस्तर वर्णन लिखना चाहिये।
२. क्षतयुक्त व्यक्ति को लाने वाले पुलिस का नाम तथा नंबर।
३. क्षतयुक्त व्यक्ति के पहचान के चिह्न।
४. **क्षत :** प्रत्येक क्षतका स्थान, प्रकार, आकृति, लम्बाई, चौड़ाई, गहराई, क्षतोष्ठ, तल, स्राव तथा समीपवर्ती धातुओं की स्थिति इत्यादि बातें प्रत्येक क्षत के विषय में लिखना।
५. क्षत का शरीर पर प्रभाव (Nature of Injury)।
६. उपकरण के विषय में अनुमान (Kind of Weapon)
७. क्षत का समय (Age of an Injury)।
८. मृत्यु का कारण (Cause of death)।

९. अनेक अघातों में से किस से 'मृत्यु' हो सकती है।

१० मृत्यु के पूर्व और मृत्यूत्तर किये हुए क्षतों में भेद।

११ आत्मकृत, परकृत या दुर्घटनाजन्य क्षत।

(५) क्षत का सामान्य विवरण तथा शरीर पर प्रभाव। (Nature of Injury)।

प्रत्येक क्षत के सामान्य विवरण में उपर्युक्त प्रश्न ४ में लिखे हुए अनेक प्रश्नों का उल्लेख करना चाहिये। विशिष्ट क्षत का स्थान लिखते समय समीपवर्ती किसी स्थान से क्षत की दूरी स्पष्ट लिखनी चाहिये। लम्बाई, चौड़ाई इत्यादि के नाप एक फीते से लेना चाहिये, अन्दाज से नहीं।

क्षतों के शरीर पर जो प्रभाव होते हैं उनके अनुसार क्षतों के ३ प्रकार माने जाते हैं :—

१. सामान्य क्षत (Simple)।
२. गंभीर क्षत (Grievous)।
३. घातक या सद्यः प्राणहर क्षत (Dangerous)।

(१) सामान्यक्षत :—जिस क्षत से विशेष शारीरिक कष्ट या हानि नहीं होती, क्षत का शीघ्र रोपण होता है और रोपण के बाद कोई स्थायी स्थानिक विकृति नहीं होती ऐसे क्षत को सामान्य क्षत कहते हैं।

(२) गंभीरक्षत :—इंडियन पिनल कोड की ३२० वी धारा के अनुसार निम्न प्रकार के क्षत को गम्भीर क्षत कहते हैं।

१. षण्ढता (Emasculation) उत्पन्न होना।
२. एक या दोनों नेत्रों की अर्थ ग्रहण शक्ति सदा के लिये नष्ट होना।
३. एक या दोनों कानों की अर्थ ग्रहण शक्ति सदा के लिये नष्ट होना।
४. शरीर का कोई अवयव या संधि सदा के लिये नष्ट होना।
५. शरीर के किसी अवयव या संधि में अत्यधिक कष्ट (Privation) होना
६. शिर या मुख पर स्थायी विकृति उत्पन्न होना।
७. शरीर के किसी अस्थि में या दांत के 'भग्न' (Fracture) या किसी संधि या दाँत में संधिविश्लेष होना।

८. कोई क्षत जो क्वचित् प्राणघातक हो सकता हो या जिसके कारण क्षत युक्त व्यक्ति को कम से कम २० दिन तक अत्यधिक कष्ट सहन करना पड़े या वह व्यक्ति २० दिन तक अपना दैनिक व्यवसाय करने में असमर्थ हो, ऐसे क्षत को गंभीर क्षत मानना चाहिये।

(५) घातकक्षत—(Dangerous to Life) :—योग्य शल्य-चिकित्सक द्वारा चिकित्सा न होने पर जिस क्षत से निश्चित तत्काल मृत्यु होने की सम्भावना हो ऐसे क्षत को 'घातक क्षत' कहते हैं। अति विस्तारयुक्त क्षत तथा मर्मस्थानों के क्षत इस प्रकार के होते हैं। परंतु क्षत के उपद्रव-जैसे विसर्प या धनुःस्तंभ—के कारण कालान्तर में मृत्यु होने पर उस क्षत को 'घातक' नहीं माना जाता।

क्षतयुक्त व्यक्ति की परीक्षा करते समय यदि क्षत के शरीर पर 'प्रभाव' के विषय में निश्चयात्मक अनुमान करना कठिन है तो व्यक्ति को कुछ काल तक चिकित्सालय में रखने के बाद अपना मत लिखना चाहिये।

(६) उपकरण के विषय में अनुमान (Kind of weapon)

क्षत की आकृति लंबाई-चौड़ाई इत्यादि को देखते हुए उपकरण का अनुमान कर सकते हैं। परंतु एक विशिष्ट पिच्चित अभिघात लाठी या पत्थर से हुआ है या ऊपरसे पत्थर पर गिरने से हुआ है इस प्रश्न का निर्णय कठिन होता है। उपकरण के विषय में पुलिस या क्षतयुक्त व्यक्ति का बयान क्वचित् असत्य भी हो सकता है अतः सभी बातों को देखते हुए अपना अनुमान देना आवश्यक है। क्षत के कारणीभूत कोई उपकरण या अन्यपदार्थ जो पुलिस द्वारा उपस्थित किये गये हों उनके रक्त के धब्बे, बाल, धूलि इत्यादि के लिये परीक्षा करके तथा शरीर पर उनकी वस्त्रों पर घाव के लगभग स्थान के अनुसार कटे हुए स्थान मिल सकते हैं उनकी परीक्षा करके इन पदार्थों को सील करके पुलिस को वापस देना चाहिये।

जिस उपकरण से प्रयोग होने पर व्यक्ति की मृत्यु होने की संभावना होती है उसको सामान्यतया 'घातक उपकरण' कहते हैं। बंदूक, पिस्तौल, भाला, बरछी, चक्कू, गँड़ासा इत्यादि उपकरणों को घातक माना जाता है।

(७) क्षत का समय (Age of an Injury)

क्षतयुक्त व्यक्ति के विवरण में अनेक क्षतों में से प्रत्येक क्षत के समय का

अनुमान देना आवश्यक होता है। शरीर परके अनेक क्षतों में से सभी 'क्षत' एक ही समय के न होने की संभावना ध्यान में रखना चाहिये। निम्न बातों को देखने से क्षत के समय का अनुमान कर सकते हैं :—

१. उपत्वचा में स्थित सूक्ष्म क्षत प्रायः एक दिन में सूख जाता है।

२. क्षत उत्पन्न होने पर प्रायः ४८ घंटों में ही क्षत के चारों ओर रक्ताधिक्य तथा शोथ उत्पन्न होता है।

३. १½ से २ दिन में अशुद्ध व्रण में पूयोत्पत्ति होतो है।

४. प्रायः १ सप्ताह में रोहण धातु बनने लगती है। परंतु अतिकृश या अतिस्थूल व्यक्तियों में व्रण-रोपण शीघ्र नहीं होता।

५. अस्थिभग्नः—में प्रथम १ से ३ दिनों में चारों ओर शोथ और रक्ताधिक्य होता है। ३ से १४ दिनों के भीतर अस्थिभग्न के स्थान पर का जमा हुआ रक्त कम होकर उस स्थान में मृद्वस्थि (Callus बनने लगती है। और उसके बाद ६ठे से ८वें सप्ताह तक उस स्थान में अस्थि पूर्ववत् बन जाती है।

६. संधिविश्लेष के चारों ओर के अधस्त्वक् रक्तस्राव के 'रंगपरिवर्तन' को देखने से समय का अनुमान भलीभाँति कर सकते हैं।

७, दांत के निकल जाने से रक्तस्राव करीब २४ घंटों में रुक जाता है। तथा ७ से १० दिनों में व्रण-रोपण हो जाता है। १४वें दिन तक दांत का स्थान समतल हो जाता है।

८. मृत्यु का कारण

(Causes nf death from wounds)

क्षतयुक्त व्यक्ति की मृत्यु क्षत के कारण हुई है या नहीं ? इसका निर्णय देते समय चिकित्सक को मृत्यूत्तर परीक्षा करते समय मृत व्यक्ति को ऐसी कोई शारीरिक विकृति थो या नहीं जिससे उसकी मृत्यु हो सकतो है, इस बात का निर्णय करने का प्रयास करना चाहिये। मृत्यु का कारण कोई शारीरिक रोग या विकृति न होने का निश्चय होने पर विशिष्ट घात से मृत्यु हो सकती है या नहीं ? इसका अनुमान देना चाहिये। कभी २ शारीरिक विकृति की उपस्थिति में

क्षत लगने से शारीरिक विकृति में वृद्धि होने से मृत्यु हो सकती है। याने ऐसे अवसर पर 'क्षत' मृत्यु का प्रधान कारण न होते हुये सहायक या विप्रकृष्ट कारण माना जाता है। चिकित्सक को अपना विवरण लिखते समय इन बातों का विचार करना आवश्यक होता है। क्षतों द्वारा मृत्यु होने के कारणों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जाता है:—

१. सद्यः प्राणहर कारण (Immediate-Causes)
२. कालांतर प्राणहर कारण (Remote Causes)।

१. सद्यः प्राणहर कारणः—

(क) रक्तस्राव।
(ख) मर्मस्थानों के क्षत।
(ग) अवसाद।

(क) रक्तस्राव—एक ही समय में ५ से ८ पौंड रक्तस्राव होने से मृत्यु होने की संभावना होती है।

(ख) मर्मस्थानों के क्षत—मस्तिष्क, हृदय, फुफ्फुस, यकृत, प्लीहा इत्यादि अंगों के क्षत प्रायः सद्यः प्राणहर होते हैं।

(ग) अवसाद—मस्तिष्क, हृत्प्रदेश, उदरका ऊपरी भाग इनपर तीव्र आघात लगने से अकस्मात् हृत्क्रिया तथा अन्य शारीरिक क्रियाएँ बन्द होती हैं।

२. कालांतर प्राणहर कारणः—

(क) आंतरिक अंगों का शोथ, जैसे औदरिक-कला, फुफ्फुसावरण, मस्तिष्कावरण इत्यादि कलाओं का शोथ।

(ख) विसर्प, धनुःस्तम्भ, विषमयावस्था, पूयमयावस्था तथा व्रणशोष (Exhaustion from Prolonged Iujury)।

(ग) कोथ।

(घ) व्रणयुक्त व्यक्ति की चिकित्सा और आहार-विहार के विषय में पूर्ण प्रबन्ध न होने पर यदि व्यक्ति की मृत्यु होती है तो आघात करने वाला दोषी समझा जाता है।

(ङ) योग्य सर्जन द्वारा चिकित्सा होने पर भी यदि व्यक्ति की मृत्यु होती है तो आघात करने वाला व्यक्ति दोषी माना जाता है।

६. अनेक आघातों में से किससे मृत्यु हुई ?

यदि एक व्यक्ति के शरीर पर अनेक आघात हैं जो अनेक व्यक्तियों के आघातों से एक ही समय में या भिन्न २ समय में हुए हों तो, इस बात का अनुमान करना आवश्यक हो जाता है कि अनेक आघातों में से किस क्षत से मृत्यु होने की सम्भावना हो सकती है। जिस क्षत से सद्यःप्राणहर कारण उत्पन्न होकर मृत्यु हो सकती है उसका निर्णय करना कठिन नहीं है। उसके बाद 'उपकरण' का अनुमान करके और अन्य परिस्थितिजन्य प्रमाणों को देखते हुए 'घातक क्षत' और घातक आघात करने वाले व्यक्ति का अनुमान हो सकता है।

१० मृत्यु के पूर्व और मृत्यूत्तर किये हुये क्षतों में भेद

निम्न सारिणी में दोनों क्षतों में भेद स्पष्ट किया गया है—

भेदकर चिह्न	मृत्यु के पूर्व के क्षत	मृत्यूत्तर क्षत
१ रक्तस्राव	अत्यधिक, धमनीगत रक्तस्राव में समीपवर्ती त्वचापर रक्त के धब्बे मिलेंगे (sprouting), रक्त जमा हुआ मिलेगा।	रक्त जमता नहीं। समीपवर्ती त्वचा पर धब्बे नहीं मिलेंगे।
२ व्रणोष्ठ	अधिक विभक्त और ऊपर रक्त जमा हुआ रहता है।	व्रणोष्ठों में ये चिह्न अनुपस्थित रहते हैं।
३ जमा हुआ रक्त	व्रणोष्ठों पर का जमा हुआ रक्त पानी में अनघुलनशील होता है।	रक्त पानी में घुल जाता है।
४ समीपवर्ती अधस्त्वक् धातु	इन में रक्ताधिक्य और शोथ होता है।	अनुपस्थित।
५ रोपण के चिह्न	शोथ, पूयोत्पत्ति, रोहण धातु इत्यादि रोपण क्रिया के द्योतक चिह्न।	अनुपस्थित।

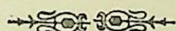
(११) आत्मकृत, परकृत या दुर्घटनाजन्य क्षतों में भेद

इस प्रश्न का उत्तर क्षतों की (१) स्थिति तथा प्रकार (२) उनकी संख्या, दिशा तथा विस्तार और (३) अन्य परिस्थितिजन्य प्रमाण, इन बातों को देखने से मिल सकता है।

(१) आत्मकृत क्षतः—आत्महत्या के लिये किये हुए क्षत प्रायः १. मर्मस्थानों में तथा २. शरीर के पूर्व या पार्श्व भाग पर होते हैं। स्वकृत क्षत प्रायः ३. छिन्न (Incised) विद्ध (Punctured or Penetrating), या गोली या छर्रे के क्षत होते हैं। प्रायः ४. शरीर में १ से अधिक क्षत नहीं होते। क्षत की दिशा प्रायः शरीर के ऊपरी भाग में ऊपर से नीचे को ओर और नीचे के भाग में नीचे से ऊपर की ओर होती है।

(२) परकृत क्षत—क्षत शरीर के किसी भी भाग में हो सकते हैं। पीठ, नाक, कान, अंगुली, बाह्य जननेन्द्रिय इनके क्षत प्रायः परकृत होते हैं। क्षत प्रायः पिच्चित अभिघात या पिच्चितक्षत, छिन्न, विद्ध या गोली इनमें से किसी प्रकार का हो सकता है। परकृतक्षत प्रायः वामपार्श्व में या पीठ पर और एक से अधिक होते हैं।

(३) अपघातजन्य क्षत— क्षत प्रायः एक पार्श्व में और प्रायः पिच्चित अभिघात या क्षत के स्वरूप के होते हैं।



छठा अध्याय

श्वासावरोधजन्य मृत्यु

आकस्मिक मृत्यु के कारणीभूत निम्न अवस्थाओं में सर्वप्रथम श्वासावरोध की अवस्था उत्पन्न होकर शरीर में प्राणवायु (Oxygen) की क्रमशः कमी होने से मृत्यु होती है—

१. फाँसी (Hanging)।

२. कंठपीडन या गला घोटने से मृत्यु (Strangulation)।
३. दम घुटना या श्वासमार्ग से आभ्यन्तरिक अवरोध (Suffocation)।
४. डूबना (Drowning)

१ फांसी[1]

व्याख्या :—

जब ग्रीवा के चारों ओर एक रस्सी अथवा बंधन बांधकर व्यक्ति को लटकाया जाता है तो उसके शरीर के भार के कारण सरकफंदा कस जाता है जिससे वायु-मार्ग (Air passage) संकुचित हो जाता है और वायु वायु-कोष्ठों (Alveoli) में नहीं पहुँचती इसको फाँसी या गलपाश कहते हैं।

इसमें बन्धन से शरीर को लटकाने की क्रिया आवश्यक है। लटकने से बंधन शरीर के भार से और कसता जाता है। व्यक्ति बैठा या नीचे झुका हुआ हो तो ग्रीवा का पीडन ठीक नहीं होता, इस अवस्था को 'अर्ध फाँसी' (Partial hanging) कहा जाता है।

बंधन—ग्रीवा का बंधन इतना मजबूत होना आवश्यक है कि वह शरीर का आकस्मिक भार सह सके। बंधन के आकार में तथा ग्रीवा पर स्थित बंधन के चिह्न के आकार में सादृश्य होगा।

फांसी द्वारा मृत्यु के निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) श्वासावरोध :—

बंधन प्रायः थायरॉइड कार्टिलेज के ऊपर होने से उसके दबाव से स्वरयन्त्र का ऊपरी भाग तथा जिह्वामूल अन्न-नलिका के पश्चात् भित्ति की ओर दब जाता है। इससे श्वास-मार्ग पूर्णतया बन्द हो जाता है।

(२) मस्तिष्कगत रक्ताधिक्य (Apoplexy) :—

जब ग्रीवा पर किसी मृदु वस्तु का चौड़ा बन्धन बाँधा जाता है तो वह ग्रीवा पर स्थित मृदु धातुओं में गहराई तक नहीं धंसता, जिससे मस्तिष्क से लौटने वाला रक्त वापस नहीं हो पाता अर्थात् रुक जाता है। इस कारण से मस्तिष्क और उसकी कलाओं में अत्यधिक रक्ताधिक्य हो जाता है।

1. Hanging.

(३) श्वासावरोध और मस्तिष्कगत रक्ताधिक्य मिश्रित :—

फांसी द्वारा मृत्यु प्रायः इसी से होती है।

(४) हृत्कार्यावरोध[1] :—

जब फांसी में सरकफन्दे के लिए पतली रस्सी का प्रयोग किया जाता है, जो कि ग्रीवा में स्थित मृदु धातुओं में गहराई तक धँस जाती है, तो व्हागस नाड़ियों पर दबाव पड़ने के कारण हृदय अकस्मात् रुक जाता है।

(५) मूर्च्छा तथा मस्तिष्क कार्यावरोध[2] :—

ग्रीवा पर स्थित बन्धन के कारण जब मस्तिष्क में रक्तपरिभ्रमण पूर्णतया रुक जाता है, तब ऐसा होता है। इसमें मस्तिष्क एवम् उसकी कलाओं में किसी प्रकार का स्पष्ट परिवर्तन किये बिना ही बेहोशी होकर मृत्यु हो जाती है।

(६) ग्रैवेयक कशेरुकाओं का अस्थिभग्न अथवा संधिविश्लेष :—

यह 'न्याय-सम्बन्धी फांसी' (Judical Hanging) में प्रायः मृत्यु का कारण होता है। सुषुम्ना पर दबाव अथवा आघात के कारण तत्क्षण मृत्यु हो जाती है। किन्तु यदि अस्थिभग्न अथवा विश्लेषित कशेरुकाओं के द्वारा सुषुम्ना पर आघात नहीं हुआ है तो उपर्युक्त कारणों में से किसी न किसी से मृत्यु हो जाती है। न्याय-सम्बन्धी फाँसी में प्रायः प्रथम और द्वितीय ग्रैवेयक कशेरुकाओं का अस्थिभग्न या संधिविश्लेष हो जाता है।

लक्षण तथा चिह्न :—

(क) मूर्च्छावस्था से पूर्व—

१. तीव्र पीड़ा होती है।

२. कानों में तीव्र ध्वनि होती है।

३. आँखों के सामने चकाचौंधी मालूम होती है।

४. अत्यधिक मानसिक विभ्रम हो जाता है।

५. अबद्ध विचार होते हैं।

(ख) मूर्छित होने के बाद—

६. मुख, ओष्ठ और नख नील वर्ण के हो जाते हैं।

---

1. Syncope, 2. Coma,

७. मुख के कोण से राल टपकती है ।
८. मल. मूत्र और शुक्र का स्वत: त्याग हो जाता है ।
९. श्वास-क्रिया रुक जाती है ।
१०. ८ या १० मिनट तक हृदय की गति होती रहती है । तदनन्तर धीरे धीरे हृदय भी रुक जाता है ।

चिकित्सा :—

१. रोगी को तुरन्त नीचे लिटा कर ग्रीवा के बन्धन खोल देना चाहिए ।
२. कृत्रिम श्वास-क्रिया करनी चाहिये ।
३. विशुद्ध एवं स्वच्छ वायु अथवा अमोनिया की व्यवस्था करनी चाहिये ।
४. मुख और शिर पर शीतल क्रिया करनी चाहिये ।
५. यदि शरीर शीत हो तो उष्ण उपनाह, अभ्यंग अथवा उष्ण जल की बोतलों द्वारा शरीर के ताप की रक्षा करनी चाहिये ।
६. उत्तेजना के लिए स्ट्रैन एड्रेनलीन क्लोराइड आदि के इन्जेक्शन देने चाहिये ।

स्ट्रिकनिन सल्फेट ग्रेन $\frac{1}{100}$ (Strychnine Sulphate Gr $\frac{1}{100}$ का या ऍड्रिनलिन क्लोराइड १००० में १ प्रमाण के घोल का $\frac{1}{2}$ से १ सी० सी० (Adrenalin Chloride $\frac{1}{2}$ To. I c. c. of I in 1000 solution त्वचा के नीचे इंजेक्शन देना चाहिये ।

७. ब्राण्डी मुख अथवा मलद्वार द्वारा प्रवेश कराना चाहिये ।
८. वक्ष, उदर एवं पिंडलियों पर राई का प्लास्टर लगा सकते हैं ।
९. यदि हृदय-वृद्धि के चिह्न मिलें तो शिराव्यध द्वारा रक्तावसेचन करना चाहिये ।

मृत्यु का समय:—साधारणतया फांसी का मृत्यु-काल ५ से ८ मिनट है ।

मृत्यूत्तर रूप—

(क) बाह्य :—

(१) बन्धन के चिह्न :—यह बन्धन द्रव्यकी मृदुता या कठिनता, बाँधने की विधि, तथा शरीर का लटकते रहने का कम या अधिक समय इनके अनुसार

स्पष्ट गहरा या अस्पष्ट होगा। बंधन के चिह्न के नीचे उपत्वचा में घृष्टव्रण के साथ साथ अधस्त्वक् रक्तस्राव होने पर जीवित अवस्था में बन्धन लगने के ये विशिष्ट चिह्न माने जाते हैं।

१. चिह्न प्रायः तिरछा और ग्रीवा के ऊपर की ओर स्थित होता है और ग्रीवा के चारों ओर पूरा वृत्ताकार नहीं होता।

२. यदि लटकाने से पूर्व बन्धन कसकर और अच्छी तरह से बाँधा गया है तो चिह्न ग्रीवा के नीचे के भाग में तिर्यग्गामी–गोलाकार और ग्रीवा के चारों ओर पूरा वृत्ताकार होगा।

फांसी में इस प्रकार बन्धन के द्वारा जो हल्की सी रेखा पड़ जाती है, उसका वर्ण प्रायः गहरा भूरा पाया जाता है किन्तु यह चिह्न बहुत हल्का अथवा बिलकुल गायब हो सकता है जब कि शरीर किसी चौड़े और मृदु सरकफन्दे के द्वारा बहुत थोड़े समय तक लटकाया गया हो।

(२) अन्य बाह्य रूप :—

१. चेहरा पीत वर्ण का होगा।
२. मुख के कोण से एक सीधी रेखा में छाती पर राल टपकती होगी।
३. पुतलियाँ प्रसारित होंगी।
४. ओष्ठ, मुख और नख नील वर्ण के होंगे।
५. मल-मूत्र त्याग के चिह्न होंगे।
६. पुरुषों में शिश्न फूला हुआ होगा और वस्त्रों तथा शरीर पर शुक्र के धब्बे मिलेंगे।
७. यदि शरीर को अधिक समय तक लटकाया गया होगा तो मुख शोथ युक्त और नीलवर्ण का होगा।

(ख) आभ्यन्तरिक चिह्न :—

१. हृदय के दक्षिण कोष्ठों में नीले रंग का पतला रक्त भरा होगा और वाम कोष्ठ प्रायः रिक्त होते हैं।
२. न्याय-सम्बन्धी फाँसी में ग्रीवा में स्थित मृदु रचनायें विच्छित होकर उधड़ी हुई मिलेंगी।

३. न्यायसम्बन्धी फाँसी में प्रथम और द्वितीय ग्रैवेयक कशेरुकाओं का अस्थिभग्न अथवा विश्लेषण पाया जायेगा।

४. शरीर के समस्त आभ्यन्तरिक अङ्गों—जैसे प्लीहा, यकृत, वृक्क, फुफ्फुस, आमाशय, आँत, स्वरयन्त्र, श्वास-प्रणाली, मस्तिष्क और उसकी कलाओं में कुछ न कुछ रक्ताधिक्य पाया जायेगा।

(ग) फाँसी द्वारा मृत्यु होने के चिह्न—

१. मुख के कोण से एक सीधी रेखा में राल का वक्ष-स्थल पर टपकना सबसे अधिक विश्वसनीय चिह्न है।

२. मल-मूत्र स्वतः त्याग।

३. शिश्न फूला हुआ होना।

४. वस्त्रों पर शुक्र के धब्बों का होना।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी प्रश्न :—

फाँसी द्वारा मृत्यु होने के मामले में निम्नलिखित प्रश्न हो सकते हैं :—

१. क्या मृत्यु का कारण फाँसी है?

२. यदि मृत्यु का कारण फाँसी ही है तो वह स्वकृत है, परकृत है अथवा आकस्मिक है?

[१] क्या मृत्यु का कारण फाँसी है?

हिन्दुस्तान में प्रायः आत्महत्या फाँसी लगा कर मरने से भी होती है, अतएव कोई भी व्यक्ति अपने शत्रु को तुरन्त मार कर किसी वृक्ष की शाखा, मन्दिर अथवा मकान की छत पर से लटका सकता है ताकि उसके अपराध एवम् परहत्या का पता न लग सके। अत एव यह आवश्यक है कि मृत्यु का कारण फांसी है अथवा कोई अन्य कारण है, इसका निर्णय किया जाय, ऐतदर्थ निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है :—

(१) बन्धन के चिह्न :—

(क) बन्धन के चिह्न की उपस्थितिः—ग्रीवा पर लाक्षणिक तिरछे बन्धन के चिह्न का उपस्थित होना ही कोई आवश्यक सूचक नहीं है कि मृत्यु फाँसी द्वारा ही हुई है क्योंकि ऐसा निम्नलिखित कारणों से भी हो सकता है :—

१. मृत्यु के पश्चात् तुरन्त या २–३ घण्टे के अन्दर शरीर को लटका दिया जाये।

२. जीवन काल में अथवा मृत्यूत्तर ग्रीवा के चारों ओर एक बन्धन बाँधकर जमीन पर शरीर को घिरोया जाये। किन्तु इस अवस्था में शरीर पर छिलने तथा खरोंचन के चिह्न पाये जायेंगे जिनसे रक्तस्राव अथवा व्रण हो जायेंगे। मृत्यु के पश्चात् इन स्थानों पर श्वेत चिह्न होंगे, त्वचा सिकुड़ी हुई होगी और उनसे रक्तस्राव नहीं होगा।

(ख) बन्धन चिह्न की अनुपस्थिति :—बन्धन चिह्न का ग्रीवा के चारों ओर अनुपस्थित होना भी यह नहीं सूचित करता कि मृत्यु फाँसी के द्वारा नहीं हो सकती क्योंकि निम्नलिखित अवस्थाओं में ग्रीवा पर चिह्न नहीं हो सकते :—

१. यदि प्रयुक्त बन्धन चौडा और मृदु हो।

२. यदि लटकाने का समय थोड़ा हो।

(२) मस्तिष्क :—

निस्सन्दिग्ध फाँसी द्वारा मृत्यु में मस्तिष्क साधारण अथवा स्वस्थावस्था में पाया जा सकता है, इसका कारण रक्तपरिभ्रमण का पूर्ण अवरोध और संन्यास के परिणाम स्वरूप मृत्यु का होना है जो ग्रीवा की रक्तनलिकाओं में दबाव पड़ने से होता है। दूसरे मस्तिष्क और उसकी कलाओं में अत्यधिक रक्ताधिक्य भी हो सकता है—यह उस समय हो सकता है जब कि शिरागत रक्त-परिभ्रमण रुक जाता है जिसका कारण चौड़ा और मृदु बन्धन है जो कि शिराओं की पतली दीवारों पर दबाव डालता है जिससे मस्तिष्क से शिरागत रक्त का लौटना रुक जाता है और जिससे धमनी-गत रक्तपरिभ्रमण को कोई रुकावट नहीं होती।

[२] क्या मृत्यु का कारण स्वकृत, परकृत अथवा आकस्मिक है ?

(क) निम्नलिखित अवस्थाओं में मृत्यु का कारण स्वकृत नहीं हो सकता :—

१. यदि शरीर इस प्रकार से लटका हुआ पाया जाय कि मरने वाला व्यक्ति स्वयं उस प्रकार से न कर सकता हो।

२. यदि उसके शरीर पर ऐसे यान्त्रिक आघात पाये जायें कि जिससे सम्भवतः मृत्यु तत्काल हो जाये और वह कहीं पर लटका हुआ पाया जाये।

(ख) परकृत :—यह बहुत कम होता है। केवल निम्नलिखित अवस्थाओं में सम्भव हो सकता है :—

१. जब कि मरने वाला व्यक्ति जीवितावस्था के समय सोया हुआ हो, बेहोश हो अथवा किसी निद्रालु विष के प्रभाव में हो।

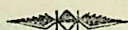
२. जब कि मरने वाला व्यक्ति कोई बालक हो जो कि अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो।

३. जब कि कई व्यक्ति मिलकर किसी व्यक्ति को फाँसी पर लटका दें।

(ग) आकस्मिक :—यह बहुत कम होता है। केवल निम्नलिखित अवस्थाओं में हो भी सकता है :—

१. बच्चों में :—जब गले में रस्सी डालकर खेल रहे हों।

२. युवकों में :—फाँसी की नुमायश दिखलाते समय यदि अधिक समय तक लटकाये रक्खा जाये।



सातवाँ अध्याय

Imp. 1960. 1964

कंठपीडन या गला घोटने से मृत्यु

(Death by Strangulation)

व्याख्या :—

कण्ठपीडन तीव्रश्वासावरोधजन्य मृत्यु का एक भेद है जिसमें मरने वाले व्यक्ति की ग्रीवा में वायुमार्गों के संकुचित हो जाने से मृत्यु हो जाती है। इसमें शरीर को लटकाने की क्रिया आवश्यक नहीं होती।

किसी व्यक्ति को कण्ठपीडन द्वारा मार डालने के लिये बन्धन, अंगुलियों से गला घोटना (Throttling) या लाठी, बाँस, डण्डे आदि साधनों का प्रयोग किया जाता है। इससे मृत्यु प्रायः श्वासावरोध और मस्तिष्कगत रक्ताधिक्य

(Apoplexy) के मिश्रण से होती है, किन्तु फाँसी की भाँति अन्य कारणों से भी मृत्यु हो सकती है।

मृत्यूत्तर रूप :—

इसमें प्रायः वे ही चिह्न मिलते हैं जो कि फाँसी में। केवल निम्नलिखित भेद पाये जाते हैं :—

(१) बन्धन :—

(क) बन्धन के चिह्न प्रायः वृत्ताकार, ग्रीवा में थायरॉइड कार्टिलेज के नीचे के भाग में और ग्रीवा के चारों ओर लगातार चक्कर के रूप में पाये जाते हैं। यदि शरीर को घिर्राया गया होगा तो यह तिरछा और ग्रीवा के ऊपर के भाग में होगा और ग्रीवा के चारों ओर लगातार चक्कर के रूप में नहीं होगा।

(ख) बन्धन के चिह्न के साथ साथ उपत्वचा में घृष्टव्रण और अधस्त्वक् धातुओं में रक्तस्राव फाँसी की अपेक्षा कण्ठपीडन में अधिक पाया जाता है।

(२) अंगुलियों से गला घोटना (Throttling):—

यह प्रायः बच्चों और स्त्रियों में अधिक होता है। इसमें ग्रीवा पर पिच्चित अभिघात और अंगुलियों के गहरे रङ्ग के चिह्न पाये जाते हैं, जिनकी स्थिति, आकार, संख्या और उनका उथला या गहरा होना एक अथवा दोनों हाथों का प्रयोग, प्रयुक्त शक्ति इन पर निर्भर है।

(३) लाठी, डंडे आदि द्वारा :—

cartilages.

इसमें वटुकास्थि और स्वरयन्त्र की तरुणास्थियों का अस्थिभग्न पाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त स्थानिक घृष्टव्रण और छिलने के निशान भी पाये जायेंगे।

कण्ठपीडन के मृत्यूत्तर चिह्न :—

१. प्रायः जिह्वा बाहर को निकली हुई होती है, उसमें शोथ हो सकता है और उसका वर्ण कृष्ण होगा।
२. फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य होगा। काटने पर उसमें से गहरे कृष्ण वर्ण का रक्त निकलेगा।

३. ग्रीवा में बन्धन–चिह्न के स्थान पर त्वचा के नीचे रक्ताधिक्य या जमा हुआ रक्त मिलेगा और ग्रीवा पर प्रायः पिच्चित अभिघात भी पाया जायेगा।

४. यदि मृत्यु परकृत है तो मुख, हाथ, पैर, सिर आदि पर लड़ाई-झगड़े के कारण घृष्टव्रण, पिच्चित अभिघात के चिह्न मिलेंगे।

कण्ठपीडन का निदान :—

१. अंगुलियों, नखों अथवा डण्डे आदि के दबाव से बने हुये चिह्न।

२. लड़ाई-झगड़े के चिह्न।

३. श्वासावरोधजन्य मृत्यु के चिह्न।

४. मृत्यु के अन्य कारणों की अनुपस्थिति।

५. मुख के कोण से छाती पर लालारस के टपकने के चिह्नों की अनुपस्थिति।

व्यवहारायुर्वेद-सम्बन्धी प्रश्न :—

१. क्या मृत्यु का कारण कण्ठरोध था ?

२. कण्ठपीडन स्वकृत, परकृत अथवा दुर्घटनाजन्य था।

(१) क्या मृत्यु का कारण कण्ठपीडन था ?

कण्ठरोध के द्वारा मृत्यु के चिह्न और लड़ाई–झगड़े के चिह्नों का पाया जाना यह बतलाता है कि मृत्यु कण्ठरोध के कारण ही हुई है।

इस दशा में ग्रीवा के चारों ओर हल्का किन्तु स्पष्ट चिह्न–हाथ की अंगुलियां, नखों आदि के पाये जायेंगे।

(२) कण्ठपीडन स्वकृत, परकृत अथवा दुर्घटनाजन्य था ?

(क) स्वकृतः—बहुत कम सम्भव है, किन्तु निम्नलिखित विधि से किया भी जा सकता है :—

१. बन्धन को ग्रीवा के चारों ओर एक से अधिक बार घुमाकर बाँधने से।

२. बन्धन में एक डण्डा बाँधकर कसने से।

(ख) परकृतः—अधिकतर कण्ठपीडन परकृत ही होता है। इसमें निम्नलिखित बातें पाई जाती हैं :—

१. बन्धन में एक से अधिक गाँठों का होना।

२. ग्रीवा वा शरीर के अन्य भागों पर लड़ाई–झगड़े के चिह्नों का पाया जाना।

३. यदि मृत व्यक्ति के हाथ, पैर इस तरह से बंधे हों कि वह स्वयं वैसा न कर सकता हो।

(ग) दुर्घटनाजन्य:—ऐसा निम्नलिखित दशाओं में हो सकता है:—

१. मजदूर बोरों को पीठ पर लादते हैं और उसको एक रस्सी (पट्टा) के आश्रय पर रखते हैं जो कि सिर के ऊपर भी होकर जाती है, यदि किसी कारण से वह रस्सी खसक कर ग्रीवा पर आ जाये तो अत्यधिक भार के कारण कण्ठपीडन हो सकता है।

२. किसी चलती हुई मशीन में ग्रीवा का फँस जाना।

३. वस्त्रों को ग्रीवा पर बाँधकर अधिक कसने से।

फाँसी (गलपाश) और कंठपीडन में भेद।

फाँसी	कंठपीडन
१. प्रायः स्वकृत होता है।	१. प्रायः परकृत होता है।
२. बन्धन के चिह्न तिर्यक्गामी होते हैं, ग्रीवा में थाइरॉइड कार्टिलेज के ऊपर होते हैं और चारो ओर वृत्ताकार नहीं पाये जाते।	२. बन्धन का चिह्न बड़ा होता है, ग्रीवा के नीचे के भाग में थाइरॉइड-कार्टिलेज के नीचे होता है और ग्रीवा में वृत्ताकार पाया जाता है।
३. बन्धन–चिह्न के नीचे स्थित त्वगीय धातुयें श्वेत, कड़ी और चमकदार होती हैं।	३. बन्धन-चिह्न के नीचे स्थित धातुओं में रक्ताधिक्य पाया जाता है।
४. बन्धन–चिह्न के किनारों के समीपस्थ भाग में घृष्टव्रण और रक्ताधिक्य बहुत कम पाया जाता है।	४. बन्धन–चिह्न के किनारों के समीपस्थ भाग में घृष्टव्रण और रक्ताधिक्य अधिक पाया जाता है।
५. ग्रीवा की पेशियों में विदार प्रायः नहीं होता है।	५. ग्रीवा की पेशियों में विदार अधिकतर होता है।
६. केवल अधिक ऊँचाई से शरीर अकस्मात् गिरने से मन्या धमनी की आन्तरिक स्तरें विदीर्ण हो जाती हैं।	६. साधारणतया मन्या धमनी की आन्तरिक स्तरें विदीर्ण पायी जाती हैं।

फाँसी	कंठपीडन
७. ग्रैवेयक कसेरुकाओं का अस्थि-भग्न अथवा विश्लेष अधिकतर न्याय सम्बन्धित फाँसी में पाया जाता है।	७. ग्रैवेयक कशेरुकाओं का अस्थि-भग्न अथवा विश्लेष बहुत कम पाया जाता है।
८. घृष्टव्रण पिच्चितक्षत, पिच्चन तथा अभिघात लड़ाई–झगड़े के चिह्न मुख, ग्रीवा और शरीर के अन्य भागों पर प्रायः नहीं पाये जाते।	८. घृष्टव्रण पिच्चितक्षत तथा अभिघात लड़ाई–झगड़े के चिह्न मुख, ग्रीवा और शरीर के अन्य भागों पर प्रायः उपस्थित मिलते हैं।
९. प्रायः मुखमण्डल पीत वर्ण का होता है और त्वचा के नीचे बुन्दियों के रूप में रक्तस्राव नहीं पाया जाता।	९. मुख-मण्डल नीलवर्ण का होता है और त्वचा के नीचे बुन्दियों के रूप में रक्तस्राव पाया जाता है।
१०. ग्रीवा विस्तृत और लम्बी पड़ जाती है।	१०. ग्रीवा विस्तृत और लम्बी नहीं पड़ती।
११. श्वासावरोध के बाह्य चिह्न प्रायः सम्यक्तया प्रदर्शित नहीं होते।	११. श्वासावरोध के बाह्य चिह्न सम्यक्तया प्रदर्शित होते हैं।
१२. कर्ण, नासिका और मुख से रक्तस्राव बहुत कम देखने में आता है।	१२. कर्ण, नासिका और मुख से रक्तस्राव हो सकता है।
१३. मुख के कोण से सीधी रेखा में लालारस छाती पर टपकता है।	१३. मुख के कोण से लालारस छाती पर नहीं टपकता।
१४. फुफ्फुस की सतह पर वायु-कोष्ठ विस्फारित होने से उभार (Emphysematous patches) नहीं पाये जाते।	१४. फुफ्फुस की सतह पर वायु-कोष्ठ विस्फारित होने से उभरे हुए भाग (Emphysematous patches) पाये जा सकते हैं।

दम घुटना[1] ([redacted])

व्याख्याः—ग्रीवापर बाह्य दबाव के अतिरिक्त अन्य किसी कारण से फुफ्फुसों में शुद्ध वायु जाना बन्द होकर परिणाम स्वरूप शरीर में प्राणवायु की कमी होकर मृत्यु होती है।

कारण :

दम घुटने के निम्नलिखित कारण हैं :—

१. मुख और नासिका हाथों से बंद करना (Smothering)।

२. अन्दर से वायुमार्गों का अवरोध।

३. वक्ष पर दबाव।

४. प्राणवायु के अतिरिक्त विषैले ग्यासेस को सूँघना।

(१) मुख और नासिका को हाथों से बन्द करना :

(क) दुर्घटनाजन्य—निद्रा-काल में माता अथवा परिचारिकाओं का शिशु और बच्चों के ऊपर अकस्मात् लेट जाना।

(ख) परकृत —हाथ, वस्त्र आदि से मुख और नासिका को बन्द कर देना शिशुहत्या और बालहत्या की यह एक सामान्य रीति है।

(ग) स्वकृत—बहुत कम।

(२) वायु-मार्गों का आभ्यंतरिक अवरोध :

(क) माँस का टुकड़ा, फलों की गुठली, बटन, डाट, रबड़, मिट्टी, कीचड़ आदि बाह्य पदार्थों की उपस्थिति के कारण, ऐसा हो सकता है।

(ख) व्याधियाँ—वायु-मार्ग के किसी भाग पर दबाव डालने वाला अर्बुद, रक्तष्ठीवन से रक्त का निकलना, ग्रीवा के व्रण आदि के कारण भी ऐसा हो सकता है।

(३) वक्ष पर दबाव :—

(क) दुर्घटनाजन्य—कुम्भ की तरह किसी बड़े मेले में अथवा रेलवे

---

1. Suffocation.

और सिनेमा के टिकट घर की खिड़कियों पर अत्यधिक भीड़ के कारण वक्ष पर दबाव पड़ने से ऐसा होता है ।

(ख) परकृतः--इसमें वक्ष पर, पर्शुकाओं का अस्थि-भग्न आदि अन्य चिह्न भी पाये जाते हैं ।

(४) प्राणवायु के अतिरिक्त विषैले ग्यासेस को सूँघना :—

ऐसा कार्बन डॉयआक्साइड (Co_2), कार्बन मानोक्साईड (Co), हाइड्रोजन सल्फाईड (H_2s) अथवा जलते हुये मकान आदि के धुयें के कारण होता है ।

मृत्यु के कारण :—

१. श्वासावरोध ।

२. स्तब्धता इसमें व्हागस नाड़ियों के दबने से अकस्मात् हृत्कार्यावरोध होता है ।

घातक काल :—

तत्काल अथवा ४ या ५ मिनट के अन्दर ।

मृत्यूत्तर रूप :—

(क) बाह्य :—

१. यदि हाथ से मुख और नासिका को बलपूर्वक बन्द किया गया होगा तो ओष्ठ, मुख के कोण, नासिकाग्र और कपोलों पर कुचलने और घृष्टव्रण के चिह्न पाये जायेंगे । किन्तु यदि मृदु वस्त्र आदि का प्रयोग किया गया होगा तो इस प्रकार के कोई चिह्न नहीं पाये जायेंगे ।

२. वक्ष पर दबाव पड़ने के कारण जब पर्शुकाओं का अस्थिभग्न हो जाता है तब दोनों ओर एक ही तरह के घृष्ट व्रण के चिह्न पाये जाते हैं । कभी २ वक्षोऽस्थि का भी अस्थिभग्न हो जाता है ।

३. मुख-मण्डलः—पीत वर्ण का होता है ।

४. आँखें:—खुली हुई होती हैं ।

५. अक्षिगोलकः—उभरे हुये होते हैं ।

६. ओष्ठः—नील वर्ण के होते हैं ।

७. मुख और नासिका से रक्तमिश्रित झाग निकलता है ।

१. त्वचा के नीचे रक्ताधिक्य और रक्त की बुन्दियाँ (Punctiform Ecchymosis) पायी जाती हैं।

(ख) आभ्यन्तरिक :—

१. मुँह, गला, स्वरयन्त्र, श्वास-प्रणाली अथवा अन्न-प्रणाली में मिट्टी, कीचड़, रेत आदि पाये जा सकते हैं।

२. श्वास-प्रणाली की श्लैष्मिक कला प्रायः चमकदार रक्त वर्ण की होती है और उसमें रक्ताधिक्य तथा रक्त-मिश्रित झाग पाया जाता है।

३. फुफ्फुस में रक्ताधिक्य पाया जाता है। यदि वक्ष पर दबाव डालने से मृत्यु हुई है तो वे पिच्चित अथवा भेदित पाये जा सकते हैं।

४. फुफ्फुस के मूल, आधार और नीचे के किनारों पर फुफ्फुसावरण के नीचे रक्ताधिक्य अथवा रक्त की छोटी छोटी बुँदियाँ (Tardieu's spots) प्रायः पायी जाती हैं। तत्काल मृत्यु होने पर फुफ्फुस साधारण अवस्था में पाये जा सकते हैं।

५. हृदय के दक्षिण कोष्ठ गहरे तरल रक्त से भरे हुये और वाम कोष्ठ रिक्त होते हैं।

६. मस्तिष्क और औदरीय अवयवों में प्रायः रक्ताधिक्य पाया जाता है।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी प्रश्न :—

१. क्या मृत्यु का कारण दम घुटना था ?

२. दम घुटना स्वकृत, परकृत अथवा दुर्घटनाजन्य था ?

(१) क्या मृत्यु का कारण दम घुटना था ?

मृत्यु का कारण दम घुटना है—इसका निर्णय करने में कभी कभी कठिनाई होती है क्योंकि दम घुटने से मृत्यु के चिह्न अपस्मार, धनुर्वात अथवा कुचला-विष सेवन से हुई मृत्यु में भी पाये जा सकते हैं। एतदर्थ वक्ष, मुख, नासिका आदि के समीपस्थ प्रान्तों में आघात के चिह्नों का निरीक्षण करना परमावश्यक है। दम घुटने से हुई मृत्यु की सिद्धि के लिये परिस्थितिजन्य प्रमाण को प्राप्त करके अपना निर्णय देना चाहिये।

(२) दम घुटना स्वकृत, परकृत अथवा दुर्घटनाजन्य था ?

(क) स्वकृतः—ऐसा बहुत कम होता है। कभी २ उन्माद से पीड़ित

व्यक्तियों में अथवा बंदियों में देखने में आता है कि वे कीचड़ अथवा चिथड़ों से मुख और गले को भर लेते हैं जिनसे उनकी मृत्यु हो जाती है।

(ख) परकृत :—ऐसा कम होता है, फिर भी कभी कभी युवावस्था और बाल्यावस्था के व्यक्तियों और शिशुओं में पाया जाता है :—

१. युवा में :—यदि व्यक्ति पहले से ही मूर्छित नहीं है तो उसके हाथ, पैर, सिर, मुख आदि भागों पर लड़ाई-झगड़े के चिह्न पाये जायंगे।

२. बाल और शिशुओं में :—इनमें प्रायः मुख और नासिका में कीचड़, चिथड़े आदि भर कर ऐसा किया जाता है। स्थानिक आघात के चिन्हों के अतिरिक्त शरीर पर लड़ाई-झगड़े के चिह्न नहीं पाये जा सकते।

(ग) दुर्घटनाजन्य—दीवार, छत आदि से अकस्मात् गिर पड़ने पर ऐसा हो सकता है।

डूबना (Drowning)

व्याख्या :—

'डूबना' मृत्यु का वह रूप है जिसमें समस्त शरीर अथवा केवल मुख और नासिका का जल अथवा अन्य किसी द्रव में डूबा रहने से फुफ्फुसों में वायु-मण्डल की वायु के प्रवेश का अवरोध हो जाता है।

पूर्ण शरीर का उस द्रव या अर्धद्रव पदार्थ में डूबना आवश्यक नहीं होता।

डूबते समय की अवस्थायें :—

जब कोई व्यक्ति जल में गिरता है तो शारीरिक भार के कारण वह तत्काल उसमें डूब जाता है किन्तु हाथ-पैरों की चेष्टा और ऊपर की ओर उछाल के कारण वह पुनः जल की सतह पर आ जाता है। यदि वह तैरना नहीं जानता है तो वह अपनी सहायता के लिये चिल्लाता है, इस समय में जल उसके मुख और नासिका में प्रवेश करने लगता है और आमाशय तथा फुफ्फुसों में पहुच जाता है। फुफ्फुसों में जल पहुँचने से कास उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण फुफ्फुसों की कुछ वायु बाहर निकल जाती है और उसके स्थान पर जल पहुँच जाता है। इस प्रकार से शरीर का भार बढ़ जाता है और वह पुनः डूब जाता है। उसके हाथ-पैरों की पेशियों की अनैच्छिक गति से वह पुनः जल की सतह पर आ जाता है और इस बार फिर थोड़ा सा जल फुफ्फुसों में प्रवेश

कर जाता है और पुनः शरीर तल में पहुँच जाता है। इस प्रकार जल में डूबना और ऊपर उठना तब तक होता रहता है जब तक कि फुफ्फुसों को सम्पूर्ण वायु बाहर नहीं निकल जाती और उसके स्थान पर जल नहीं भर जाता है। ऐसा प्रायः तीन बार होता है तदनन्तर व्यक्ति मूर्छित हो जाता है और तल में डूबकर मृत्यु को प्राप्त होता है। कभी कभी आक्षेप होकर मृत्यु होती है।

लक्षण :—

१. श्रवण-सम्बन्धी भ्रम।
२. दर्शन-सम्बन्धी भ्रम।
३. भूतकाल की भूली हुई घटनाओं का पुनः स्मरण।
४. मानसिक विभ्रम :—कभी कभी।

मृत्यु के कारण :—

(१) श्वासावरोध :—

अधिकतर फुफ्फुसों में जल भर जाने के कारण श्वासावरोध होकर मृत्यु होती है।

(२) स्तब्धता :—

जल में गिरते समय भय के कारण अथवा आमाशय और वक्ष पर जल के टकराने से स्तब्धता होकर मृत्यु हो सकती है अथवा जल के अत्यधिक शीतल होने के कारण स्तब्धता हो सकती है।

(३) मस्तिष्क पर आघात (Concussion of Brain) :—

इसका कारण सिर अथवा नितम्ब के बल जल में गिरना है जिसमें जल अथवा जल में उपस्थित किसी कठिन ठोस वस्तु जैसे पत्थर आदि के तीव्र आघात के कारण मस्तिष्क संक्षोभ हो जाता है।

(४) हृत्कार्यावरोध :—

यह शीत जल में अकस्मात् गिर पड़ने पर, हृद्रोग अथवा अपस्मार से पीड़ित व्यक्तियों में होता है।

(५) मस्तिष्कगत रक्ताधिक्य (Apoplexy) :--

जल में डूबने पर नीचे की सतह से ऊपर आने की प्रबल चेष्टा करने पर शैत्य अथवा उत्तेजना से मस्तिष्क में अकस्मात् रक्ताधिक्य होने पर मस्तिष्कीय रक्त-वाहनियों के विदीर्ण हो जाने से, विशेषतया यदि वे रुग्णावस्था में हों, तब ऐसा होता है।

(६) अत्यधिक परिश्रम :—

जल में डूबने पर ऊपरी सतह पर आने के लिये सतत प्रयत्न करने के परिणाम स्वरूप--ऐसा होता है।

(७) आघात :— Injury (Trauma)

उथले जल में अत्यधिक ऊँचाई से अथवा किसी सकरे, गहरे और पक्के कुएँ में गिरने से सिर के किसी कठिन ठोस वस्तु से बलपूर्वक टकरा जाने पर कपाला-स्थियों का अस्थिभग्न और ग्रैवेयक कशेरुकाओं का विश्लेष अथवा अस्थि-भग्न हो जाता है।

मृत्युकाल :—

१. यदि व्यक्ति जल में पूर्णतया डूब जाय तो दो मिनट में श्वासावरोध हो जाता है और उसके बाद दो से पाँच मिनट के अन्दर हृदय का कार्य बन्द हो जाता है।

२. यदि गिरते समय स्तब्धता अथवा हृदयावरोध के कारण फुफ्फुसों में जल का प्रवेश होना न रुक जाये तो लगातार पाँच मिनट तक पूर्णरूपेण डूबे रहने पर मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा :--

किंचित् भी विलम्ब न करके व्यक्ति की तत्क्षण चिकित्सा प्रारम्भ कर देनी चाहिये। यदि उसके मुख और नासिका में कीचड़ आदि भरा हो तो उसे शीघ्रता से निकाल देना चाहिये। वस्त्रों को ढीला कर देना चाहिये। जिह्वा को बाहर की ओर किंचित् खींच लेना चाहिये। शरीर को वस्त्र से पोंछ कर शुष्क कर देना चाहिये। यदि श्वास-क्रिया धीरे धीरे हो रही हो तो अमोनिया सुँघानी चाहिये। विद्युत्स्पर्श-द्वारा उत्तेजना पहुँचानी चाहिये। वक्ष और मुख

पर शीत और उष्ण जल की क्रमशः धार छोड़नी चाहिये। स्ट्रिकनीन सल्फेट ग्रेन $\frac{1}{100}$ एड्रिनेलीन क्लोराइड $\frac{1}{2}$ से १ सी० सी० आदि के इन्जेक्शन लगाने चाहिये।

यदि श्वास-क्रिया पूर्णतया अवरुद्ध हो तो कृत्रिम श्वास-क्रिया करनी चाहिये। इसकी निम्नलिखित विधियाँ हैं:—

१. सिल्वेस्टर की विधि।

२. शेफर की विधि।

३. मार्शल हाल की विधि।

४. होवर्ड की विधि।

५. लेबोर्ड की विधि।

इसमें से शेफर की विधि सर्वोत्तम है। इस क्रिया को १ घंटे तक करना चाहिये। जब श्वास-क्रिया सम्यक्तया संचारित होने लग जाये तब रोगी को कम्बलों से ढक देना चाहिये। बिस्तर पर लिटा कर उसके चारों ओर उष्णोदक से भरी बोतलें लगा देनी चाहिये और उष्ण दुग्ध अथवा जल के साथ ब्रांडी देना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप :— (Post. Mortom appearances)

(क) बाह्यः—

१. वस्त्र —भीगे होंगे, यदि शीघ्र ही परीक्षण किया जाये।

२. मुखमण्डल—पीत वर्ण का होता है।

३. आँखें—आधी खुली हुई अथवा बन्द होती हैं।

४. नेत्रवर्त्म—रक्तिमायुक्त होते हैं।

५. पुतलियाँ—प्रसारित होती हैं।

६. जिह्वा—फूली हुई और कभी कभी बाहर को निकली हुई होगी।

७. मुख और नासिका पर—श्वेत और गाढ़ा झाग मिलेगा।

८. त्वचा—रोमहर्ष से (Cutis anserina) ठिठुरी हुई होगी।

९. शिश्न वा अण्डकोष—सिकुड़े हुये होंगे।

१०. हाथों में—कीचड़, रेत, कंकड़, पत्तियाँ आदि फँसे हुये पाये जा सकते हैं।

११. नखों में--रेत या कीचड़ भरा हुआ होगा।

१२. यदि शरीर जल के अन्दर १२ से २४ घंटे तक डूबा रहा है तो हथेलियों और तलुओं की त्वचा—कपिल-नील वर्ण की कुथित होगी।

१३. २ या ३ दिन के बाद हाथ और पैरों की त्वचा—हल्के वर्ण की और रेखाओं से युक्त होगी, जैसे धोबियों के होते हैं।

(ख) **आभ्यन्तरिक :--**

१. स्वरयन्त्र और श्वासप्रणाली में--स्वच्छ और रक्त-मिश्रित झाग मिलेगा। इसके अतिरिक्त इसमें कीचड़, रेत आदि भी उपस्थित हो सकते हैं। इनकी श्लैष्मिक कला में रक्ताधिक्य होगा।

२. फुफ्फुस--गुब्बारे की तरह फूले हुये और हृदय को ढके हुये होंगे। इनमें रक्ताधिक्य होगा और काटने पर पिच्छिल झाग और रक्तमिश्रित द्रव मिलेगा।

३. फुफ्फुसीय श्वासनलिकाओं में जल और रेत, कीचड़, आदि उपस्थित होंगे।

४. प्रायः आमाशय में जल भरा हुआ होगा और उनमें कीचड़, रेत आदि भी पाये जा सकते हैं।

५. जल में गिरते ही यदि मूर्छा अथवा हृदयावसाद हो जाये, तब आमाशय रिक्त होगा।

६. पक्वाशय में जल पाया जायेगा।

७. मध्य कर्ण में जल की उपस्थिति रहेगी।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी प्रश्न :--

१. क्या मृत्यु का कारण जल में डूबना था ?

२. जल में डूबना स्वकृत, परकृत अथवा दुर्घटनाजन्य था ?

(१) क्या मृत्यु का कारण जल में डूबना था ?

प्रायः ऐसा देखा गया है कि मृत्यु के बाद शवों को जल में फेंक दिया गया और उनमें वे परिवर्तन मिले जो कि डूबने से उत्पन्न होते हैं। अतएव मृत्यु से पूर्व और पश्चात् के आघातों और विष-सेवन के चिह्नों आदि को भली प्रकार से देखना चाहिये, तदनन्तर इस सम्बन्ध में अपनी सम्मति देनी चाहिये।

(२) जल में डूबना स्वकृत, परकृत अथवा दुर्घटनाजन्य था ?

(क) स्वकृत–यह बहुत प्रचलित है। प्रायः स्त्रियाँ अपने गृहस्थी के झगड़ों के कारण समीपस्थ किसी कुवें या तालाब में डूब कर प्राणान्त कर लेती हैं। इस अवस्था में आघात नहीं पाये जाते किन्तु किसी ठोस वस्तु से टकरा जाने पर सम्पर्क में आने वाले भागों पर चोट पायी जा सकती है।

(ख) परकृत—ऐसा बहुत कम होता है। डूबने से हुई परकृत मृत्यु बाल और शिशुओं में देखने में आती है। अपनी शक्ति के समान व्यक्ति को यदि उसे किसी निद्रालु विष को नहीं खिलाया गया हो या धोखे से उस पर आक्रमण नहीं किया गया हो तो इस विधि से नहीं मारा जा सकता।

(ग) दुर्घटनाजन्य—भारतवर्ष में डूबने से मृत्यु प्रायः दुर्घटनाजन्य भी होती है। गहरे जल में स्नान करते समय ऐसा हो जाता है किन्तु इस अवस्था में उसके शरीर पर वस्त्र न होंगे केवल अँगौछा या लँगोट आदि पहने हुये होगा।



आठवाँ अध्याय

अनशन, शीत और उष्णता के कारण मृत्यु

अनशन[1]

अनशन दो प्रकार का होता है :—१. आकस्मिक तथा पूर्ण अनशन और २. चिरकालीन अनशन।

(१) आकस्मिक तथा पूर्ण अनशन :—

जिसमें आवश्यक भोजन अकस्मात् और पूर्णरूप से बन्द कर दिया जाये।

(२) चिरकालीन अनशन :—

जिसमें भोजन धीरे धीरे कम कर दिया जाये।

---

1. Starvation or Inanition,

लक्षण:—

प्रथम ३० से ४८ घंटे तक :—

१. तीव्र क्षुधा।

२. पीड़ा—(१) आमाशयिक प्रदेश में होती है।
(२) दबाने पर शान्त हो जाती है।

३. तृष्णा—अधिक।

४ या ५ दिन के बाद :—

१. वसा का क्षय और शोषण प्रारम्भ हो जाता है।

२. आँखें—चमकदार और अन्दर की ओर धंसी हुईं।

३. पुतलियाँ—प्रसारित।

४. मुख की अस्थियाँ—स्पष्ट।

५. ओष्ठ और जिह्वा—शुष्क और फटे हुये।

६. प्रश्वास—दुर्गन्धि युक्त।

७. स्वर—दुर्बल, धीमा और अस्पष्ट।

८. त्वचा—शुष्क, खर झुर्रीदार और दुर्गन्धयुक्त।

९. नाड़ी—प्राय: दुर्बल और तीव्र, कभी कभी मन्द।

१०. तापक्रम—साधारण से कम।

११. उदर—पिचका हुआ।

१२. हाथ और पैर—कृश और दुर्बल।

१३. विबन्ध।

१४. पुरीष—शुष्क और कृष्ण वर्ण का।

१५. मूत्र—कम और गहरे रंग का।

१६. शारीरिक भार—धीरे धीरे कम होता जाता है।

१७. शरीर के भारका $\frac{2}{5}$ भाग कम हो जाने पर प्राय: मृत्यु हो जाती है।

१८. मानसिक शक्ति—मृत्यु के समय तक प्राय: ठीक रहता है।

कभी-कभी मृत्यु के पूर्व आक्षेप, मूर्च्छा, प्रलाप और अन्त में मस्तिष्क कार्यावरोध से मृत्यु होती है।

मृत्युकाल :—

१. यदि भोजन और जल दोनों बन्द कर दिये जायें तो मृत्यु प्राय: १० से १२ दिन में हो जाती है।

२. किन्तु यदि केवल भोजन न दिया जाये और जल पीने को दिया जाता रहे, तब मृत्यु ३० से ४५ दिन में होती है। केवल जलपर ३ से ५ महीना तक जीवित रहने के कुछ जैन साधुओं के उदाहरण हैं।

मृत्युकाल निम्नलिखित बातों पर निर्भर है :—

१. आयु—बालकों की अपेक्षा युवक और युवकों की अपेक्षा वृद्ध पुरुष अच्छी तरह अधिक उपवास सहन कर सकते हैं। परन्तु वृद्धावस्था में अधिक काल तक अनशन सहन नहीं होता।

२. लिङ्ग—पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक समय तक उपवास सहन कर सकती हैं क्योंकि उनके शरीर में वसा अधिक होती है और उनमें पुरुषों की अपेक्षा शक्ति का ह्रास कम होता है।

३. शारीरिक अवस्था—कृश और दुर्बल की अपेक्षा मेदस्वी और स्वस्थ पुरुष उपवास को अच्छी तरह से और अधिक समय तक सहन कर सकते हैं।

४. बाह्य परिस्थिति :—यदि शरीर को वस्त्रों से ढका रक्खा जाय तो उपवास को अधिक समय तक सहन किया जा सकता है। शीत ऋतु में उपवास कम समय तक सहा जा सकता है।

अत्यधिक तापक्रम में यदि शरीर को पर्याप्त जल न मिले तो भी शीघ्र मृत्यु की संभावना बढ़ जाती है। शारीरिक परिश्रम अधिक या कम होने पर भी मृत्यु शीघ्र या देर से होने की संभावना होती है।

चिकित्सा :—

अधिक समय तक उपवास करने के बाद रोगी को पहले नीबू का रस, संतरे का रस, उष्णोदक और दुग्ध थोड़ी थोड़ी मात्रा में देना चाहिये। तदनन्तर भोजन शनैः शनैः बढ़ाना चाहिये। इस बीच में रोगी को पूर्ण विश्राम करने देना चाहिये तथा शीत से बचाना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप :—

(क) बाह्य :—

१. शरीर—क्षीण, कृश और दुर्बल तथा दुर्गन्धयुक्त होता है।

२. आँखें—खुली हुई और लाल होती हैं।
३. अक्षिगोलक--अन्दर धँसे हुये होते हैं।
४. कपोल और शंखप्रदेश--पिचके हुये होते हैं।
५. त्वचा--शुष्क और झुर्रीदार होती है। पीठ या कमर में 'शय्यात्रण' मिल सकते हैं।
६. पेशियाँ—मृदु, क्षीण और पीत वर्ण की हो जाती है।
७. त्वचा के नीचे वसा--बहुत कम रह जाती है।

(ख) आभ्यन्तरिक :--

१. हृदय--रिक्त और उसका आकार छोटा होता है।
२. फुफ्फुस--संकुचित हो जाता है।
३. आमाशय और अन्त्र--रिक्त और संकुचित होते हैं।
४. यकृत्, प्लीहा और वृक्क–आकार में छोटे हो जाते हैं।
५. पित्ताशय--विस्तृत हो जाता है और उसमें कृष्ण वर्ण का गाढा पित्त भरा होता है। मूत्राशय रिक्त मिलता है।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी प्रश्न :--

१. क्या मृत्यु का कारण अनशन था ?
२. उपवास स्वकृत, परकृत अथवा दुर्घटनाजन्य था ?

(१) क्या मृत्यु का कारण अनशन था ?

मधुमेह, राजयक्ष्मा ऍडिसनका याने 'अधिवृक्कग्रंथिका रोग' (Addison's disease), माँसपेशो, क्षय आदि रोगों में भी शरीर धीरे धीरे क्षीण और दुर्बल होता जाता है और अन्त में मृत्यु हो जाती है। अतएव मृत्यूत्तर परीक्षा करते समय यह भी देखना चाहिये कि रोगी उपर्युक्त किसी व्याधि से पीडित होकर तो नहीं मरा है।

(२) अनशन स्वकृत, परकृत अथवा दुर्घटनाजन्य था ?

(क) स्वकृत :— इसका इतिहास मानसरोग से पीडित (Lunatics) तथा कैदियों में मिलता है।

(ख) परकृतः—ऐसा प्रायः शिशुहत्या और बालहत्या में होता है। इसके अतिरिक्त कभी कभी सौतेली मातायें भी अपनी बहुओं को भूखों मार डालती हैं।

(ग) दुर्घटनाजन्यः—ऐसा अकाल और खानोंमें कार्य करते समय तथा किसी निर्जन स्थान में वायुयान अथवा जलयानके टूट जाने पर हो सकता है।

शीत के कारण मृत्यु

मृत्यु के कारण :—

अत्यन्त कम तापक्रम पर रक्तगत रंजक द्रव्य (Haemogltis) से प्राणवायु (Oxygen) अलग नहीं होता। इससे क्रमशः शरीर के सेल्स् को तथा संचालक केन्द्रों को प्राणवायु न मिलने से मृत्यु होती है। अत्यधिक शारीरिक परिश्रम, चिरकालीन रोगों के कारण दौर्बल्य तथा अस्वास्थ्य, चिरकालीन मदात्यय और चिरकालीन अनशनकी अवस्थाओं में शीत का प्रभाव शरीर पर अधिक होता है। बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्था में इनका प्रभाव शरीर पर अधिक होता है। प्रवाहित शीतल हवा का प्रभाव अधिक होता है। शीत में जितने कालतक अधिक रहा जाय उतना शरीर पर अधिक प्रभाव होता है। स्त्रियों में अधस्त्वक् वसा की अधिकता के कारण शीत का प्रभाव उनपर कम होता है। स्थूल शरीर पर भी इसी कारण प्रभाव कम होता है।

लक्षण—अत्यंत तीव्र शीत लगने से त्वचा के नीचे जगह जगह पर रक्त जमने से नीले रंग के धब्बे बनते हैं (Erythematous patches or Frost bite), त्वचा की विशेषतया अँगुलियाँ, कर्ण-नासाग्र इन स्थानों की रक्त-नलिकाएँ अकस्मात् संकुचित हो जाने से ये स्थान कृष्ण वर्ण के हो जाते हैं (Chilblains), त्वचापर कभी २ फफोले पड़ जाते हैं (Vesicals) पेशियाँ कड़ी होने लगती हैं। तंद्रा (Stupor) उत्पन्न होकर मूर्छा और आक्षेपों के बाद मृत्यु होती है।

मृत्यूत्तर रूप :—

(क) बाह्य :—

१. आकृति :—विषम और पीत वर्ण की होती है।

२. त्वचा:—ताम्र अथवा रक्त वर्ण के गण्डों से युक्त होती है।

३. कर्ण, नासिका, अँगुली और अँगुष्ठ–ठिठुरे हुये अर्थात् सुन्न होंगे।

४. मृत्यूत्तर संकोच :—धीरे धीरे प्रारम्भ होता है और देर तक रहता है।

५. अत्यन्त शीत में सड़न की क्रिया नहीं होती।

(ख) आभ्यन्तरिक—

१. रक्त :—चमकीला लाल रङ्ग का होता है।

२. हृदय के दोनों कोष्ठ:—रक्त से भरे हुये होते हैं।

३. शारीरिक अवयव :—इनमें रक्ताधिक्य होता है।

व्यवहारायुर्वेद सम्बन्धी महत्त्व :—

१. भारतवर्षमें शीत से मृत्यु दुर्घटनाजन्य होती है।

२. अधिकतर शिशुओं में शीत के कारण मृत्यु होती है और इसी तरह नवजात बालक की हत्या कभी २ की जाती है।

चिकित्सा :—

१. शरीर की उष्मा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये।

२. रोगी को कम्मलों से ढक देना चाहिये।

३. बिस्तर पर रोगी को लिटा कर उष्ण जल से भरी बोतलों को आस-पास रख देना चाहिये।

४. तैल की मालिश करनी चाहिये।

५. उत्तेजक पदार्थ जैसे उष्ण चाय, काफी, उष्ण दुग्ध आदि देना चाहिये।

उष्णता के कारण मृत्यु

अत्यंत तीव्र तापक्रम से शरीर पर जो प्रभाव होते हैं उनको 'लू लगना' (Heat Stroke) कहा जाता है। तापक्रम तथा उसके परिणामों के अनुसार लक्षणों के ३ भेद किये जाते हैं। यथा—

१. तीव्रज्वरयुक्त अवस्था (Sun-Stroke or Heat Apoplexy)

२. अवसाद की अवस्था (Heat Exhaustion)।

३. मंदज्वरयुक्त अवस्था (Mtld Thermic Feuer)।

(१) उष्णता के साथ आर्द्रता हो तो प्रभाव अधिक होता है। (२) अत्यन्त शारीरिक परिश्रम से थकावट होने पर (३) जल अधिक पर्याप्त मात्रा में न

पहुँचने पर, (४) जिस कमरे में शुद्ध तथा अशुद्ध हवा आने-जाने का योग्य प्रबन्ध न हो (Bad Ventilation) ऐसे कमरे में रहने पर तथा (५) पहिले कभी 'लू' लगी हो और उससे रोगी अच्छा हुआ हो तो इन अवस्थाओं में लू का परिणाम शरीर पर जल्दी और अधिक होता है।

शुष्क तापक्रम में पर्याप्त मात्रा में पानी पीने से तथा कुछ अधिक तापक्रम में काम करने का अभ्यास होने पर तापक्रम का प्रभाव शरीर पर कम होता है।

(१) तीव्र ज्वरयुक्त अवस्था :--

लक्षण :—

श्रमिक व्यक्ति जब उच्च तापक्रम वाले वायु-मण्डल में जाता है तो लक्षण अकस्मात् उत्पन्न होते हैं। कभी कभी निम्नलिखित लक्षणों में से प्रारम्भ में दाह, शिरःशूल, वमन, चक्कर आना इत्यादि लक्षण होकर बाद में तीव्र ज्वर की अवस्था होती है।

ऐसा प्रायः ग्रीष्म ऋतु में होता है। इसमें निम्न लक्षण प्रमुख हैं :—

१. ताप का अनुभव होता है।
२. शिरोभ्रम होने लगता है।
३. ग्लानि होती है।
४. शिरःशूल उत्पन्न हो जाता है।
५. वमन होती है।
६. चेहरा लाल हो जाता है।
७. पुतलियाँ प्रारम्भ में प्रसारित होती हैं। बाद में संकुचित हो जाती हैं।
८. तापक्रम अत्यधिक, ११२° फा० से ११६° फा० तक।
९. त्वचा शुष्क हो जाती है।
१०. नाड़ी तीव्र और गतिशील होती है।
११. श्वासक्रिया जल्दी जल्दी और शब्द के साथ होती है, बाद में धीरे धीरे और खड़खड़ाहट के साथ होने लगती है।
१२. श्वासावरोध और मूर्छा होकर मृत्यु हो जाती है।

चिकित्सा :—

१. रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये ।

२. सिर पर बरफ की थैली रखनी चाहिये ।

३. अन्य शीतोपचार क्रिया करनी चाहिये ।

४. मस्तिष्कगत रक्ताधिक्य की अवस्था होने पर शिराव्यध से रक्तावसेचन करना चाहिये ।

(२) अवसाद की अवस्था :—

लक्षण :—

१. शिरःशूल होने लगता है ।

२. शिरोभ्रम हो जाता है ।

३. ग्लानि उत्पन्न हो जाती है ।

४. पुतलियाँ प्रसरित होती हैं ।

५. धुंधला दिखाई देता है ।

६. तापक्रम साधारण से कम हो जाता है ।

७. नाड़ी दुर्बल और तीव्र होती है ।

८. श्वास-क्रिया—साँय साँय के साथ होती है ।

९. हृत्कार्यावरोध होकर मृत्यु हो जाती है ।

चिकित्सा :—

१. उष्ण उपचार करना चाहिये ।

२. उष्णोदक से स्नान कराना चाहिये ।

३. वक्ष पर राई का प्लास्टर चढ़ाना चाहिये ।

४. उत्तेजना के लिये स्ट्रिकनीन सल्फेट $\frac{1}{100}$ ग्रेन का इन्जेक्शन लगाना चाहिये ।

(३) मंदज्वरयुक्त अवस्था :—

इसका विशेष कारण किसी छोटे बन्द कमरे में आग के सामने काम करना है, जैसे काँच के कारखानों में ।

लक्षण :—

१. श्रम और दुर्बलता मालूम होती है ।

२. तीव्र शिरःशूल होने लगता है ।

३. प्रकाश और ध्वनि का ज्ञान नहीं होता ।

४. तापक्रम अधिक, १०३° फा० से १०४° फ़ा० तक ।

५. त्वचा शुष्क और उष्ण हो जाती है ।

६. श्वास-क्रिया में कठिनता होती है ।

७. तन्द्रा, प्रलाप, मूर्छा ये लक्षण होते हैं ।

८. मूर्छा होकर अन्त में मस्तिष्क कार्यावरोध से मृत्यु होती है ।

मृत्यूत्तर रूप :—

(क) बाह्य :—मृत्यूत्तर संकोच और सड़न क्रिया शीघ्र प्रारम्भ हो जाती है ।

(ख) आभ्यन्तरिक :—फुफ्फुस, मस्तिष्क और औदरीय अवयवों में रक्ताधिक्य होता है ।

नवाँ अध्याय

अग्नि से जलने और दागने से मृत्यु
तथा
विद्युत्पात और विद्युत्-स्पर्श से मृत्यु

व्याख्या--

अग्निदग्ध व्रण:[1]--

जलते हुए पदार्थ की ज्वाला, विकीर्णित (Radiant) ताप अथवा किसी अति उष्ण पदार्थ के शरीर के संपर्क में आने से दग्धव्रण उत्पन्न होता है। व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से तडित् (आकाशीय विद्युत्), एक्स–किरणों और दाहक रासायनिक पदार्थों द्वारा जो आघात हो जाते हैं, उनको दग्धव्रण की संज्ञा दी जाती है।

द्रवदग्ध व्रण:[2]—

यह वह व्रण है जो क्वथनांक पर के अथवा उनके निकटस्थ तापक्रम वाले गरम-गरम द्रव अथवा उनके बाष्प रूप के शरीर पर लगने से उत्पन्न होता है।

द्रवदग्ध सामान्य दग्धव्रण की अपेक्षा कम भयंकर होता है।

दग्धव्रण की अवस्थायें :--

(१) प्रथमावस्था :--

ये ज्वाला अथवा क्वथनांक से बहुत कम तापक्रम वाले ठोस और द्रव वस्तुओं के शरीर पर क्षणिक स्पर्श से त्वचा में रक्ताधिक्य तथा शोथ उत्पन्न हो जाते हैं। ये मृदु–क्षोभक वस्तुओं से भी उत्पन्न हो सकते हैं। ये कुछ ही घण्टों में विलीन हो जाते हैं और मृत्यु के बाद दिखलाई नहीं पड़ते। इस तरह जलने से न तो धातुओं का नाश होता है और न इनके कारण शरीर पर किसी प्रकार का दाग़ या व्रणवस्तु (Scar) ही रह जाता है।

---

1 Burns. 2 Scalds.

(२) द्वितीयावस्थाः—

इसमें त्वचा पर तीव्र प्रदाह और स्फोट उत्पन्न हो जाते हैं जिनका कारण लपट, क्वथनांक पर के द्रव अथवा जल के क्वथनांक से अधिक तापक्रम वाले ठोस पदार्थों का शरीर पर स्पर्श होना है। स्फोट तीव्र क्षोभक और स्फोटोत्पादक पदार्थों द्वारा भी उत्पन्न हो जाते हैं। इस अवस्था में त्वचा कृष्ण वर्ण की हो जाती है और केश झुलस जाते हैं, किन्तु इनके कारण किसी प्रकार के चिह्न या दाग अवशेष नहीं रहते फिर भी त्वचा में कुछ वैवर्ण्य पाया जा सकता है।

(३) तृतीयावस्थाः—इसमें उपत्वचा (Cuticle) तथा त्वचा के ऊपरी कुछ भाग का नाश होता है। व्रणरोपण के बाद व्रणवस्तु बनती है परन्तु स्थान में संकोच (Contraction) नहीं होता। इस अवस्था में त्वचागत नाड़ियों को क्षति पहुंचने से तीव्र पीडा और दाह होता है।

(४) चतुर्थावस्थाः—

इसमें सम्पूर्ण त्वचा नष्ट हो जाती है। इसके ऊपर पीत-कपिल वर्ण की कुथित धातु बन जाती है जो कि ४ से ६ दिन में पृथक् हो जाती हैं और एक व्रण-युक्त सतह रह जाती है जो कि धीरे धीरे अच्छी होती है।

व्रणरोपण के बाद उस स्थान में कड़ी व्रणवस्तु बन जाने से वहाँ पर स्थानिक विकृति (Deformity) उत्पन्न हो जाती है।

(५) पंचमावस्थाः—

इसमें मांसधरा कला (Deep fascia) और पेशियाँ नष्ट हो जाती जिसके कारण अति गंभीर तथा विस्तृत व्रणवस्तु के बनने के कारण अत्यधिक स्थानिक विकृति उत्पन्न होती है।

(६) षष्ठावस्थाः—

इसमें अस्थियों तक के सब भाग जल जाते हैं। प्रायः तत्काल मृत्यु होजाती है।

जलने के प्रभावः—

यह निम्नलिखित ६ बातों पर निर्भर है:—

(१) ताप की मात्राः—

यदि प्रयुक्त ताप की मात्रा अत्यधिक है, तो प्रभाव तीव्रतम होगा।

(२) जलने का समयः—

यदि अधिक समय तक ताप का सतत प्रयोग किया जाय, तब भी प्रभाव तीव्र होता है।

(३) ताप से प्रभावित स्थान का विस्तारः—

शरीर का $\frac{1}{2}$ से $\frac{2}{3}$ भाग जल जाने पर प्रायः मृत्यु हो जाती है।

(४) जलने का स्थानः—

मध्य शरीर के दाह चाहे वे त्वचा में ही क्यों न स्थित हों, हाथ और पैरों के दाह की अपेक्षा अधिक भयंकर होते हैं। जननेन्द्रिय और उदर के नीचे के भाग में जलने पर प्रायः मृत्यु हो जाती है।

(५) व्यक्ति की आयुः—

बच्चों में दाह अधिक भयंकर होता है। वृद्ध पुरुष दाह को विशेष रूप से सहन कर सकते हैं।

(६) लिङ्गः—

पुरुषों में स्त्रियों की अपेक्षा दाह की सहन-शक्ति अधिक होती है।

मृत्यु के कारणः—

(१) अवसादकी अवस्थाः—

बहुत ज्यादा जल जाने पर तीव्र पीड़ा के कारण नाड़ी-संस्थान में स्तब्धता उत्पन्न हो जाती है। फल-स्वरूप नाड़ी—मन्द और त्वचा—शीतल और पीत वर्ण की हो जाती है। तदनन्तर हृदयावसाद होकर मृत्यु हो जाती है। इसमें तत्काल या २४ घण्टे के अन्दर मृत्यु होती है।

(२) दम घुटनाः—

जब मकानादि में आग लग जाती है, तब पदार्थों के जलने से उत्पन्न धुयें और कार्बन डाय ऑक्साइड तथा कार्बन मॉनॉक्साइड ग्यासेस के कारण दम घुटकर मृत्यु हो जाती है।

(३) आकस्मिक दुर्घटनाः—

आग लग जाने पर भागते समय दीवार आदि से टकरा जाने के कारण आघात होकर मृत्यु हो सकती है।

(४) शोथः—

आभ्यन्तरिक अङ्गों में शोथ, जैसे मस्तिष्कावरण-शोथ, उदरावरण-शोथ, श्वास-प्रणाली शोथ, न्यूमोनिया और प्ल्यूरिसी आदि होकर मृत्यु हो सकती है।

(५) व्रण शोष (Exhaustion):—

दग्ध स्थान से कुछ सप्ताह अथवा मास तक पूय-स्राव होने के कारण शारीरिक क्लान्ति के कारण मृत्यु हो जाती है ।

(६) विसर्प, धनुर्वात आदि उपद्रवों के कारण मृत्यु हो सकती है ।

मृत्यु-कालः—

प्रायः ७ दिनमें मृत्यु हो जाती है । दम घुटने आदि के कारण २४ से ४८ घण्टे में मृत्यु हो जाती है किन्तु पूयोत्पत्ति होने की अवस्था में ५ या ६ सप्ताह में मृत्यु हो सकती है ।

मृत्यूत्तर रूपः—

(क) बाह्यः—

यह जलाने वाली वस्तु के अनुसार भिन्न २ हो सकते हैं ।

१. विकीर्णित ताप से जलने पर त्वचा श्वेत वर्ण की हो जाती है ।

२. ज्वाला के कारण केश झुलस जाते हैं और त्वचा कृष्ण वर्ण की हो जाती है ।

३. पिघली हुई धातु या बहुत ज्यादा गरम किये हुये ठोस पदार्थ के थोड़ी देर तक शरीर के सम्पर्क में आने पर केवल फफोला पड़ जाता है ।

४. बारूद की लपट लगने से त्वचा कृष्ण वर्ण की हो जाती है ।

५. मिट्टी के तेल से जलने पर उसमें तेल की गन्ध आती है और सम्पर्क में आने वाले भाग पर करखा लग जाने के कारण कृष्ण वर्ण हो जाता है ।

६. क्वथित जल अथवा वाष्प के कारण फफोले पड़ जाते हैं । और त्वचा ठिठुर जाती है जिसका रंग धुँधला-सफेद होता है ।

७. जब शरीर को उच्चतम ताप में रक्खा जाता है तो वह कड़ा पड़ जाता है, ऊर्ध्व और अधः शाखायें संकुचित हो जाती हैं । इसका कारण अलब्यूमिन का जमना है ।

८. एक्स-किरण से जलने पर त्वचा रक्तिमायुक्त हो जाती है ।

९. दाहक पदार्थों में जले हुवे स्थान का रंग सब जगह एक सा होता है और उसके बाद जो चिह्न या दाग रह जाते हैं, वे कोमल होते हैं, और उनमें कुछ नमी होती है । इसके कारण न तो छाले पड़ते हैं और न केश ही झुलसते हैं ।

१०. खनिज अम्लों से वस्त्र और त्वचा पर वैवर्ण्य उत्पन्न हो जाता है।

(ख) आभ्यन्तरिक—

१. अत्यधिक ताप से कपालास्थियों का अस्थि भग्न हो जाता है या वे फूट जाती हैं।

२. यदि मृत्यु का कारण दम घुटना है तो श्वास नलिका और श्वासप्रणाली में कृष्ण वर्ण का झाग पाया जा सकता है।

३. फुफ्फुस—रक्तिमायुक्त और संकुचित होते हैं।

४. फुफ्फुसावरण—रक्तिमायुक्त तथा शोथ युक्त होते हैं।

५. रक्त—गहरे लाल रंग का होता है (दम घुटने से हुई मृत्यु में)

६. औदरीय अवयव—रक्तिमायुक्त होते हैं।

७. ग्रहणी—में व्रण पाया जाता है। यह स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा अधिक मिलता है।

मृत्यु से पूर्व और मृत्यु के पश्चात् उत्पन्न दग्धव्रणों में भेद।

मृत्यु से पूर्व	मृत्यु के पश्चात्
१ जले हुये स्थान के चारो ओर स्थायी रूप से रक्तिमायुक्त रेखा बन जाती है।	१. इस प्रकार की कोई रेखा नहीं होती।
२. जलने से जो फफोला पड़ता है, उसमें क्लोराइड्स और अलब्यूमिन मिश्रित द्रव भरा रहता है। फफोले का तल रक्त वर्ण का और शोथयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त उसके चारो ओर की त्वचा चमकीले रक्त वर्ण की अथवा ताम्र वर्ण की होती है।	२. इसमें जो फफोला पड़ता है, उसके अंदर केवल वायु होती है, क्लोराइड्स नहीं होते किन्तु उसमें कुछ अलब्यूमिन पायी जा सकती है। फफोले का तल कड़ा, शृङ्गवत् और पीत वर्णका होता है।
३. इसमें रुह्यमाण अवस्था के चिह्न शोथ, पूय आदि पाये जायेंगे।	३. इसमें जला हुआ स्थान धुधला श्वेत वर्णका होता है और स्लेटी रंग के त्वगीय ग्रन्थियों के छोटे छोटे छिद्र दिखलाई देते हैं।

जलने के समय का निर्णय :—

निम्नलिखित बातों को देख कर जलने के समय का निर्णय किया जाता है :—

१. तत्काल अथवा दो या तीन घंटे के अंदर जलने के स्थान पर रक्तिमा मालूम होती है और फफोला पड़ जाता है।

२. २ या ३ दिन के अन्दर पूय उत्पन्न हो जाती है, ३६ घंटे से पूर्व ऐसा नहीं हो सकता।

३. रोहण धातु (Granulation) का बनना, कुथित धातु (Sloughs) का बनना तथा व्रण-रोपण के बाद व्रणवस्तु से स्थान में विकृति इत्यादि परिवर्तनों को देखकर समय का अनुमान हो सकता है।

स्वकृत परकृत अथवा दुर्घटना जन्य दग्धव्रण में निर्णय :—

(क) स्वकृत :—यह बहुत कम देखने में आता है। निम्नलिखित परिस्थितियों में ऐसा होता भी है :—

१. निर्धनता—अविवाहिता युवतियाँ दहेज आदि की कुरीतियों के कारण माता-पिता को कष्ट में देखकर अपने वस्त्रों पर मिट्टी का तेल छिड़क कर प्राणान्त कर लेती हैं।

२. निराशा—कभी कभी युवतियाँ अपने प्रेमी को न पाने पर निराश होकर ऐसा कर बैठती हैं।

३. कभी कभी दूसरों पर असत्य दोषारोपण के हेतु कुछ धूर्त अपने ही शरीर के किसी भाग को जलाकर न्यायालय में मामला पेश कर देते हैं।

(ख) परकृत :—

१. भारतवर्ष में यह अधिकता के साथ देखने में आता है। व्यभिचारिणी युवतियों को दण्ड देने के लिये घर की अन्य स्त्रियाँ गरम-गरम चिमटे आदि से दाग़ देती हैं।

२. डाकू और लुटेरे गरम गरम लोहे की चीजों जैसे तावा, चिमटा आदि का भय दिखला कर धन का पता पूछते हैं और न बतलाने पर उन्हें दाग़ देते हैं।

(ग) दुर्घटनाजन्य :—स्त्रियों और बच्चों में अधिकता से देखने में आता है क्योंकि प्रायः वे ढीले वस्त्रों को पहन कर जलते हुये चूल्हे अथवा अँगीठी आदि के पास बैठते हैं जिससे उनके वस्त्रों में आग लग जाती है और उसके फल-स्वरूप मृत्यु तक हो सकती है।

विद्युत्पात[1]

विद्युत्पात में वर्षा, तूफान आदि का सदैव इतिहास मिलेगा। इससे प्रायः आकस्मिक मृत्यु होती है।

लक्षण:--

प्रायः अवसाद के कारण सद्यः मृत्यु हो जाती है। किन्तु यदि रोगी बच जाता है तो दाह (Burns) और पिच्चित क्षत (Lacerations) के प्रभाव से कालान्तर में कुछ दिवस अथवा सप्ताह के बाद मृत्यु होती है। यदि रोगी बच जाता है, तो निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं :—

१. शिरोभ्रम।
२. शिरःशूल।
३. कर्णनाद।
४. स्मरण—शक्ति का नाश।
५. पक्षाघात।
६. आक्षेप--धनुर्वात की भाँति।
७. हृद्--रोग।
८. बधिरता।
९. अन्धत्व।

मृत्यूत्तर रूप—

(क) बाह्यः—

१. पिच्चित अभिघात या क्षत आदि पाये जा सकते हैं।
२. अस्थिभग्न हो सकता है।
३. केश—झुलसे हुए पाये जायेंगे।
४. वस्त्र फटे हुये हो सकते हैं।
५. जूते आदि जले हुये मिलेंगे।
६. धातवीय वस्तुयें—पिघली हुई होंगी।
७. फौलाद की वस्तुओं में चुम्बकत्व आ जाता है।

(ख) आभ्यन्तरिक :—

१. मस्तिष्क के ऊपर अत्यधिक रक्तस्राव होता है।

---

1. Lightning.

२. रक्त—तरलावस्था में मिलेगा ।

३. रक्तवाहिनियाँ—विदीर्ण होंगी ।

४. आभ्यन्तरिक अवयवों में विदार मिलेंगे ।

विद्युत्-स्पर्श[1]

विद्युत-स्पर्श से मृत्यु आकस्मिक होती है ।

मृत्यु के कारण :—

१. अवसाद ।

२. हृदय का अकस्मात् रुक जाना ।

३. श्वास-क्रिया के अवयवों का पक्षाघात ।

चिकित्सा: —

१. रोगी को उष्णता पहुँचानी चाहिये । एतदर्थ उष्ण परिषेक, उष्णोदक से भरी बोतलों का प्रयोग आदि उष्णोपचार करना चाहिये ।

२. उत्तेजना पहुँचानी चाहिये । एतदर्थ गरम चाय, काफी आदि को पिलाना चाहिये ।

३. कृत्रिम-श्वास क्रिया करनी चाहिये ।

४. शिराव्यध के द्वारा रक्तमोक्षण करना चाहिये ।

मृत्यूत्तर रूप :—

(क) बाह्य :—

१. सम्पर्क में आने वाले भागों का जलना ।

२. व्रणोत्पत्ति ।

३. धातवीय वस्तुओं का पिघलना ।

४. फौलाद की बनी हुई वस्तुओं में चुम्बकत्व पाया जाना ।

(ख) आभ्यन्तरिक :—

१. आभ्यन्तरिक अंगों में रक्तिमा पायी जायगी ।

२. फुफ्फुसावरण और हृदयावरण में रक्त की छोटी छोटी बुन्दियाँ (Tardieu's spots) पायी जाती हैं ।

---

1. Electricity

दसवाँ अध्याय

नपुंसकता[1] और बन्ध्यात्व[2] की परीक्षा

(१) नपुंसकता—

मैथुन--सम्पादन क्रिया में अयोग्यता का होना नपुंसकता कहलाता है ।

(२) बन्ध्यात्व—

सन्तानोत्पत्ति में अयोग्यता का होना बन्ध्यात्व कहलाता है ।

इनका प्रश्न निम्नलिखित अवस्थाओं में उठता है :—

१. विवाह (Marriage)
२. बलात्कार (Rape)
३. व्यभिचार (Adultery)
४. तलाक़ (Divorce)
५. धन-सम्बन्धी मामले (Inheritance)

पुरुषों में नपुंसकता के कारण:—

(१) बाल्यावस्था: –

१. भारतवर्ष में ७ वर्ष तक की आयु के बालक बलात्कार न कर सकने के कारण दण्डित नहीं किये जा सकते ।
२. ७ वर्ष से १२ वर्ष तक की आयु वाले बालकों के सम्बन्ध में न्यायालय निर्णय करता है ।
३. १४ वर्ष की आयु से पूर्व बलात्कार किया जा सकता है किन्तु सन्तानोत्पत्ति इससे पूर्व नहीं की जा सकती ।

(२) वृद्धावस्था :—

यह नपुंसकता और वन्ध्यात्व दोनों का कारण हो सकता है किन्तु १०० वर्ष की आयु में भी सन्तानोत्पत्ति देखी गई है ।

---

1. Impotency, 2. Sterility.

(३) विकृतिः—

केवल निम्नलिखित परिस्थितियों को छोड़कर नपुंसकता या बन्ध्यात्व का सम्पूर्ण कारण इसको नहीं बतलाया जा सकता हैः—

१. शिश्न की पूर्ण अनुपस्थिति ।

२. दोनों वृषणग्रंथियों (Testicles) की अनुपस्थिति ।

(४) व्याधियाँः--

निम्नलिखित व्याधियों के कारण नपुंसकता हो सकती हैः--

स्थानिक व्याधियाँ ।	सर्वाङ्गिक व्याधियाँ ।
१. श्लीपद २. अतिप्रवृद्ध हायड्रोसील } अस्थायी नपुंसकता	१. राजयक्ष्मा २. मधुमेह } अस्थायी
३. वृषणग्रंथियों के चिरकालीन रोग —स्थायी	३. मस्तिष्क और सुषुम्ना पर आघात ।
	४. अर्धांगवात
	५. सुषुम्ना के रोग ।
	६. मद्य, अहिफेन, भांग, तमालपत्र आदि विषों का अत्यधिक सेवन ।

(५) मानसिक कारणः—

अत्यधिक भय, क्रोध आदि—अस्थायी नपुंसकता ।

(६) औषधिः—

मद्य--अस्थायी ।

स्त्रियों में बन्ध्यात्व का कारणः--

(१) बाल्यावस्थाः--

मासिक-धर्म प्रायः १२ वर्ष की आयु से आरम्भ हो जाता है ।

(२) अधिक आयुः--

प्रायः ५० वर्ष की आयु तक मासिक धर्म होता है ।

(३) विकृतिः--

१. योनि की पूर्ण अनुपस्थिति ।

२. गर्भाशय या डिंबग्रन्थि की अनुपस्थिति—असाध्य बन्ध्यात्व ।

(४) व्याधियाँ:—

१. योनि में अत्यधिक क्षोभ ।

२. मूलाधार पीठ का विदीर्ण होना ।

३. डिंबग्रंथियों के रोग ।

४. गर्भाशय या योनि से अम्लीय स्राव होना ।

५. गर्भाशयस्थान-भ्रंश होना ।

६. योनि-मलाशयिक भगन्दर (Recto-Vaginal fistula)

७. बीजवाहिनियों में अवरोध (Obstruction)

(५) मानसिक कारण:—

क्रोध, घृणा, भय आदि से—अस्थायी बन्ध्यात्व ।

कौमार्य[1] की परीक्षा

व्याख्य :—

'कौमार्य' स्त्री की उस अवस्था को कहते हैं जिसके साथ कभी व्यवाय न किया गया हो ।

इसका प्रश्न निम्नलिखित अवस्थाओं में उठता है:—

१. विवाह ।

२. बलात्कार ।

३. तलाक़

४. अनैतिक व्यवहार की दुष्कीर्ति[2] ।

कौमार्य के लक्ष :—

१. स्तन:—अर्धचन्द्राकार, भरे हुये और स्थिति-स्थापक होते हैं ।

२. चूचुक:—छोटे और नुकीले होते हैं ।

३. योनिच्छद:—विदीर्ण नहीं होता ।

४. भगशिश्निका:—बढ़ी हुई नहीं होती ।

५. लघुभगोष्ठ:—गुलाबी रंग का, स्थिति-स्थापक और पास-पास स्थित होता है ।

---

1. Virginity 2, Defamation,

६. मूलाधार पीठ पुरा होता है ।

७. बृहत्-भगोष्ठः--

१. गोलाकार और उभरा हुआ होता है ।

२. पास-पास स्थित होता है ।

३. योनि–छिद्र--बृहत् भगोष्ठ से पूर्णतया ढका रहता है और जाँघों के फैलाने पर भी नहीं फैलता ।

८. योनिमार्गः--

१. योनिमार्ग संकुचित होता है जिसमें एक लम्बा छिद्र होता है ।

२. योनि-मार्ग की श्लैष्मिक कला--झुर्रीदार और गुलाबी रंग की होती है ।

९. पूर्व सन्तानोत्पत्ति के चिह्न—नहीं मिलते ।

योनिच्छद (Hymen)—

इससे योनि-छिद्र ढका रहता है और बच्चों में प्रायः उठा हुआ होता है । प्रायः प्रथम व्यवाय के समय यह फट जाता है ।

व्यवाय के पश्चात् योनिच्छद में होने वाले परिवर्तनः—

प्रायः मैथुन से योनिच्छद एक या अनेक स्थानों पर फट जाता है किन्तु ऐसा सदैव नहीं होता । फटे हुये किनारों के व्रण प्रायः ७ दिन में अच्छे हो जाते हैं ।

योनि—मार्ग के संकुचित होने तथा योनिच्छद के अक्षत होने के कारण बालिकाओं में यदि बलात्कार के लिये प्रयत्न किया गया होगा तो योनिच्छद फटा हुआ मिलेगा । बाल्यावस्था में योनिच्छद योनिमार्ग में अधिक गहराई में स्थित होता है । इस कारण बाल्यावस्था में बलात्कार का प्रयत्न होने पर भी योनिच्छद नहीं फटता ।

योनिच्छद का फटनाः—

व्यवाय के अतिरिक्त निम्नलिखित कारणों से भी योनिच्छद फट सकता है:—

१. बाह्य पदार्थ जैसे छड़ी, शलाका, डण्डे, बेंत आदि के योनि में प्रवेश करने से ।

२. नुकीली वस्तुओं पर योनि के बल गिर पड़ने से ।

३. डिप्थीरिया (Diptheria) के कारण उत्पन्न हुये व्रणों से ।

४. शल्य–कर्म से ।

गर्भिण्यवस्था (Pregnancy)।

विशिष्ट स्त्री 'गर्भिणी' है या नहीं यह प्रश्न न्यायालयों में निम्न अवस्थाओं में उत्पन्न होता है:—

१. यदि किसी स्त्री को फाँसीकी सजा दी जाने की घोषणा कर दी जाये और वह स्त्री गर्भवती हो, तो जब तक गर्भ का जन्म न हो जाय तब तक उसे फाँसी अथवा अन्य कोई कठिन दण्ड नहीं दिया सकता।

२. यदि कोई व्यक्ति सम्पत्ति छोड़कर मृत्यु को प्राप्त हो जाय और उसके कोई सन्तान न हो तो उस अवस्था में सम्भव है कि उसकी स्त्री गर्भवती हो अथवा किसी दूसरे के हाथ में सम्पत्ति न जाने देने के लिये वह स्त्री गर्भवती होने का बहाना भी कर सकती है, ऐसी परिस्थिति में उस स्त्री की सम्यक्तया परीक्षा करनी चाहिये कि यह बात कहाँ तक सत्य है।

३. रेल आदि की दुर्घटना के कारण जब किसी स्त्री के पति की मृत्यु हो जाय और वह विधवा स्त्री हर्जाने के रूप में अधिक धन माँगती हो।

४. तलाक के मामले में जब कि स्त्री अपने को गर्भवती बतलाती हो।

५. पति से दूर रहकर जब उसकी स्त्री गर्भवती हो जाय और वह व्यक्ति तलाक देना चाहता हो।

६. जब किसी अविवाहित स्त्री अथवा विधवा पर गर्भवती होने का सन्देह किया जाय।

७. कृत्रिम अवैधानिक गर्भपात का प्रयत्न करने पर।

८. विधवा अथवा अविवाहिता स्त्री का गर्भवती हो जाने पर लज्जा और अपमान से बचने के हेतु आत्महत्या के लिये प्रयत्न करने पर।

गर्भिणी-लक्षण तथा चिह्न (Signs of Pregnancy)।

गर्भिणी में संक्षेप में निम्न लक्षण तथा चिह्न मिलते हैं। इनको सुविधा के लिये दो भागों में विभाजित किया जाता है:—

(अ) गर्भिणीस्वसंवेद्य लक्षण (Subjective Symptoms)।

(ब) प्रत्यक्ष चिह्न (Objective Signs)।

(अ) गर्भिणी–स्वसंवेद्य लक्षण (Subjective Symptoms):—

१. आर्तवादर्शन (Cessation of Menses)। यह गर्भ-धारण के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी हो सकता है।

२. प्रातर्वान्ति (Morning Sickness):—यह २ रे महीने से ४ थे महीने के अन्त तक अधिक होता है। इसके भी अन्य कारण हो सकते हैं।

३. दौर्हृद, विबन्ध या प्रवाहिका, अतिसार इत्यादि, ये प्रारम्भिक लक्षण भी अन्य अनेक कारणों से हो सकते हैं।

४. गर्भ--गति प्रतीति (Guickeing):—गर्भिणी को गर्भाशय में गर्भावयवों की गति का ज्ञान होने लगता है। यह गर्भिण्यवस्था के १४ से १८ वें सप्ताह तक प्रतीत होने लगता है।

(ब) प्रत्यक्ष चिह्न (Objective Signs):—

१. आंखों के पलकों के नीचे तथा अन्य स्थानों पर कृष्णवर्ण (Pigimentation) का होना।

२. स्तनों में होने वाले परिवर्तन।

३. उदर-परीक्षा :—

(अ) गर्भाशय की मासानुमासिक-वृद्धि के अनुसार गर्भिणी के उदर की मास--सापेक्षिक वृद्धि।

(ब) बीच बीच में होने वाले 'गर्भाशय के संकोच' (Intermittent Uterine Contractions):—

ये उदरस्पर्श परीक्षा द्वारा ४ थे महीने के बाद प्रतीत होते हैं।

(क) गर्भाशय-धमनीगतध्वनि (Uterine Souffle) यह श्रवण-यंत्र से ४ थे महीने के अन्त से सुनाई देते हैं।

(ड) गर्भ--गति-प्रतीति (Foetal Movements):–उदरस्पर्श-परीक्षा में गर्भावयवों की गति की प्रतीति ६ ठे महीने से होने लगती है।

(च) गर्भशरीर–प्रतीति (External Ballotment):—४ थे महीने के बाद ७ वे महीने तक गर्भाशयस्थित गर्भ को उदर पर एकपार्श्व में स्थित हाथ से ढकेलने से दूसरे पार्श्व में स्थित हाथ को गर्भावयव की प्रतीति होती है।

(छ) गर्भहृत्स्पन्द सुनना:—५ वें महीने से उदर पर श्रवणयन्त्र से गर्भ-
हृत्स्पन्द सुनाई देने लगते हैं।

४ बाह्य जननेन्द्रिय-परीक्षा :—

(अ) भगोष्ठ तथा योनिमार्ग की शिराओं में रक्ताधिक्य तथा विस्फार होने से ये भाग नीले रंग के होते हैं। (Bluing of Vulva & Vagina)।

(ब) गर्भाशय ग्रीवा (Higan's Signs):--यह चिह्न पहिले महीने से ही स्पष्ट होता है इस कारण यह निश्चयात्मक चिह्न माना जाता है। इसमें गर्भाशय ग्रीवा मृदु हो जाती है (Softening) तथा ग्रीवा के ऊपर खींचे जाने से ग्रीवा लम्बाई में कम दिखाई देती है और ग्रीवा-मुख वर्तुलाकृति होता है (Apparant Shortening)।

५. पैर—कभी कभी पैरों में शोथ भी मिलता है।

६. एक्स--किरण द्वारा परीक्षा:—यह ४ थे महीने के बाद में सहायक होता है।

शव में पूर्व गर्भिण्यवस्था के चिह्न।
(Signs of Pregnancy in Dead)।

प्रत्यक्ष परीक्षा में जीवित अवस्था में मिलने वाले चिह्नों में से कुछ चिह्न।

१. गर्भाशय में डिंब या गर्भ की उपस्थिति।

२. गर्भाशय के आकार में वृद्धि।

३. डिंबग्रन्थि में पीतांग (Corpus Luteum) की उपस्थिति।

प्रसव (Delivery)।

विशिष्ट स्त्री में 'प्रसव हुआ है या नहीं' ? यह प्रश्न निम्न अवस्थाओं में उपस्थित होता है:—

१. गर्भस्राव या गर्भपात (Abortion)।

२. नवप्रसूत बालक की हत्या (Infanticide)।

३. प्रसव को छिपाने का प्रयत्न (Concealment of birth)।

४. प्रसव का बहाना करना (Feigned delivery)।

५. किसी बालक के विषय में मातृत्व या पितृत्व का प्रश्न (Legitimacy)
६. ऐसे आघात जिनसे 'प्रसव' होने की आशंका या दोष लगाया गया हो (Libel action)।

प्रसव के लक्षण तथा चिह्न (Sign of delivery)।

(अ) जीवित अवस्था में नवप्रसूता के चिह्न—

१. सामान्य मानसिक अस्वास्थ्य ।
२. गर्भाशय में संकोचों की उपस्थिति (After paine dus to Intermittent Contractions)
३. स्तनों के परिवर्तन ।
४. गर्भाशय में परिवर्तनः—प्रसव के बाद दूसरे दिन कठिन क्रिकेट बॉल के समान उदर में प्रतीति होती है और उदर में लगभग १४ दिन तक ऐसी प्रतीति हो सकती है ।
५. उदरः—पेशियाँ ढीली और उन पर गर्भिरयवस्था के कारण उत्पन्न 'श्वेत रेखाएँ' मिलती हैं ।

६. बाह्यजननेन्द्रियः—भगोष्ठ-फूले हुए तथा शोथयुक्त उनमें क्षत भी मिल सकते हैं । योनिमार्ग चौड़ा और पेशियाँ ढीली मिलती हैं । गर्भाशय-ग्रीवा विस्तृत तथा ग्रीवामुख २ अंगुल विस्तृत मिलता है । गर्भोदक स्राव (Lochia) प्रथम ३–४ दिनों में काले रक्तवर्ण का, बाद में ३–४ दिन में लसीकामिश्रित किंचित् लालवर्ण का तथा ८ वे या ९वे दिन के बाद लगभग २ से ३ सप्ताह तक पीलिमा युक्त श्वेत वर्ण का स्राव होता है ।

(ब) जीवित अवस्था में 'चिरप्रसूता' के चिह्न (Sgins of Remote delivery in Living):—

स्त्री के स्तन तथा उदर की परीक्षा तथा बाह्य जननेन्द्रियों में योनिच्छद, योनिमार्ग, गर्भाशय-ग्रीवामुख इत्यादि की परीक्षा करने पर विशिष्ट स्त्री में कभी गर्भिरयवस्था तथा प्रसव होने के चिह्न मिल सकते हैं ।

(क) मृतावस्था में 'नवप्रसूता' के चिह्नः—

गर्भाशय तथा अन्य आभ्यन्तरिक अंगों की परीक्षा करने से निम्न चिह्न दिखाई देते हैं—

१. गर्भाशय का आकार, लंबाई तथा चौड़ाई को देखना।
२. गर्भिण्यवस्था की गर्भाशयिक श्लैष्मिक कला (Decidua) की परीक्षा करना।
३. गर्भाशय के भीतर 'अपरा' का स्थान।
४. डिंबग्रन्थियाँ तथा डिंबप्रणालियों में रक्ताधिक्य होता है।
५. डिंबग्रंथि में 'पीतांग' की उपस्थिति।

(ङ) मृतावस्था में चिरप्रसूता के चिह्न:—

गर्भाशय तथा अन्य जननेन्द्रियों की परीक्षा करने से सहायता मिलती है।

ग्यारहवाँ अध्याय

बलात्कार (Rape)

परिभाषा:—

किसी पुरुष का, १३ वर्ष से कम आयु वाली स्त्री अथवा १४ वर्ष से कम आयुवाली किसी अन्य बालिका के साथ सम्भोग करना बलात्कार कहलाता है। अपनी स्त्री को छोड़कर १४ वर्ष से ऊपर की आयु वाली किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के विरुद्ध, उसकी स्वतन्त्रता से दी गई स्वीकृति के बिना अथवा अन्याय पूर्ण रीतियों से स्वीकृति लेकर सम्भोग करना भी बलात्कार कहलाता है।

बलात्कार करते समय चाहे वीर्य निकले या न निकले, केवल भग के अन्दर शिश्न का प्रवेश या प्रवेश के लिये प्रयत्न मात्र ही बलात्कार समझा जाता है।

निम्नलिखित अवस्थाओं में स्त्री की स्वीकृति मान्य नहीं समझी जाती:—

१. यदि स्त्री किसी बात को यथार्थ में न समझती हो, जैसे कुछ लोगों का यह अन्ध विश्वास है कि कुमारी के साथ सम्भोग करने से पूयमेह और उपदंश व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

२. यदि स्त्री मस्तिष्कजन्य विकृति अथवा विषप्रयोग के कारण जिस कार्य के लिये वह स्वीकृति दे, उसकी प्रकृति और परिणाम को समझने से असमर्थ हो।

३. यदि उसको मृत्यु आदि का भय दिखलाकर उसकी स्वीकृति प्राप्त की गई हो।

४. यदि स्त्री को उन्माद हो गया हो और उसके साथ सम्भोग करने वाला व्यक्ति यह जानता हो कि उस स्त्री को उन्माद है।

५. यदि स्त्री 'स्वीकृति देने की आयु' से कम उम्र वाली हो।

स्वीकृति देने की आयु :—

भारतवर्ष में १४ वर्ष को आयु पूर्ण करने के पश्चात् स्त्री सम्भोग के लिये स्वीकृति दे सकती है और वह स्वीकृति मान्य होती है।

पुरुष की परीक्षा :—

पुरुष की परीक्षा करने से पूर्व उसकी लिखित स्वीकृति ले लेनी चाहिये और स्वीकृति लेने से पहले उसे यह बतला देना चाहिये कि डाक्टरी–परीक्षा-फल उसके विरुद्ध हो सकता है।

परीक्षा करते समय निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये :—

१. परीक्षा का ठीक ठीक समय, तिथि, मास और वर्ष।

२. व्यक्ति की आयु, उत्पादक अंगों की प्रगल्भता और बलात्कार की हुई स्त्री की अपेक्षा पुरुष का शारीरिक बल।

३. वस्त्रों पर कीचड़, रक्त अथवा शुक्र के धब्बे।

४. मुख, हाथ, जाँघ और उत्पादक अङ्गों पर घृष्टव्रण आदि लड़ाई-झगड़े के चिह्नों की उपस्थिति।

५. शुक्रस्राव के कारण गुह्य-प्रदेश के बाल आपस में चिपटे हुये पाये जा सकते हैं।

६. स्त्री के सिरके बाल पुरुष के शरीर पर पाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त स्त्री के गुह्यप्रदेश के बाल पुरुष के शिश्न, अण्डकोष अथवा उनके आस-पास कहीं पर पाये जा सकते हैं।

७. पूयमेह अथवा उपदंश के चिह्न पाये जायेंगे। एतदर्थ इन रोगों के सम्प्राप्ति-काल[1] तक प्रतीक्षा करनी चाहिये और तब स्त्री की परीक्षा करनी चाहिये।

८. **घटना**—स्थल का भी निरीक्षण करना चाहिये। वहां पर रक्त के धब्बे, फटे हुये वस्त्रों के टुकड़े, जमीन पर शारीरिक चिह्न अथवा उस स्थान की घास दबी हुई पायी जा सकती है।

स्त्री की परीक्षा :—

स्त्री की परीक्षा करने से पूर्व स्त्री को इस मामले को स्वयं बतला देना चाहिये। इस बीच में उससे किसी भी प्रकार का कोई प्रश्न नहीं करना चाहिये। परीक्षा करने से पूर्व यदि स्त्री नाबालिग़ हो तो उसके पिता अथवा संरक्षक की स्वीकृति और यदि वह बालिग़ हो तो उसकी लिखित स्वीकृति ले लेना अनिवार्य होता है। स्वीकृति के बिना स्त्री की परीक्षा करना कानून की दृष्टि से अपराध है। चिकित्सक को स्त्री के वस्त्रों को नहीं उतारना चाहिये अपितु स्त्री से कहना चाहिये कि वह अपने वस्त्रों को उतार दे।

परीक्षा करते समय तिथि, स्थान और ठीक-ठीक समय देखकर निम्न-लिखित क्रम से कार्यारम्भ करना चाहिये :—

(१) वस्त्र:—यदि स्त्री उन्हीं वस्त्रों को पहने हुये हो जिन्हें कि बलात्कार के समय पहने हुये थी तो उन वस्त्रों की सम्यक्तया परीक्षा करनी चाहिये। उनमें शुक्र अथवा रक्त के धब्बे पाये जा सकते हैं। शुक्र के धब्बे प्रायः आगे की ओर और रक्तके धब्बे प्रायः पीछे की ओर होते हैं। इसके अतिरिक्त वस्त्र फटे हुये अथवा कीचड़ से सने हुये भी पाये जा सकते हैं।

(२) मुख, हाथ, पैर, छाती और पीठ पर लड़ाई-झगड़े के कारण–घृष्टव्रण आदि के चिह्न पाये जायेंगे। इस प्रकार के चिह्न युवतियों में अधिक पाये जाते हैं क्योंकि वे अपनी रक्षा के लिये पूर्ण यत्न करती हैं। बालिकाओं में लड़ाई-झगड़े के चिह्न बहुत कम मिलते हैं क्योंकि वे अपनी रक्षा ठीक प्रकार से नहीं कर सकतीं। कभी कभी किसी व्यक्ति पर असत्य दोषारोपण करने के लिये युवतियाँ अपने शरीर पर स्वयं इस प्रकार के चिह्न बना लेती हैं, अतएव ये चिह्न स्वकृत हैं अथवा परकृत—इसको भी मालूम करना चाहिये।

---

1 **Incubation period.**

इन चिह्नों के अतिरिक्त एक विशेष बात यह भी है कि स्त्री को चलने में कष्ट होता है और मल-त्याग अथवा मूत्र-विसर्जन के समय पीड़ा होती है ।

(३) बाह्यजननेन्द्रियाँ :— बलात्कार के मामले में जननेन्द्रिय की परीक्षा करते समय स्त्री को ठीक से लिटा कर उसकी जाँघों को अच्छी तरह फैलाकर रखना चाहिये । परीक्षा के समय पर्याप्त प्रकाश का होना भी अपेक्षित है । इसमें निम्न लिखित बातों को ध्यानपूर्वक देखना चाहिये :—

१. यदि भगसंधानिका के ऊपरी बाल शुक की उपस्थिति के कारण आपस में चिपट गये हों तो कुछ बालों को काट कर शुकाणु की उपस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के हेतु परीक्षण के लिये सुरक्षित रखना चाहिये ।

२. उत्पादक अङ्गों पर अथवा उसके आस-पास शुष्क अथवा आर्द्र रक्त पाया जा सकता है । यदि योनि पर आघात न हो तो योनि से प्रायः बहुत कम रक्त-स्राव होता है । यह रक्तस्राव आर्तव-शोणित (Menstrual blood) के कारण भी हो सकता है अथवा किसी व्यक्ति पर असत्य दोषारोपण के उद्देश्य से स्त्री अपने उत्पादक अङ्गों और वस्त्रों को रक्त से गीली कर सकती है ।

३. बाह्य जननेन्द्रियों पर रक्तिमा, शोथ, घृष्टव्रण और पिच्चितक्षत पाये जा सकते हैं ।

४. कुमारी बालिकाओं में पूर्ण सम्भोग करने के परिणाम स्वरूप योनिच्छद प्रायः उधड़ जाती है और फटकर उसके कई एक टुकड़े हो जाते हैं जिनके किनारे रक्तिमायुक्त, शोथयुक्त और पीड़ायुक्त होते हैं । बलात्कार के एक या दो दिन के बाद परीक्षा करने पर जब योनिच्छद को स्पर्श किया जाता है तो उसमें से रक्तस्राव होने लगता है । ये फटे हुये टुकड़े ५ या ६ दिन में अच्छे हो जाते हैं और ८ या १० दिन में संकुचित होकर तन्तुओं के नन्हें नन्हें कणों की तरह मालूम पड़ते हैं । कभी कभी सम्भोग करने पर योनिच्छद पूर्णतया नष्ट हो जाती है । यदि योनिच्छद अपनी वास्तविक अवस्था में हो और उसमें उधड़न न हो तब योनि-छिद्र के विस्फार की ओर ध्यान देना चाहिये । यदि योनि-छिद्र बहुत बड़ा हो तो योनिच्छद के बिना फटे हुये भी स्त्री के साथ सम्भोग किया जा सकता है । छोटी छोटी बालिकाओं में बलात्कार से प्रायः

योनिच्छद विदीर्ण नहीं होता अपितु उसमें रक्तिमा और शोथ उत्पन्न हो जाते हैं। मैथुन-कर्म की अभ्यस्त सयानी विवाहित स्त्रियों की बाह्य जननेन्द्रियों, मूलाधार पीठ, उदर, जाँघ, हाथ और ग्रीवा पर खुरचने और छिलने के चिह्न पाये जा सकते हैं।

५. योनि में एक काँच की शलाका प्रवेश कर के योनिगत श्लैष्मिक स्राव को प्राप्त करना चाहिये। तदनन्तर उसमें शुक्राणु की उपस्थिति की जाँच करनी चाहिये। यदि उसमें शुक्राणु उपस्थित हों तो यह बालिकाओं और कुमारियों में बलात्कार किये जाने का एक ठोस प्रमाण है किन्तु सयानी विवाहित स्त्रियों के योनिगत श्लैष्मिक स्राव में शुक्राणु के उपस्थित होने पर यह आवश्यक नहीं है कि उनके साथ बलात्कार ही किया गया हो किन्तु यह पूर्वसम्भोग किये जाने का प्रमाण है।

६. उपदंश और पूयमेह के संक्रमण के चिह्नों को भी देखना चाहिये।

व्यवहारायुर्वेदसम्बन्धी महत्त्वः—

१. स्त्री की पूर्ण चेतनावस्था में कोई भी व्यक्ति बिना किसी सहायता के पूर्ण सम्भोग नहीं कर सकता। यदि पुरुष स्त्री की अपेक्षा सबल हो और दूसरे लोग बलात्कार करते समय अधिक काल तक न जान पायें तो पुरुष स्त्री के साथ भली प्रकार मैथुन कर सकता है।

२. क—कुमारी के साथ उसकी स्वाभाविक निद्रा के समय पूर्ण सम्भोग करना असम्भव है क्योंकि प्रथम बार मैथुन करने से उत्पन्न हुई पीड़ा के कारण वह अवश्य जाग जायेगी।

ख—भग के अन्दर शिश्न का प्रवेश कुमारी को बिना जगाये हुये किया जा सकता है।

ग—जिस स्त्री के साथ पहले भी बहुत बार मैथुन किया जा चुका हो अर्थात् जो मैथुन की अभ्यस्त हो, उसके साथ बिना उसके जगे ही सम्भोग किया जा सकता है।

३. स्त्री की अचेतनावस्था में बलात्कार किया जा सकता है।

४. बलात्कार से गर्भ—धारण हो सकती है।

५. बलात्कार के परिणामस्वरूप मृत्यु भी हो सकती है:—

यदि पुरुष, जिसका शिश्न बहुत बड़ा हो—किसी ऐसी स्त्री के साथ जिसकी योनि, योनिनलिका, आदि बहुत तंग हों, बलपूर्वक बलात्कार करे तो स्त्री के अंगों के उधड़ जाने के परिणाम स्वरूप रक्तस्राव और स्तब्धता होकर मृत्यु हो सकती है।

किसी ऐक ही स्त्री के साथ बहुत से व्यक्तियों के बार बार मैथुन करने से अवसाद के परिणाम स्वरूप प्रायः मृत्यु हो जाती है।

पुरुष की आयु:—

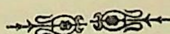
किस आयु तक कोई व्यक्ति बलात्कार करने में असमर्थ होता है इसकी कोई सीमित आयु भारतीय कानून में नहीं मानी गयी है। एतदर्थ इङ्गलैण्ड के कानून में १४ वर्ष से कम आयु को सीमा निर्धारित की गई है। भारतवर्ष में किसी भी आयु के व्यक्ति को बलात्कार के सिद्ध हो जाने पर न्यायालय द्वारा दण्ड दिया जा सकता है।

स्त्री की आयु:—

किसी भी आयु की स्त्री के साथ बलात्कार किया जा सकता है। किन्तु कुमारी बालिकाओं के साथ बलात्कार होते हुये अधिक देखा जाता है, इसके दो कारण हैं:—

१. बहुत से लोगों का यह अन्ध विश्वास है कि पूयमेह और उपदंश व्याधियाँ कुमारी के साथ सम्भोग करने से दूर हो जाती हैं लेकिन वास्तव में यह बात असत्य है।

२. बालिकाओं में अपनी रक्षा करने की शक्ति नहीं होती, यदि होती भी है तो बहुत कम।



बारहवाँ अध्याय

अस्वाभाविक मैथुन-सम्बन्धी अभियोग

इन्डियन पेनेल कोड की धारा ३७७ में उन अभियोगों का, जो कि प्रकृति के नियम के विरुद्ध किसी पुरुष, स्त्री अथवा पशु के साथ शारीरिक मैथुन से सम्बन्ध रखते हैं, वर्णन मिलता है। शारीरिक मैथुन का अभियोग लगाने के लिये केवल शिश्न का प्रवेश मात्र ही पर्याप्त है।

अस्वाभाविक मैथुन के प्रकार:—

१. **गुदमैथुन** (Sodomy)।

२. **हस्तमैथुन** (Masturbation)।

३. **एक स्त्री का दूसरी स्त्री के साथ मैथुन** (Tribadism)।

४. **पशुमैथुन** (Bestiality)।

गुद-मैथुन

किसी पुरुष का पुरुष, स्त्री अथवा बच्चे के साथ गुदा में मैथुन करना गुदमैथुन कहलाता है। यदि स्वीकृति लेकर गुदमैथुन किया गया हो तो इन्डियन पेनेल कोड की धारा ३७७ के अनुसार दोनों को न्यायालय की ओर से दण्ड मिलता है। प्रायः सभी देशों में गुदमैथुन प्रचलित है। इसमें कर्ता और कर्म दोनों के परीक्षा की नितान्त आवश्यकता है। निद्रा की अवस्था में किसी के साथ बिना जगाये हुये गुदमैथुन नहीं किया जा सकता।

गुद-मैथुन के चिह्न :—

जिसके साथ गुदमैथुन किया जाये अर्थात् (Passive agent) में और जो व्यक्ति गुदमैथुन करे अर्थात् कर्त्ता (Active agent) में निम्न-लिखित चिह्न पाये जायेंगे :—

अभ्यस्त कर्म में[1] —

१. नितम्ब से गुदा की ओर कीप की तरह आकृति।

---

1. Habitual passive agent

२. गुदा और उसके समीपस्थ प्रान्त में पूर्व घृष्टव्रण और पिच्चितक्षत के रोपणतन्तुओं का होना।

३. पूयस्राव, फिरंगव्रण (Chancre) अथवा फिरङ्गद्वितीय अवस्था का गुदव्रण (Condyloma), इनकी उपस्थिति।

४. गुदप्रदेश में विकृति।

अनभ्यस्त कर्म में :—

१. गुद-प्रदेश की त्वचा का छिला हुआ अथवा खुरचा हुआ होना।

२. गुदा की आभ्यन्तरिक श्लैष्मिक कला की आकृति त्रिभुजाकार होती है जिसका आधार गुदा की ओर और भुजायें मलाशय की ओर होती हैं।

३. गुदा के आस-पास, मूलाधार पीठ, जांघ और वस्त्रों पर रक्त अथवा उसके धब्बे पाये जा सकते हैं।

४. गुदा में और उसके आस-पास तथा वस्त्रों पर शुक्र अथवा उसके धब्बे पाये जा सकते हैं।

५. यदि गुद-मैथुन बिना स्वीकृति के किया गया हो और कर्म-पुरुष कोई युवक हो तो उसके शरीर पर लड़ाई-झगड़ने के चिह्न मिलेंगे।

६. गुदभ्रंश।

७. पूय-स्राव अथवा उपदंश के व्रण पाये जा सकते हैं।

८. गुदा के आस-पास पुरीषांश हो सकता है।

कर्त्ता में : –

१. शिश्न; भगास्थि-प्रदेश, जाँघ अथवा वस्त्रों पर शुक्र अथवा उसके धब्बे और पुरीषांश पाया जा सकता है।

२. यदि गुदमैथुन बिना स्वीकृति के किया गया हो और कर्म-पुरुष कोई युवक हो तो कर्ता में भी लड़ाई के चिह्न मिलेंगे।

३. यदि कर्ता गुदमैथुन करने का अभ्यस्त हो तो कभी कभी शिश्न साधारण लम्बाई से कुछ अधिक लम्बा होता है, और शिश्न, मुण्ड से कुछ दूरी पर सिकुड़ा हुआ होता है।

हस्त-मैथुन।

न्यायालय की ओर से हस्त-मैथुन करने वाले पुरुषों और स्त्रियों को दण्ड नहीं दिया जाता। यह प्रायः उन व्यक्तियों में पाया जाता है जो कि बहुत समय से मैथुन न कर सके हों और परिणाम-स्वरूप कामेच्छा इतनी प्रबल और भयंकर हो गयी हो कि उन्हें हस्त-मैथुन करने के लिए बाध्य होना पड़ा हो। किन्तु इस प्रकार की आदत सदैव कुसङ्गति और बुरी शिक्षा के कारण ही पड़ती है। स्त्रियों में हस्तमैथुन कम देखा जाता है। चिरकाल से हस्तमैथुन करने वाले व्यक्तियों में निम्नलिखित लक्षण पाये जाते हैं :—

१. मानसिक दौर्बल्य-प्रायः स्मरण और मनन-शक्ति बहुत कम हो जाती है
२. बार बार मूत्र-विसर्जन करना।
३. अण्डों का लटका हुआ होना।
४. शिश्नमुण्ड रक्त वर्ण का हो जाता है।
५. नेत्र—गड्ढों में चले जाते हैं और उनके नीचे का प्रान्त कृष्ण वर्ण की रेखाओं से युक्त होता है।

एक स्त्री का दूसरी स्त्री के साथ मैथुन।

यह मानसिक विकृति का एक रूप है जिसे कि एक स्त्री दूसरे के साथ करती है। इसमें स्त्रियाँ कामेच्छा को बढ़ाने के लिये शारीरिक सम्पर्क के द्वारा जननेन्द्रियों को परस्पर रगड़ती हैं।

पशु-मैथुन।

मनुष्य के द्वारा पशुओं के विरुद्ध लिङ्ग के साथ मैथुन करने को पशुमैथुन या तिर्यग्योनिगमन कहते हैं। एतदर्थ कुत्ता, बिल्ली, गाय, गधी, घोड़ी, बकरी इत्यादि पशुओं का अधिक उपयोग किया जाता है।

पशु-मैथुन के चिह्न :—

पशु में :—

१. योनिनलिका में मानव-शुक्राणु की उपस्थिति।
२. जननेन्द्रियों में उधड़न—कभी कभी।
३. रक्तस्राव—कभी कभी।

मनुष्य में :—

१. पशु के बाल मनुष्य के शरीर अथवा वस्त्रों पर पाये जा सकते हैं। ये बाल विशेषतया पशु के जननेन्द्रिय के होते हैं।

तेरहवां अध्याय

गर्भपात[1] और भ्रूणहत्या[2]

गर्भपात

व्यवहारायुर्वेद में गर्भधारणजन्य पदार्थ—भ्रूण अथवा गर्भ समय से पूर्व गर्भाशय से शारीरिक कारणों से निकल जाने को या कृत्रिमरीतया निकाल देने को 'गर्भपात' कहते हैं। किन्तु चिकित्साशाखा में गर्भिण्यवस्था को अवस्था के अनुसार इसके लिये तीन शब्दों का प्रयोग किया जाता है:—गर्भस्राव, गर्भपात और अपूर्ण-गर्भप्रसव।

गर्भस्राव (Abortion) :—

गर्भिण्यवस्था के प्रथम तीन मास में अपरा के बनने से पूर्व गर्भ का बाहर निकलना 'गर्भस्राव' कहलाता है।

गर्भपात (Miscarrage) :—

गर्भिण्यवस्था के चौथे और सातवें मास के बीच में जीवित रहने योग्य अवस्था (Stage of viability) तक पहुँचने से पूर्व गर्भ का बाहर निकलना 'गर्भपात' कहलाता है।

अपूर्ण-गर्भप्रसव (Premature delivery) :—

गर्भिण्यवस्था के आठवें और नवें महीनों में जीवित रहने योग्य (Viable) होने के बाद किन्तु पूर्णतया प्रगल्भ (Mature) होने से पूर्व शिशु का बाहर निकलना अपूर्ण-गर्भप्रसव कहलाता है।

---

1. Miscarriage. 2. Foeticide.

गर्भधारण की कोई भी अवस्था हो अथवा भ्रूण की आयु चाहे जितनी हो, व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से—"माता की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति से, प्रकृति-विरुद्ध, अन्यायपूर्वक गर्भधारणजन्य पदार्थ को बलात् गर्भाशय से बाहर निकलना 'गर्भपात' कहा जाता है।"

भ्रूणहत्या।

गर्भ के उत्पन्न होने से पूर्व अन्याय से गर्भ के जीवन को नष्ट कर देना भ्रूणहत्या या गर्भहत्या कहलाता है।

१. **प्राकृतिक गर्भपात** (Natural)।

२. **कृत्रिम गर्भपात** (Artificial)।

१—प्राकृतिक गर्भपात :—

यह अधिकतर गर्भावस्था के प्रारम्भिक महीनों में हुआ करता है। इसके कारण माता अथवा भ्रूण से सम्बन्धित हैं।

मातृसम्बन्धी कारण :—

पाण्डु, कामला, जीर्ण ब्राइट्स डिज़ीज, हृदय और फुफ्फुस के रोग, प्लेग, इन्फ्लूएन्ज़ा, विषमज्वर, विसूचिका, उपदंश, मसूरिका, गर्भाशय के रोग, तीव्र आघात और पेट पर पेटी आदि का कसना, मानसिक व्याधियाँ जैसे आकस्मिक स्तब्धता, भय, शोक, उत्तेजना आदि।

गर्भसम्बन्धी कारण :—

(१) गर्भ की मृत्यु।

(२) भ्रूण अथवा गर्भ के रोग तथा गर्भाशयीय श्लैष्मिक कला के रोग और अपरा-शोथ तथा अपरा में मेदापक्रान्ति।

२—कृत्रिम गर्भपात:—

(क) न्याय्य गर्भपात

१. माता के जीवन की रक्षा के लिये यदि गर्भपात कराया जाय।

(ख) अनैतिक गर्भपात।

१. गर्भधारण के समय किसी भी अवस्था में गर्भाशय से मैथुनजन्य पदार्थ को यदि अन्याय से बाहर निकाला जाय।

(क) न्याय्य गर्भपात	(ख) अनैतिक गर्भपात
२. यदि गर्भपात के विशेषज्ञ चिकित्सक की सलाह पर ही गर्भपात कराया जाय तो वह व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से दण्ड का भागी नहीं होगा ।	२. स्त्री सगर्भा है या नहीं, इसे ध्यान में रखते हुये गर्भपात या गर्भस्राव कराना या उसके लिये यत्न करना व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से दण्डनीय है । किन्तु यदि माता के जीवन की रक्षा के लिये ऐसा किया जाता है, तो वह दण्ड का भागी नहीं होगा ।
३. यदि स्त्री और उसके पति अथवा संरक्षक की स्वीकृति पर ही गर्भपात कराया जाय ।	

अनैतिक गर्भपात के कारण :—

१. कानून के विरुद्ध सम्भोग करने के कारण अविवाहिता अथवा विधवा स्त्री का सगर्भा हो जाना ।

२. कानून के विरुद्ध सम्भोग करने के कारण विवाहिता स्त्री का अपने पति से पृथक् रहकर सगर्भा हो जाना ।

३. पैतृक-निर्धनता ।

४. धनसम्बन्धी मामले ।

व्यवहारायुर्वेदसम्बन्धी महत्त्व :—

१. स्त्री सगर्भा थी या नहीं ? वास्तविक गर्भपात में इसके जानने की आवश्यकता पड़ती है ।

२. स्त्री को गर्भस्पन्दन (Quickening) का ज्ञान हो चुका था या नहीं ? यदि ज्ञान हो चुका था तो दण्ड अधिक होगा ।

३. गर्भपात अथवा गर्भपात के लिये प्रयत्न स्त्री की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति से किया गया ? क्योंकि यदि स्त्री की स्वीकृति लेकर गर्भपात किया गया होगा तो दण्ड कम हो जायेगा ।

४. क्या गर्भपात अथवा गर्भपात के प्रयत्न से स्त्री की मृत्यु हुई है ?

५. क्या शिशु की मृत्यु का कारण उसकी उत्पत्ति से पूर्व उसको मार डालने की क्रिया है ?

गर्भपात का प्रमाण :—

गर्भपात की सिद्धि के लिये सावधानी के साथ खोज करने की आवश्यकता है। इसमें निम्नलिखित बातें देखनी चाहिये :—

१. स्त्री, जिसका गर्भपात हुआ हो उसकी परीक्षा।

२. गर्भपात में गर्भाशय से निकले हुये पदार्थ की परीक्षा।

३. गर्भपात कराने के तथाकथित साधन की परीक्षा।

१. स्त्री की परीक्षा :—

जीवितावस्था में :—

स्त्री में नवप्रसूता के चिह्न पाये जायेंगे। ये गर्भधारणा की अवस्था और प्रसव के बाद परीक्षा के पूर्व तक के समय के अनुसार होते हैं :—

(क) इतिहास :—

१. जिस स्त्री का गर्भपात हुआ, उसका बयान।

२. गर्भपात से पूर्व उस स्त्री के स्वास्थ्य का विवरण।

३. गर्भपात का स्वीकृत कारण।

४. पूर्व-गर्भपात का इतिहास आदि।

(ख) जननेन्द्रियों की परीक्षा :—

इसका कारण अप्राकृतिक साधनों के द्वारा बलात् प्रसव कराना है। इसमें बाह्य जननेन्द्रिय-शोथयुक्त, विदीर्ण अथवा स्रावयुक्त हो सकते हैं। गर्भाशय विस्फारित होता है।

(ग) उदरपरीक्षा :—

१. औदरीय भित्ति ढीली पड़ जाती है।

२. श्वेत रेखायें स्पष्टतया दिखलाई देती हैं।

३. भगास्थि से नाभि तक एक काली रेखा दिखलाई पड़ती है (Linea nigra)।

(घ) स्तनों की परीक्षा :—

१. स्तन पूर्ण और उभरे हुये होते हैं।

२. चूचुक को दबाने पर दूध निकलता है।

३. चूचुक के चारों ओर का मण्डल स्पष्टतया मालूम होता है।

नवप्रसूता स्त्री में जब तक अधिकांश चिह्न न पाये जाँय तब तक कुछ निश्चयात्मक रूप से सम्मति नहीं दी जा सकती है क्योंकि उनमें से कई एक गर्भाशय अथवा डिम्बग्रन्थियों के रोगों से उत्पन्न हो सकते हैं। नवप्रसूता के चिह्न प्रायः ८ या १० दिन में लुप्त हो जाते हैं।

(ङ) गर्भपात में प्रयुक्त साधन के अवशिष्ट चिह्नों के लिये परीक्षा :—

१. उदर पर खरोंचन, आदि।

२. जननेन्द्रियों के क्षत।

३. योनिमार्ग में बाह्य वस्तुओं की उपस्थिति।

मृतावस्था में :—

(क) प्रयुक्त साधन के प्रभाव और चिह्न :—

१. बाह्य वस्तु के प्रयोग के कारण उत्पन्न आभ्यन्तरिक व्रण।

२. गर्भाशय में बाह्य वस्तु का उपस्थित होना।

३. आमाशय, पक्वाशय, आँत आदि में विष की उपस्थिति।

(ख) नवप्रसूता के चिह्न :—

१. गर्भाशय :—इसका आकार, गर्भिण्यवस्था के मास सापेक्षिक होगा। यदि ९ या १० महीने के बाद प्रसव हुआ है तो प्रसव होने के एक या दो दिन बाद परीक्षा करने पर :—

गर्भाशय की लम्बाई ७ से ८ इञ्च।
,, चौड़ाई ४ इञ्च।
,, का भार $1\frac{1}{2}$ पौंड।

प्रसव के १५ दिन बाद परीक्षा करने पर :—

गर्भाशय की लम्बाई	५ इञ्च
,, का भार	$\frac{३}{४}$ पौंड

यदि ५ मास में प्रसव हुआ हो, तो प्रसव के तत्काल बाद परीक्षा करने पर:—

गर्भाशय की लम्बाई	५ इञ्च
,, चौड़ाई	३$\frac{३}{४}$ इञ्च

प्रसव के १४ दिन बाद परीक्षा करने पर :—

गर्भाशय की लम्बाई	४$\frac{१}{२}$ इञ्च
,, चौड़ाई	२$\frac{३}{४}$ इञ्च

गर्भाशय में आभ्यन्तरिक परिवर्तन :—

९ या १० मास में प्रसव होने की अवस्था में कुछ घण्टे के अन्दर परीक्षा करने पर गर्भाशय के अन्दर निम्नलिखित परिवर्तन पाये जायेंगे :—

१. गर्भाशय के अन्दर रक्तमिश्रित तरल पदार्थ मिलेगा।

२. गर्भाशय का आभ्यन्तरिक तल बहुत गहरे रङ्ग का—प्रायः कृष्ण वर्ण का होगा।

३. अपराधजन्य गर्भपात में कभी कभी गर्भाशय के अन्दर बेंत, छड़ी अथवा डण्डा पाया जाता है।

———

चौदहवां अध्याय

नवजात बालककी हत्या

(Infanticide)

परिभाषा :—

कानून के अनुसार जन्म के बाद १५ दिन तक बालक को 'नवजात' (Newly born child) कहा जाता है। उत्पन्न होने के समय से लेकर १५ दिन तक के अन्दर उसके जीवन को नष्ट कर देना 'नवजात बालक की हत्या' या 'शिशुहत्या' कहलाता है। कानून में इसे परहत्या ही माना जाता है और इसमें इण्डियन पेनल कोड की धारा ३०२ के अनुसार अपराधी को दण्ड दिया जाता है। भारतवर्ष में शिशु के शरीर का कोई भी भाग माता के शरीर से बाहर निकल आने पर यदि शिशु को मार डाला जाय तो उसे शिशुहत्या ही समझा जाता है।

शिशु-हत्या के कारण :—

१. अविवाहिता स्त्रियाँ जब दुराचार के कारण शिशु को जन्म देती हैं, त लज्जा और अपमान से अपनी रक्षा करने के लिये शिशुहत्या कर डालती हैं।

२. इसी प्रकार विधवा स्त्रियाँ भी जिनको पुनः व्याह करने से रोका जाता है, जब दुराचार के कारण शिशु को जन्म देती हैं तो लज्जा और अपमान के भय से शिशुहत्या करती हैं।

३. कभी कभी विवाहिता स्त्रियाँ भी, जब वे अपने पतिसे पृथक् रहकर दुराचार के कारण शिशु को जन्म देती हैं, तब वे उत्पन्न हुये शिशु की हत्या कर डालती हैं।

४. दहेज की प्रथा के कारण कुछ लोग अपनी लड़कियों की शादी करने में असमर्थ होते हैं, अतः इस बड़े खर्चे को सहन न कर सकने के कारण वे उत्पन्न हुई बालिकाओं का प्राणान्त कर देते हैं।

व्यवहारायुर्वेद-सम्बन्धी प्रश्न :—

जन्म के समय प्रत्येक बालक को 'मृत–उत्पन्न' (Dead born) माना जाता है, जब तक चिकित्सा शास्त्र के ज्ञान द्वारा या अन्य प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध न किया जाय कि बालक 'जीवित उत्पन्न' हुआ था। 'नवजात बालक की हत्या' का अपराध सिद्ध होने के लिये निम्न दो बातें सिद्ध करनी पड़ती हैं :—

१. बालक जन्म के समय जीवित था ?

२. जन्म के बाद किसी आघात या अन्य उपायों से उसकी हत्या की गयी है। 'नवजात बालक की मृत्यु' के प्रश्न के विषय में चिकित्सक को निम्न बातों की परीक्षा करते हुए निर्णय देना पड़ता है।

(क) उस मृत बालक के तथाकथित माता की 'नवप्रसूता' के लक्षणों के लिये परीक्षा करना।

(ख) बालक के विषय में निम्न प्रश्नों का निर्णय करना पड़ता है :—

१. क्या बालक निश्चल प्रसूत (Still born) था या मृत गर्भप्रसव (Dead birth) हुआ था ?

२. क्या बालक जन्म के समय जीवित था ?

३. यदि बालक जीवित था तो उसके बाद कितने समय या दिन तक जीवित था ?

४. मृत्यु का कारण क्या था ?

१. क्या बालक 'निश्चल प्रसूत' (Still born) अथवा 'मृत प्रसूत' (Dead birth) था ?

निश्चल प्रसूतगर्भ (Still born child) :—

जो गर्भधारण होनेके २८ वें सप्ताह के बाद उत्पन्न हुआ हो और जिसमें माता से पूर्ण स्वतन्त्र होने के बाद जीवन के चिह्न जैसे श्वास–क्रिया आदि कभी दिखलाई न पड़े हों, वह 'निश्चल प्रसूतगर्भ' कहलाता है।

मृतगर्भप्रसव :—

जिस शिशु की गर्भाशय में ही मृत्यु हो गयी हो, उसे मृतगर्भ प्रसूत कहते हैं। माता से पूर्ण स्वतन्त्र होने के बाद इसमें गर्भाशय में मृत्यु होकर कुछ समय व्यतीत होने के कारण निम्नलिखित चिह्नों में से एक या अधिक पाया जा सकता है :—

(क) उत्पत्ति के समय 'प्रसव-पूर्व मृत्यूत्तर संकोच' (Anti-Partum rigor mortis) के चिह्न।

(ख) गर्भक्रोथ (Maceration) के चिह्न-मृतगर्भ गर्भोदक में कुछ दिनों तक पड़ा रहने पर तथा गर्भाशय में बाह्य हवा का प्रवेश न हो तब इस अवस्था में गर्भ में यह परिवर्तन होता है। इसमें गर्भ का शरीर ढीला और मृदु होता है इसके अतिरिक्त इसमें एक प्रकार की मीठी मीठी अरुचिकर गन्ध भी होती है जो कि सड़न से उत्पन्न हुई दुर्गन्धि से बिल्कुल भिन्न होती है। इसमें त्वचा रक्तिमायुक्त अथवा ताम्र वर्ण की हो जाती है; जब कि कोथ में त्वचा हरित वर्ण की होती है। फुफ्फुस तथा गर्भाशय को छोड़कर अन्य अंगों को पहचानना कठिन होता है।

(क) गर्भ-शोष (Mummification) के चिह्न :—गर्भाशय में गर्भोदक तथा गर्भ में रक्त की कमी के होते हुए गर्भाशय में बाह्य हवा का प्रवेश न हो तो गर्भाशय में गर्भ शुष्क हो जाता है।

(२) क्या बालक जीवित उत्पन्न हुआ था ?

(१) बालक के हृदय की धड़कन स्पर्श, श्रवण या दर्शन से प्रतीत करना तथा बालक का रोना सुनना जीवित उत्पत्ति के सामान्य लक्षण माने जा सकते हैं। परन्तु कभी २ योनि में गर्भ का कुछ भाग होते हुए भी बाह्य हवाके संपर्क-से गर्भ में श्वास प्रश्वास जारी होकर बालक रो सकता है, परन्तु पूर्ण प्रसव होने के पूर्व ही उसकी मृत्यु होना सम्भव है। कभी २ कमजोर, अपूर्ण प्रसूत बालक जीवित उत्पन्न होने पर भी रोता नहीं। इन कारणों से फौजदारी न्यायालयों में उपर्युक्त प्रमाणों को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता।

(२) श्वास-प्रश्वास की क्रिया जारी होने के मृत्यूत्तर चिह्न :—फौजदारी न्यायालयों में चिकित्सक को मृत बालक की मृत्यूत्तर परीक्षा करते हुए यह प्रमाण देना पड़ता है कि बालक के शरीर में प्रसवोत्तर जीवित रहने के कुछ चिह्न दिखाई देते हैं या नहीं। मृत्यूत्तर परीक्षा में मृत बालक में श्वास-प्रश्वास क्रिया प्रसवोत्तर जारी होने के चिह्न मिले तो यह निश्चित माना जा सकता है कि बालक जन्मोत्तर कुछ समय तक जीवित था। प्रसवोत्तर श्वास-प्रश्वास क्रिया

जारी होने के चिह्न विशेषतया वक्ष, फुफ्फुस, महाप्राचीरा आमाशय, अंत्र, वृक्क, मूत्राशय, मध्यकर्ण इत्यादि अवयवों को परीक्षा करने पर मिलते हैं। संक्षेप में ये चिह्न निम्न सारिणी में दिये गये हैं—

परीक्षा	श्वास-प्रश्वास पूर्व	श्वास-प्रश्वास के बाद
१ वक्ष	चपटा	गोलाकृति—फूला हुआ।
२ महाप्राचीरा पेशी की स्थिति	महाप्राचीरा पेशी का सब से ऊपरी भाग चौथी या पांचवो पर्शुका के समतल मिलता हो।	छठी या सातवी पर्शुका के समतल होता हो।
३ फुप्फुस-गत परिवर्तन— (क) आयाम-विस्तार	छोटे, वक्ष के पश्चात् भित्ति से सटे हुए। पृष्ठ-वंश के दोनों पार्श्व में मिलते हैं।	फूल कर लगभग वक्ष-गुहा को घेर लेते हैं।
(ख) स्पर्श से	यकृत् के समान कड़े, दबाने पर शब्द नहीं होता।	मृदु, सूत्रों में संकोच तथा विस्तार का गुण, दबाने पर आवाज होती है।
(ग) रंग	लाल रङ्ग के भूरे, काटने पर फेनरहित लाल रङ्ग का रक्त निकलता है।	जगह २ लाल और श्वेत रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। काटने पर फेन—युक्त रक्त अधिक मात्रा में निकलता है।
(घ) वजन (१) साधारण वजन (Statie Test)	रक्त-नलिकायें तथा श्वास-प्रणाली को बाँधने के बाद फुफ्फुसों को अलग कर के तौलने पर— तौल—४५० से ६०० ग्रेन्स्	६०० से १००० ग्रेन्स्

परीक्षा	श्वास-प्रश्वास के पूर्व	श्वास-प्रश्वास के बाद
(२) शरीर-सापेक्षिक वजन	१ के लिये ७० का प्रमाण मिलता है।	१ के लिये ३५ का प्रमाण हो जाता है।
(३) विशिष्ट गुरुत्व	१०४० से १०५६ फुप्फुस पानी में डूबते हैं।	६४० फुप्फुस पानी में तैरते हैं।
(४) आमाशय तथा अंत्र	१ पानी में डूबते हैं। २ काटने पर चमकता हुआ श्लेष्मा निकलेगा।	१ पानी में तैरते हैं। २ काटने पर श्लेष्मा के साथ २ हवा के बुद्बुद् लाला और कभी २ दूध भी मिल सकता है।
(५) बृक्क तथा मूत्राशय	बृक्क में यूरिक ऍसिड के स्फटिकों की अनुपस्थिति या मूत्राशय में मूत्रका अभाव।	उपस्थित।
(६) मध्यकर्ण	श्वेत चिपचिपे पदार्थ से भरे हुये मिलते हैं।	केवल हवा मिलती है।

(३) यदि शिशु जीवित उत्पन्न हुआ तो कितने समय तक जीवित रहा ?

इसका ठीक ठीक निर्णय करना असम्भव है किन्तु निम्नलिखित बाह्य पर और आभ्यन्तरिक परिवर्तनों पर विचार करने से किसी हद तक अनुमान किया जा सकता है।

१. त्वचा में परिवर्तन :—

नवजात शिशु की त्वचा चमकीले रक्त वर्ण की होती है और उस पर भूरे रङ्ग के पतले बाल (Vernix caseosa) रहते हैं, जो कि ग्रीवा, कुक्षि और वंक्षण पर विशेष रूप से पाये जाते हैं। उत्पत्ति के बाद एक या दो दिन तक

रहते हैं उसके बाद झड़ जाते हैं। उत्पत्ति के दूसरे या तीसरे दिन त्वचा किंचित् कृष्ण वर्ण की हो जाती है, तदनन्तर ईंट की तरह लाल होकर अन्त में पीत वर्ण की हो जाती है। इस प्रकार लगभग सात दिन में त्वचा का प्राकृतिक वर्ण हो जाता है।

२. नाभि-नाडी में परिवर्तन :—

शिशु-उत्पत्ति के समय जब नाडी-छेदन किया जाता है, तब कटे हुये सिरे की ओर से नाभि नाडी में परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। नाडी का वह भाग जो कि गर्भ से नाभि पर जुड़ा रहता है, सिकुड़ने लगता है और २४ घण्टे के अन्दर सूख जाता है। नाभि-नाडी के आधार पर ३६ से ४८ घण्टे के अन्दर रक्त वर्ण का एक छल्ला सा बन जाता है। दूसरे या तीसरे दिन नाडी ठिठुर जाती है और शुष्क (Mummified) होकर पाँचवें या छठे दिन नाडी नाभि से पृथक् हो जाती है तथा वहाँ पर एक व्रण रह जाता है। धीरे धीरे वह व्रण अच्छा होने लगता है और उस व्रण का १० या १२ दिन में रोहण हो जाता है। इस प्रकार से नाड़ी का नाभि से पृथक् हो जाना और नाभि पर बचे हुए व्रण का रोहण होना—'उत्पत्ति के बाद शिशु कुछ काल तक जीवित रहा—' इस बात का विश्वसनीय चिह्न है।

३. रक्तपरिभ्रमण में परिवर्तन :—

सेतु-सिरा[1] (शिरीय नलिका), सेतु-धमनी[2] (धमनीय नलिका), नाभि शिरा और धमनी (Umbilical vessels) तथा शुक्तिच्छिद्र (Foramen ovale)—ये गर्भावस्था में गर्भ के अन्दर रक्तपरिभ्रमण में विशेष भाग लेते हैं, किन्तु शिशु-उत्पत्ति के बाद इनकी आवश्यकता नहीं रहती है। अतएव शिशु-उत्पत्ति के बाद वह कितने समय तक जीवित रहा, इसका निर्णय करने में निम्नलिखित रक्तपरिभ्रमणगत परिवर्तन विशेषरूप से सहायक होते हैं :—

(१) उत्पत्ति के बाद ३ दिन के अन्दर—नाभि-धमनियाँ बन्द हो जाती हैं।

(२) उत्पत्ति के बाद ४ या ५ दिन में—नाभि-सिरा और सेतु-सिरा लुप्त हो जाती हैं।

---

1. Ductus venous, 2. Ductus arteriosus,

(३) ७ से १० दिन के अन्दर—सेतु-धमनी बन्द हो जाती है।

(४) प्रायः ८ से १० दिन के अन्दर—शुक्तिच्छिद्र बन्द हो जाता है।

(४) शिशु की मृत्यु का क्या कारण था ?

शिशु की मृत्यु के निम्न लिखित कारण हो सकते हैं :—

(१) शारीरिक (२) दुर्घटनाजन्य और (३) हत्या के लिये प्रयुक्त उपाय।

(१) शारीरिक कारण :—

१. अप्रगल्भता।

२. शारीरिक दुर्बलता।

३. जन्मजात रोग—गर्भिणी के उपदंश, मसूरिका, प्लेग, विषमज्वर आदि रोग तथा गर्भ के हृदय, फुप्फुस, मस्तिष्क इन अङ्गों के जन्मजात रोग।

४. रक्तस्राव।

५. विकृताकार—राक्षस (विकृत गर्भ) आदि।

६. अपरा के रोग तथा गर्भाशय के अधोभाग स्थित-अपरा।

७. स्वर-यन्त्र में भीतरी श्लेष्मा के कारण या 'थायमस ग्रन्थि' के कारण बाहरी दबाव से स्वर-यन्त्र का आकस्मिक संकोच।

(२) दुर्घटनाजन्य कारण : –

प्रसव के समय :—

१. प्रसव होते समय अधिक विलम्ब का होना।

२. नाभिनाडी-भ्रंश अथवा नाभि-नाडी पर दबाव पड़ना।

३. गर्भोत्पत्ति के समय गर्भ की ग्रीवा में नाभि-नाडी का लिपटा हुआ होना अथवा नाडी में गाँठों का पड़ जाना।

४. आघात—गर्भिणी स्त्री के उदर-प्रदेश में आघातों का लगना अथवा उसका किसी बहुत ऊँचे स्थान से गिर पड़ना।

५. माता की मृत्यु :—प्रसव से पूर्व यदि माता की मृत्यु हो जाय तो शिशु की भी मृत्यु हो सकती है।

प्रसब के बाद :—

१. दम घुटना :—

शिशु की ग्रीवा से ऊपर का समस्त भाग यदि किसी कला से ढका हुआ हो

अथवा किसी अन्य कारण से उसकी नासिका और मुख बन्द हो जाय तो दम घुटने के कारण शिशु की मृत्यु हो सकती है।

१. आकस्मिक प्रसव :—

कभी कभी बहुप्रसवा स्त्रियों में गर्भाशय के अत्यन्त संकुचित हो जाने पर गर्भ अत्यल्प काल में अकस्मात् गर्भाशय से निकल कर शरीर के बाहर चला आता है। इस अवस्था में यदि स्त्री सीधी खड़ी हो तो शिशु जमीन पर गिर पड़ता है और उसके शिर के पुरः, कपाल, पार्श्व कपाल, शंखास्थि आदि का अस्थिभग्न हो जाता है। इस अवस्था में उसके सिर पर मिट्टी, बालू, कीचड़ आदि पाये जा सकते हैं, नाभि-नाडी टूट जाती है और उससे रक्तस्राव होकर शिशु की मृत्यु हो सकती है। यदि स्त्री मल-मूत्र त्याग कर रही हो और उस समय सहसा प्रसव हो जाय तो शिशु मल मूत्र के पात्रों में गिर सकता है और दम घुट कर उसकी मृत्यु हो सकती है।

(३) हत्या के लिये प्रयुक्त उपाय :—

(क) बुद्धिपुरःसर निम्न उपायों द्वारा हत्या करना—

१. दम घोटना।

२. गला घोटना।

३. जल में डुबोना।

४. आघात पहुँचाना।

५. विष देना, आदि।

(ख) जन्मोत्तर बालक को जीवित रखने के लिये जो उपाय आवश्यक हैं उनको हेतुपुरःसर न करना। इनमें प्रसव के समय सुयोग्य नर्स या चिकित्सक की मदत न लेना, प्रसवोत्तर बालक की सेवा में ध्यान न देना, नाभिनाडि को काट कर उसको ठीक तरह न बांधना, बालक को माता के प्रसवोत्तर स्रावों से अलग न करना तथा बालक के लिये ऋतुके अनुसार योग्य आहार तथा वस्त्रों का प्रबन्ध न करना इत्यादि बालक को स्वस्थ तथा जीवित रखने के लिये आवश्यक बातों का अन्तर्भाव होता है।

———

पन्द्रहवाँ अध्याय

मानस रोग (Insanity)

पर्याय नाम:—उन्माद, (Lunacy, Madness, Mental derangement, Mental disorder, Mental aberration, or Mental Alienation)।

व्याख्या:—मानस रोगको पूर्ण और स्पष्ट व्याख्या करना कठिन है, क्योंकि किसी भी प्रकार का 'मानसिक अस्वास्थ्य' (Un-Soundness of Mind) जिसके कारण विशिष्ट व्यक्ति वर्तमान सामाजिक और नैतिक नियमों का उल्लंघन करने को हमेशा प्रवृत्त हो—'मानस रोग' कहा जाता है। इसी कारण मानसिक विकृति का वर्णन करने के लिये उपर्युक्त अनेक पर्यायवाचक शब्दों का प्रयोग किया जाता है।

पारिभाषिक शब्द:—न्यायसंस्था में मानस रोग का विचार करते समय प्राय: निम्न पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इनमें से प्रत्येक से विशिष्ट व्यक्ति के विशिष्ट लक्षण-समूह का निर्देश किया जाता है।

१. डिल्यूजन (Delusion) :—इस में व्यक्ति अपनी ही असत्य भावना या विचार पर अटल रहता है। किसी प्रकार प्रत्यक्ष, अनुमान, युक्ति इत्यादि तर्क-संगत उपायों से उस के विचार बदलना असम्भव होता है। स्वस्थ व्यक्ति में भी डिल्यूजन हो सकता है परन्तु उसमें मस्तिष्क-विकृति न होने से उपर्युक्त उपायों से उसको समझा कर उसके विचार बदल सकते हैं। परन्तु मानसिक विकृति से पीडित व्यक्ति में ऐसा नहीं हो-सकता।

२. इन्द्रियार्थ-ग्रहण में विकृति (Hallucination) :—इसी में विशेषतया पञ्चज्ञानेन्द्रियों के अर्थ-ग्रहण में विकृति हाती है। रूप के अभाव में व्याघ्र आदि का रूप देखना या शब्द न हो तो भी कोई विचित्र शब्द सुनना इसके उदाहरण हैं।

३. अन्यथा ग्रहण (Illusion) :—इस में किसी एक विशिष्ट वस्तु को

दूसरे रूप में मानना या इन्द्रियों से 'अन्यथा ग्रहण' यह विशिष्ट लक्षण होता है। जैसे रज्जु को साँप या अन्धेरे में स्थित पेड़ को भूत मानना।

४. इम्पल्स (Impulse) :—इस में विशिष्ट इच्छा की अत्यन्त दुर्दम्य तीव्रता होने से व्यक्ति पूर्वापर विचार न करता हुआ, विना किसी हेतु के कुछ कार्य करने को उद्युक्त होता है।

५. ऑबसेशन (Obsession) :—इस में व्यक्ति के मन में समय-समय पर कुछ अनिष्ट और अप्राकृतिक विचार आते हैं। जिनको जानते हुए भी व्यक्ति रोक नहीं सकता।

६. स्वस्थावस्था (Lucid interval) :—मानस रोग से पीडित रोगी का मानसिक स्वास्थ्य बीच बीच में ठीक रहता है। इस समय में व्यक्ति अपने कर्तव्याकर्तव्य का भी विचार ठीक कर सकता है तथा वर्तमान सामाजिक तथा नैतिक नियमों के अनुसार व्यवहार करता है। इस समय को 'स्वस्थावस्था' कहते हैं।

मानस रोगों के कारण।

(Causes of Insanity)

मानस रोग के कारण अभ्यास के लिये दो भागों में बाटे जाते हैं। यथा :—

(१) **विप्रकृष्ट कारण** (Predisposing Causes) :—

(क) कुलप्रसक्त प्रकृति (Heridity)।

(ख) विवाह।

(ग) शारीरिक अस्वास्थ्य।

(घ) नैतिक तथा सामान्य शिक्षा का अभाव।

(२) **सन्निकृष्ट कारण** (Exciting Causes) :—

(अ) शारीरिक कारण।

(ब) मानसिक कारण।

१. विप्रकृष्ट कारण :—

(क) कुलप्रसक्त प्रकृति :—यह विशेषतया संभोग के समय माता या पिता के मानसिक अवस्था पर निर्भर करती है। प्रायः माता से आनुवंशिक प्रकृति बनने की प्रवृत्ति देखी जाती है।

(ख) विवाह:—वैवाहिक जीवन का भार बाल्यावस्था में ही शिरपर आने के कारण प्रायः बाल्यावस्था में विवाहित स्त्रियों में मानसिक विकृति अधिक दिखाई देती है। सगोत्र-विवाह (Consanguincous Marriages) में भी आनुवंशिक कुलप्रसक्त प्रकृति बनने की सम्भावना अधिक होती है।

(ग) शारीरिक दौर्बल्य या अस्वास्थ्य:—किसी रोग या परिस्थिति के कारण उत्पन्न शारीरिक दौर्बल्य मानसिक विकृति के लिये सहायक कारण होता है। राजयक्ष्मा, फिरंग, कुष्ठ इत्यादि चिरकारी रोग तथा अन्य तीव्र संक्रामक रोगों से पीडित होना, अस्वास्थ्यकर स्थान में रहना तथा अस्वास्थ्यकर आहार-विहार ये भी शारीरिक प्रतिकार—शक्ति को कम करने के कारण मानस रोगोत्पत्ति के लिये सहायक कारण होते हैं।

(घ) नैतिक तथा सामान्य शिक्षा का अभाव तथा अशिक्षित समाज में रहना इन कारणों में व्यक्ति में सदसद्विवेक बुद्धि तथा आत्मविश्वास तथा गौरव की भावनाएँ उत्पन्न नहीं होतीं। इससे ऐसे व्यक्तियों में मानसिक विकृति होने की सम्भावना अधिक होती है।

२. सन्निकृष्ट कारण:—

(क) शारीरिक कारण:—चिरस्थायी रोगों के कारण अत्यधिक दौर्बल्य, मस्तिष्क पर आघात या मस्तिष्कगत रक्तस्राव ये सामान्य शारीरिक कारण होते हैं। जीवाणु विषमयावस्था या युरीमिया या कॉलीमिया जैसी 'शारीरिक विषमयावस्थाओं के कारण भी अकस्मात् मानसिक विकृति उत्पन्न होती है। मद्य, कोकेन, अफीम, गांजा, भांग इत्यादि नाडीसंस्थान पर प्रभाव करने वाले विषों का अत्यधिक मात्रा में अधिक काल तक सेवन करने से भी अकस्मात् मानसिक विकृति उत्पन्न होती है।

(ख) मानसिक कारण:—राग, द्वेष, प्रेम इत्यादि मनोव्यापारों का अतियोग होने पर भी मनोव्याघात होकर मानस रोगोत्पत्ति होती है।

मानस रोगों के सामान्य लक्षण तथा चिह्न

(Indications of Insanity)

प्रारंभ अकस्मात् या धीरे २ होता है। धीरे २ प्रारंभ होने पर प्रारंभिक अवस्था में अग्निमान्द्य, विबन्ध तथा तीव्र निद्रानाश ये लक्षण दिखाई देते हैं।

साथ २ कभी २ मन्द ज्वर भी होने लगता है। साथ २ मानसिक विकृति-निदर्शक लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं। व्यक्ति का व्यवहार, बोलचाल, रहन-सहन, वस्त्र पहनने का ढंग, स्मरणशक्ति, आत्म-विश्वास इत्यादि मानसिक सद्गुणों में भी विकृति दिखाई देने लगती है। उसके सभी कार्यों में कुछ अप्राकृतिक लक्षण दिखाई देने लगते हैं। व्यक्ति अधिक चिड़चिड़ा और भावनाप्रधान होता है। साथ २ अतत्त्वाभिनिवेश (Delutions) तथा इन्द्रियार्थों का अन्यथा-ग्रहण (Hallucination) में उपद्रव भी होने लगते हैं।

रोगी के कमरे के चारों ओर की परिस्थिति देखने पर भी उसमें कुछ विचित्रता दिखाई देती है।

उपर्युक्त शारीरिक, मानसिक तथा बाह्य परिस्थिति की परीक्षा के साथ २ व्यक्ति की शारीरिक परीक्षा करने पर मानसिक विकृति-निदर्शक कुछ शारीरिक चिह्न या विकृतियों (Stigmata of degeneration) में से एक या अधिक अवश्य मिलते हैं। सिर प्रायः असामान्य अत्यधिक बड़ा या छोटा और विकृत होता है। मुख की आकृति विकृत—नासिका बड़ी या चपटी, कर्णपाली में प्रायः रक्तार्बुद (Haematoma) मिलता है। नेत्रों के तारे असमान होते हैं। दन्तपंक्ति असमान और अधिकतर कृमिदंतक होते हैं।

हाथ या पैरों में प्रायः एक या अधिक अंगुलियाँ अधिक होती हैं। जननेन्द्रियों में भी कभी २ विकृति दिखाई देती है।

उन्माद के भेद।

(Classification of Insanity)

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से मानसरोग के निम्न लिखित भेद होते हैं :—

[१] जन्मजात मानसिक विकृति (Amentia) [२] जातोत्तर मानसिक विकृति (Dementia) [३] तीव्र मानसरोग [४] नाड़ीसंस्थान की विकृतियों से उत्पन्न हुए मानसरोग [५] अन्य रोगों से उत्पन्न मानसरोग।

[१] जन्मजात मानसिक विकृतिः।

इसका कारण मस्तिष्क का ठीक से विकसित न होना है और यह विकार जन्मजात (Congenital) होता है। कभी कभी प्रारम्भिक बाल्यावस्था में विकासावरोध हो जाने से भी ऐसा हो जाता है। इसके चार भेद हैं :—

(क) इडिओसी (Idiocy),

(ख) इम्बेसोलिटी (Imbecility),

(ग) फिबल माइन्डेडनेस (Feeble mindedness)

(क) इडिओसी :—

यह मस्तिष्क के विकास में विकृति उत्पन्न होने से होता है और इसका कारण जन्म से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार के रोगग्रस्त व्यक्ति गन्दो आदतों वाले होते हैं। उन्हें खाने-पीने को कोई चिन्ता नहीं रहती और उनमें स्मरणशक्ति तथा बुद्धि नहीं होती है।

(ख) इम्बेसीलिटी :—

यह 'इडिओसी' और 'फीबल माइन्डेडनेस' के बीच की अवस्था होती है। यद्यपि इस प्रकार के मानसरोग से पीडित व्यक्ति मूर्ख होते हैं, किन्तु फिर भी ये किसी दूसरे व्यक्ति के साथ भली प्रकार वार्तालाप कर सकते हैं और इनमें स्मरणशक्ति भी अच्छी होती है। यदि इनको किसी तरह उकसाया जाय तो ये बड़ी जल्दी क्रोधित हो जाते हैं और आघात, जीवनापहरण इत्यादि अन्य अपराध कर सकते हैं।

(ग) फीबल माइन्डेडनेस :—

यद्यपि इसमें बहुत अधिक मानसिक विकृति नहीं होती है फिर भी ये अपनी वा किसी अन्य व्यक्ति की रक्षा का किंचित् भी ध्यान नहीं रखते और ये अपनी इच्छाओं को रोक नहीं सकते, यहाँ तक कि ये बलात्कार, जीवनापहरण इत्यादि अपराध कर सकते हैं।

(घ) क्रिटीनिज्म :—

प्रारम्भिक बाल्यावस्था में अवटुका ग्रन्थि (Thyroid gland) का ठीक प्रकार से विकास न हो सकने से यह अवस्था उत्पन्न होती है। इनमें अपूर्ण विकास, बौनापन, बुद्धिहीनता और मूर्खता के लक्षण मिलते हैं। इनके चलने की गति में भी विकार होता है।

[२] जातोत्तर मानसिक विकृति
(Dementia)

यह मानसरोग का वह भेद है जिसमें शरीर के पूर्ण विकसित हो जाने के बाद मानसिक अंगों में विकार उत्पन्न हो जाता है । जीवन की किसी भी अवस्था में यह उत्पन्न हो सकता है । इसके निम्न लिखित भेद होते हैं:—

(क) प्रारम्भिक डिमेन्शिश्रा (Primary dementia).

(ख) मानसरोग के कारण उत्पन्न डिमेन्शिश्रा (Secondary dementia).

(ग) वृद्धावस्था की डिमेन्शिश्रा (Senile dementia).

(घ) ऐन्द्रिक डिमेन्शिश्रा (Organic dementia).

(क) प्रारम्भिक डिमेन्शिश्रा :— Primary Dementia

यह प्रायः १५ से ३० वर्ष तक की आयु के बीच के समय में होता है । इसके तीन भेद किये जाते हैं :—

१. पॅरानोइश्रा (Paranoia) २. केटॅटोनिश्रा (Katatonia)

३. हेबिफ्रीनिश्रा (Hebephrenia)

१. पॅरानोइश्रा :—

यह युवा अवस्था के स्त्री और पुरुष दोनों में समानरूप से होता है । रोगी में प्रधानतया मिथ्याज्ञान (Delusions) और मतिभ्रम (Hallucination) के लक्षण मिलते हैं । इसकी दो अवस्थायें हैं :—

१—तीव्रावस्था :—

इसमें रोगी को आमाशयिक व्यथायें प्रारम्भ होती हैं । थोड़ा-बहुत ज्वर रहने लगता है । प्रारम्भ में मानसिक विभ्रम (Meatal confusion) और मेलॅन्कोलिश्रा (Melancholia) की अवस्था रहती है । रोगी को शब्दभ्रम (Hallucination of hearing) मालूम होता है । कर्णध्वनि होती है । रोगी में स्मरणशक्ति बहुत कम रह जाती है और उसे निद्रा नहीं आती । कुछ रोगियों में तीव्रावस्था के बाद धीरे धीरे जीर्णावस्था हो जाती है ।

२—जीर्णावस्था :—

इस अवस्था में रोगी में अनियमित ज्वर, प्रश्वास में दुर्गन्धि, जिह्वा मलावेष्टित, अतीसार, पाण्डु, निद्रानाश, शब्दभ्रम, रसभ्रम, गन्धभ्रम वा अन्य प्रकार के भ्रम जैसे–गिरफ्तार हो जाने का भय इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं ।।

२. केटॅटोनिया :—

यह प्रायः यूरोपीय और एंग्लो--इन्डियन युवकों में होता है। इसमें कुलज-प्रवृत्ति भी पायी जाती है। इसका प्रारम्भ प्रायः धीरे धीरे होता है। रोगी में आलस्य, दुर्बलता, अतीसार, स्मरणशक्ति का नाश, शब्दभ्रम, गिरफ्तार हो जाने का भ्रम, अपने शरीर वा मन पर अधिकार न रहना, अनिद्रा, मलमूत्र का अनैच्छिक उत्सर्ग, विचार-भ्रम और बेचैनी—ये लक्षण देखने में आते हैं। काल्पनिक विद्रोहियों के द्वारा गिरफ्तार हो जाने के भय से रोगी इधर-उधर छिपने का यत्न करता है। कभी कभी भय इतना बढ़ जाता है कि वह आत्महत्या करने को आतुर हो जाता है। रोगी सोते में जाग उठता है और कभी कभी अर्धनिद्रा की अवस्था में रात भर पड़ा रहता है। कभी कभी रोगी बार बार कुछ विशेष शब्दों को ही दुहराता है अर्थात् उसे वरबीगरेशन (Varbigeration) की अवस्था हो जाती है जैसे 'अच्छे तो हो ?' पूछने पर वह स्वयं 'अच्छे तो हो, 'अच्छे तो हो' की रट लगाता है, या यों कहा जा सकता है कि उसमें इकोलेलिआ (Echolalia) के लक्षण पाये जाते हैं।

३. हेबिफ्रीनिआ :—

यह अवस्था अधिकतर युवतियों में मिलती है। उनका विकास रुक जाता है और वे सदैव आलसी की तरह बैठी रहती हैं। इसमें रोगी समाज से तथा अपने मित्रों वा सम्बन्धियों से बहुत दूर रहना चाहता है और उनके साथ बात भी नहीं करता। ऐसे रोगी प्रायः एकान्त में बिना किसी उद्देश्य के ही टहलते हुये दिखलाई पड़ते हैं। कभी तो वे हताश और शान्त मालूम पड़ते हैं और कभी बेचैन और उत्तेजित हो जाते हैं और दुनियाँ भर की इधर-उधर की तमाम बातें करते हैं। इस प्रकार के रोगी अश्लील भाषा का अधिक प्रयोग करते हैं। न्यायद्वारा 'अपराध' समझे जानेवाले कार्यों को करना अधिक पसन्द करते हैं। रूपभ्रम और शब्दभ्रम की अवस्था होती है। रोगी की स्मरण—शक्ति बहुत कम हो जाती है और मन की स्थिरता भी नष्ट हो जाती है। तदनन्तर रोगी 'डिमेन्शिआ' की अवस्था में पहुँच जाता है।

(ख) मानसरोग के कारण उत्पन्न डिमेन्शिआ :— Secondary dementia

रोगी में अनिद्रा, अरुचि, निर्वादता (Apathy), आकस्मिकता, उत्ते-

जना, इत्यादि लक्षण पाये जाते हैं। रोगी परहत्या या आत्महत्या कर बैठता है मानसरोग और स्वस्थावस्था यह क्रम चिरकाल तक चलने से प्रत्येक दौरे के बाद स्थायी मानसिक विकृति रह जाती है इसको सेकन्डरी डिमेन्शिआ कहते हैं।

(ग) वृद्धावस्था की डिमेन्शिआ :— Senial

कभी कभी वृद्धावस्था में शरीर और मस्तिष्क-शक्ति के शनैः शनैः ह्रास के कारण यह अवस्था उत्पन्न होती है। इस प्रकार के रोगी प्रायः सनकी होते हैं। वे हर एक बात को बड़ी जल्दी भूल जाते हैं। किसी भी बात की ओर वे ध्यान नहीं देते। प्रायः हर एक बात में उन्हें सन्देह रहता है और उनमें मतिभ्रम वा अन्य प्रकार के भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। अन्त में वे 'मिलेनकोलिआ' से ग्रसित हो जाते हैं और कभी कभी आत्महत्या तक कर लेते हैं।

(घ) ऐन्द्रिक डिमेन्शिआ :— organic

मस्तिष्क में किसी प्रकार की चोट, वृद्धि, अपस्मार, फोड़ा, जीर्ण एनकेफेलाइटिस (Encephalitis) के कारण होता है। इसमें आघात के अनुसार ही लक्षण होते हैं और उसीके अनुकूल मस्तिष्कीय अवयवों का क्षय वा नाश होता है। इसके अतिरिक्त स्मृति और भाषण-शक्ति का कम होना लक्षण भी उपस्थित रहता है। प्रायः हृदयावसाद या श्रम (Exhaustion) से मृत्यु हो जाती है।

[३] तीव्र मानसरोग।

(Acute Insanities)

कुछ विष ऐसे होते हैं जिनके कारण यह अवस्था उत्पन्न होती है विशेषतया जीवाणुजन्य विष जिस में स्ट्रेप्टोकॉकाई का संक्रमण विशेष कारण माना जाता है। इसके दो भाग किये जाते हैं :—

(क) मॅनिआ (Mania)

(ख) मेलॅन्कोलिआ (Melancholia)

(क) मॅनिआ :—

यह तीन प्रकार की हो सकती है:—१. साधारण २. तीव्र और ३. जीर्ण।

१. साधारण मॅनिआ :—

मानसरोग की यह सबसे साधारण अवस्था है और इसी कारण इस प्रकार के

रोगी का साधारण व्यक्ति से भेद करना बहुत कठिन हो जाता है। वार्तालाप के समय ये एक विषय पर बात करते-करते दूसरे विषय पर लाँघ जाते हैं और इस प्रकार से इनमें स्थिरता नहीं होती। यद्यपि इस प्रकार के रोगी बराबर काम करने में जुटे रहते हैं किन्तु जो काम वे शुरू करते हैं, वह कभी समाप्त नहीं होता। ये प्राय: मद्यपान और विषय-भोग में रत रहते हैं।

२. तीव्र मॅनिआ :—

इस अवस्था से पूर्व रोगी में पूर्वरूप (Prodromal stage) के लक्षण मिलते हैं अर्थात् अनिद्रा, शिर:शूल, बेचैनी, उत्तेजना, साधारण दुर्बलता इत्यादि। जब यह अवस्था और बिगड़ती है तो रोगी में उत्तेजना बढ़ जाती है और वह हर एक वस्तु को नष्ट करने के लिये नाना प्रकार की चेष्टायें करता है; उसके मन में अनेक प्रकार के विचार उठते हैं और उसके प्रत्येक कार्य का आरम्भ आकस्मिक होता है। वह अपने अधिकार से बाहर हो जाता है। कभी हँसता है, कभी गाता है और कभी चिल्लाता है। इन सबका कोई कारण नहीं होता है। वह ये सब कार्य अकारण और बिना किसी उद्देश्य के ही करता है। इस अवस्था में रूप-भ्रम और शब्द-भ्रम या मानसिक विभ्रम भी उपस्थित रहता है। कभी कभी उसे अपनी गिरफ्तारी का बड़ा डर रहता है यहाँ तक कि वह आत्महत्या या परहत्या भी कर डालता है। यह अवस्था कई सप्ताह या महीनों तक रह सकती है, बीच बीच में रोगी की दशा सुधर जाती है और सारे कुलक्षण हट जाते हैं तथा रोगी धीरे धीरे अच्छा हो जाता है और अपनी साधारण स्थिति पर आ जाता है। इसमें पुन: उत्पन्न होने की शंका सदैव रहती है और तब इसकी जीर्णावस्था प्रारम्भ हो जाती है।

३. जीर्ण मॅनिआ :—

इसमें तीव्र मॅनिआ के सभी लक्षण मिलते हैं किन्तु इसका स्वरूप पहले की अपेक्षा कुछ मन्द स्वरूप का होता है यानी लक्षण उतने तीव्र नहीं होते जितने कि तीव्र मॅनिआ में होते हैं। इसमें मतिभ्रम, मानसिक विभ्रम और शिथिलता अवश्य रहती है किन्तु कभी कभी तीव्र उत्तेजना भी उत्पन्न हो जाती है। रोगी की मानसिक शक्ति का धीरे धीरे ह्रास होता जाता है और उसकी स्मरणशक्ति दुर्बल हो जाती है। अन्त में रोगी पूर्ण डिमेन्शिआ की अवस्था में पहुँच जाता है और तब फिर वह असाध्य हो जाता है।

(ख) मेलॅन्कोलिआ :—

यह एक प्रकार की मानसिक उदासी और निराशा है जो कि अधिकतर आलसी युवतियों या वृद्धा स्त्रियों में देखी जाती है। इसके तीन भेद किये जाते हैं :—१. साधारण, २. तीव्र और ३. जीर्ण।

१. साधारण मेलॅन्कोलिआ :—

यह मानसिक उदासी का सबसे साधारण स्वरूप है। रोगी में अनिद्रा, अरुचि और भय के चिह्न वा लक्षण मिलते हैं। उसका किसी काम में मन नहीं लगता, न उसे खेलना अच्छा लगता है और न किसी से बात करना ही भला मालूम देता है। वह एकान्त को अधिक पसन्द करता है। जीवन के सुखों से वह अपना सम्बन्ध तोड़ देता है।

२. तीव्र मेलॅन्कोलिआ :—

इसके लक्षण बहुत स्पष्ट होते हैं। इसका प्रारम्भ धीरे धीरे होता है। शुरू में रोगी को शिरःशूल, अनिद्रा और अग्निमान्द्य रहता है। और छोटी छोटी बातों से भी वह बहुत जल्दी उत्तेजित हो जाता है। मन बहुत उदास रहता है, काम बहुत आलस्य के साथ करता है। खेलने, पढ़ने, काम करने या बात करने में उसका मन नहीं लगता और वह किसी से बोलना नहीं चाहता। वह हर समय एक काल्पनिक खतरे से भयभीत रहता है, वह सोचता है कि उसकी कपालास्थि भग्न हो जायेगी या उसका मस्तिष्क नष्ट हो जायगा, इत्यादि। उसके कानों में ध्वनि होती है, वह सुनता है कि उसे गिरफ्तार किया जायेगा और सजा दी जायगी। अतएव उसमें आत्महत्या की प्रवृत्ति देखी जाती है। कभी कभी वह परहत्या करने का भी यत्न करता है। उसे अपने काल्पनिक शिशुओं के द्वारा, जो कि उसके सम्बन्धी या घनिष्ट मित्रों में से हो सकता है, उससे उसे गिरफ्तार होने का भय रहता है। वह अपनी स्त्री वा बच्चों का प्राणहरण कर सकता है क्योंकि वह सोचता है कि मेरे न रहने पर इनकी बुरी दशा होगी। इस प्रकार के रोगी इधर-उधर घूमते दिखाई पड़ते हैं। इसके बाद उनमें जीर्ण मेलॅन्कोलिआ के लक्षण होने लगते हैं।

३. जीर्णमेलॅन्कोलिआ :—

इसमें रोगी में मानसिक विभ्रम या मतिभ्रम स्थायी रूप से रहता है। मानसिक उदासी रहती है।

[४] नाडीसंस्थान की विकृतियों से उत्पन्न हुए मानस रोग।
(Insanity due to diseaes of Nervous System)

(क) पक्षाघात युक्त म नसरोग (G. P. I.) —

यदि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक होता है। प्रायः ३० से ४५ वर्ष तक की आयु में ही होता है। कुलज या सहज उपदंश के कारण मस्तिष्क और केन्द्रीय नाडीसंस्थान की शक्ति का शनैः शनैः ह्रास होने लगता है और अन्त में पक्षाघात और डिमेन्शिया की अवस्था हो जाती है। प्रारम्भ में प्रायः किसी बात को भूलना, उत्तेजना, बेचैनी और अनुदार चरित्र—ये लक्षण होते हैं। धीरे धीरे रोगी की सम्भाषण-शक्ति कम हो जाती है और उसे बोलने में कष्ट होता है। स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है, मानसिक विभ्रम उत्पन्न हो जाता है, निर्वादता और भोजन, वस्त्र, वा स्वच्छता के प्रति उदासीनता उत्पन्न हो जाती है। बिस्तरे पर ही मल-मूत्र का अनैच्छिक उत्सर्ग हो जाता है और फिर पक्षाघात और डिमेन्शिया की अवस्था हो जाती है। श्रम के कारण मृत्यु हो जाती है।

(ख) अपस्मारजन्य मानस रोग :—

इसका आक्रमण दो प्रकार का होता है :—

१. अपस्मार के पूर्व, और २. अपस्मार के बाद।

१. अपस्मार के पूर्व :—

रोगी को मॅनिआ के दौरे आते हैं। यह अवस्था घंटों और कभी कभी कई दिन तक बनी रहती है। मतिभ्रम और मानसिक विभ्रम हो जाता है। रोगी अपराध कर बैठता है।

२. अपस्मार के बाद :—

अपस्मार के दौरे के बाद रोगी में रूपभ्रम या शब्दभ्रम और गिरफ्तार हो जाने का भ्रम उत्पन्न हो जाता है। यहाँ तक कि रोगी चोरी, बलात्कार, परहत्या वा अन्य अपराध करने लगता है। अपराध अनैच्छिक और स्वतः होते हैं। अपराध करते समय वह उसके विषय में कुछ नहीं जानता और जब वह साधारण अवस्था में आ जाता है तो उन सब कृत्यों को भूल जाता है।

[५] अन्य रोगों से उत्पन्न मानस रोग।

अपस्मार के अतिरिक्त उपदंश, वातरक्त, गलगण्ड, सीस-विष, ब्राइट्स रोग (Bright's disease) या कुछ अन्य रोगों के बाद परिणाम-स्वरूप या

उपद्रव के रूप में मानसिक विकृति उत्पन्न हो जाती है। अतएव रोगी के इतिहास वा पूर्व व्यथा आदि को जानना परमावश्यक है और इन सब बातों का सम्यक्तया पता लगाना चाहिये।

मानसिक विकृति का पैतृक सम्बन्ध :—

मानसिक विकृति में कुलज प्रवृत्ति भी होती है। एक ही वंश में यह लगातार पिता से पुत्र को, पुत्र से पौत्र को—इस क्रम से भी पाया जाता है। अतएव रोगी के वंश का इतिहास जानना बहुत आवश्यक होता है।

मानसरोग--निदान

(Diagnosis of Insanity)

किसी व्यक्ति के विषय में यह सम्मति देना कि वह पागल है या नहीं—बहुत कठिन समस्या है। इसके लिये रोगी को किसी बन्द जगह में कुछ समय के लिये रक्खा जाता है और उसकी आदतों वा गतियों का भली प्रकार निरीक्षण किया जाता है और फिर एक निश्चित सम्मति दी जाती है कि वह पागल है या नहीं। इन सब मामलों में निम्नलिखित बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये :—

(क) रोगी का पारिवारिक इतिहास :—

रोगी के माता, पिता, नाना, नानी, बहिन, भाई, चाचा इत्यादि नजदीक के रिस्तेदारों में मानस रोग से पीडित होने का इतिहास या केवल अपस्मार, योषापस्मार या अन्य मानसिक दौर्बल्य के लक्षणों का इतिहास देखना चाहिये। परिवार में आत्महत्या, परहत्या करने का इतिहास भी देखना चाहिये।

(ख) व्यक्तिगत इतिहास :—

इसमें रोगी से पूछकर उसके विषय में जानकारी प्राप्त करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त उसके मित्रों वा सम्बन्धियों से भी रोगी के व्यक्तिगत इतिहास का पता लगाना चाहिये। इसमें देखना चाहिये कि रोगी ने शराब, अफीम, कोकेन, भाँग, गाँजा इत्यादि का अत्यधिक उपयोग तो नहीं किया है। इसके साथ साथ यह भी पता लगाना चाहिये कि रोगी हस्तमैथुन तो नहीं करता है या उसने अत्यधिक सम्भोग तो नहीं किया है या उसे अन्य कोई गन्दी आदत तो

नहीं है। इसके अतिरिक्त मानसिक शोक या धक्का, मस्तिष्क पर चोट, निद्रानाश, नाडीसंस्थान के रोग इत्यादि का भी पता लगाना चाहिये।

(ग) शारीरिक प्रत्यक्ष-परीक्षाः—

रोगी का बर्ताव, आदत, चलने वा बात करने का ढंग, कपड़े पहनने की विशेषतायें, जिह्वा का रूप वा मलसम्बन्धी विकार जैसे कोष्ठबद्धता आदि का अच्छी तरह पता लगाना चाहिये।

(घ) मानसिक अवस्थाः—

वार्तालाप के समय रोगी की स्मरणशक्ति, तर्क करने का तरीका, एकाग्रचित्तता और निर्णय इत्यादि का भली प्रकार निरीक्षण करना चाहिये। यह भी देखना चाहिये कि उसे मति-भ्रम वा मानसिक विभ्रम तो नहीं है।

मानसिक विकृति का बहाना।

(Feigned Insanity)।

बहुत से अपराधी अपने अपराध में मिले हुये दण्ड से बचने के लिये पागल होने का बहाना करते हैं। अतएव चिकित्सक को इन सब का ठीक ठीक पता लगाना चाहिये, क्योंकि न्यायालय को इसके जानने की आवश्यकता होती है। इसमें अपराधी के जीवन मरण का प्रश्न होता है। अतएव चिकित्सक को खूब सोच-विचार कर अपना निर्णय देना चाहिये। निम्न लिखित तालिका से इसके निर्णय करने में अधिकाधिक सहायता मिल सकती हैः—

मानसरोग का बहाना।	वास्तविक मानसरोग।
१. अचानक प्रारम्भ होता है और सूक्ष्म परीक्षा से कुछ हेतु की उपस्थिति सिद्ध होती है।	१. प्रायः धीरे धीरे प्रारम्भ होता है किन्तु सदैव बिना किसी हेतु के होता है।
२. सहायक या उत्तेजक कारण नहीं उपस्थित होते।	२. सहायक या उत्तेजक कारण सदैव उपस्थित रहते हैं।
३. यद्यपि रोगी पागल की तरह बनने की कोशिश करता है किन्तु उस की मुखाकृति साधारण रहती है।	३. मुखाकृति कुछ विशेषता रखती है।

मानसरोग का बहाना ।	वास्तविक मानसरोग ।
४. निरीक्षण करते समय पागल होने का बहाना करता है ।	४. चाहे निरीक्षण किया जाय या न किया जाय, व्यक्ति में मानसरोग-लक्षण पाये जायेंगे ।
५. अनेक रोगों के सम्मिश्र लक्षण मिलते हैं ।	५. लक्षण एक विशिष्टरोग के ही मिलते हैं ।
६. रोगी में कोई गन्दी आदत नहीं होती ।	६. रोगी में कोई न कोई गंदी आदत अवश्य होती है ।
७. त्वचा—शुष्क और कड़ी, जिह्वा—मलावेष्टित, विबन्ध, अरुचि और अनिद्रा—ये लक्षण नहीं होते ।	७. इसमें रोगी की त्वचा शुष्क और कड़ी होगी, जिह्वा मलावेष्टित होगी तथा विबन्ध, अरुचि और अनिद्रा के लक्षण मिलेंगे ।

मानस रोग से पीडित रोगी की व्यवस्था ।

(Restraint of the insane)

मानसरोग से पीड़ित रोगी को यदि स्वयं अपने को या दूसरे को हानि पहुंचाने की सम्भावना हो या अपने या दूसरे की मालमत्ता को नुकसान पहुंचाने का या मालमत्ता का अवास्तव खर्चा करने की सम्भावना हो तो केवल इन्हीं अवस्थाओं में उस व्यक्ति को योग्य परिचारकों के हाथों में सुरक्षित रखने के लिये न्यायसंस्था का विरोध नहीं है। इन अवस्थाओं में या तो उस व्यक्ति को १. तत्काल परिचारकों के साथ सुनियन्त्रित रखना या २. हो सके तो जल्दी से जल्दी मानसोपचार के विशिष्ट चिकित्सालय में भरती करवाने का प्रबन्ध करना चाहिये ।

१. तत्काल परिचारकों द्वारा सुनियंत्रित रखना (Immediate Restraint):—व्यक्ति को सुनियन्त्रित रखने की आवश्यकता पर निश्चय होने पर उसको उसके योग्य पालक की सम्मति से परिचारकों द्वारा सुनियन्त्रित रख सकते हैं। स्वयं अपने को या दूसरों को हानि पहुँचाने की सम्भावना हो तो पालक की सम्मति बिना ही इस प्रकार नियन्त्रित रखने के लिये कानून द्वारा सम्मति होती है ।

परन्तु इस प्रकार की सम्भावना न रहने पर या उस के मानसरोग के लक्षण शान्त दिखाई देते ही उसके बाद उसको नियंत्रण में रखना न्यायविहित नहीं होगा।

२ मानसोपचार चिकित्सालय में भरती (Reception into a mental Hospital) :—

(अ) रोगी के आवेदन पत्र से भरती:—

मानसिक विकृति से पीड़ित रोगी यदि मानसोपचार चिकित्सालय में अध्यक्ष के पास चिकित्सालय में भरती होकर उपचार कराने के लिए स्वयं आवेदन पत्र दे तो चिकित्सालय के अध्यक्ष को न्याय द्वारा यह अधिकार है की वह उस व्यक्ति को चिकित्सालय में भरती करे। भरती करते समय चिकित्सालय के दो निरीक्षकों (Visitors) की सम्मति लेना आवश्यक होता है। यदि फिर से वह व्यक्ति चिकित्सालय से छुट्टी पाने के लिए आवेदन पत्र दे तो ऐसा आवेदन पत्र मिलने के २४ घंटे के बाद चिकित्सक उस व्यक्तिको चिकित्सालय में न्याय के अनुसार नहीं रख सकता।

(ब) रोगी-व्यतिरिक्त अन्य व्यक्ति के आवेदन पत्र से भरती :—

जिस जगह का रोगी रहने वाला हो, उस भाग के प्रधान मजिस्ट्रेट के पास मानसरोग-पीडित व्यक्ति का (१) पति या व्यक्ति की पत्नी या 'अन्य नजदीक का रिस्तेदार या कोई भी दूसरा व्यक्ति रोगी के मानसोपचार चिकित्सालय में भरती के लिये आवेदन पत्र भेज सकता है। आवेदन पत्र भेजते समय निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिये :—

१. यदि पति या पत्नी के अतिरिक्त अन्य रिस्तेदार या अन्य कोई व्यक्ति आवेदन पत्र देता है, तो ऐसा करने के लिये विशिष्ट कारण आवेदन पत्र में स्पष्ट लिखना चाहिये। उदाहरण के लिये यदि पति, पत्नी या नजदीक के रिस्तेदारों के अभाव में कोई अन्य व्यक्ति आवेदन पत्र देने के लिये बाध्य हो तो ऐसा आवेदन पत्र देने के लिये बाध्य करने वाली परिस्थिति को आवेदन पत्र में स्पष्ट कर देना चाहिये। आवेदक का रोगी के साथ सम्बन्ध भी स्पष्ट कर देना चाहिये।

२. उपयुक्त आवेदन पत्र देने वाला व्यक्ति सज्ञान युवावस्था में पहुँचा होना आवश्यक है।

३. आवेदक को यह आवश्यक है कि रोगी को आवेदन पत्र देने के पूर्व अधिक से अधिक १४ दिन के भीतर स्वयं देखा हो।

४. इण्डियन ल्युनँसी अॅक्ट १९१२ के अनुसार फार्म नं० १ में आवेदन पत्र देना चाहिये।

५. चिकित्सकों के प्रमाण पत्र—आवेदन पत्र के साथ २ चिकित्सकों के प्रमाण पत्र देने पड़ते हैं। इन चिकित्सकों में से प्रत्येक को रोगी की परीक्षा पृथक् पृथक् करके अपने अपने पत्र में रोगी की दशा का पूर्ण विवरण तथा लोगों से प्राप्त विवरण देकर बाद में अपना मत स्वतन्त्र रूप से देना आवश्यक है। दोनों में से एक चिकित्सक सरकारी गजेटेड अधिकारी चिकित्सक होना चाहिये। चिकित्सक को प्रमाण पत्र विशेष विचार तथा जिम्मेदारी को समझ कर देना चाहिये। चिकित्सक या चिकित्सकों के प्रमाण पत्र मजिस्ट्रेट के आज्ञा-पत्र देने के पहिले अधिक से अधिक ७ दिन के भीतर लिखे हुए होने चाहिये।

उपर्युक्त विधि से आवेदन पत्र मिलने पर मजिस्ट्रेट अपनी स्वतन्त्र जाँच से सचाई को समझने का प्रयत्न करता है और यदि वह भी इस निर्णय पर पहुँचता है की रोगी को मानसोपचार-चिकित्सालय में भरती करना आवश्यक है तो वह प्रथम चिकित्सालय के अध्यक्ष से स्थान के विषय में परामर्श करने के बाद भरती करने का आज्ञापत्र देता है। यहाँ यह भी आवश्यक समझा जाता है कि जो व्यक्ति मजिस्ट्रेट को आवेदन पत्र दे वह रोगी के चिकित्सालयीय व्यय का भार सँभालने के लिये भी तयार हो।

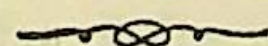
(क) बिना आवेदन पत्र के मानसोपचार-चिकित्सालय में भरती :—

१. किसी भी पुलिस स्टेशन के पुलिस अधिकारी को यह प्रतीत हो कि विशिष्ट व्यक्ति मानसरोग से पीडित होने के कारण स्वयं अपने लिये या दूसरों के लिये हानिकारक हो सकता है, तो वह पुलिस अधिकारी को स्थानिक मजिस्ट्रेट को इसकी सूचना देना उचित होता है। सूचना मिलने पर मजिस्ट्रेट स्वयं रोगी को देखने के बाद स्थानीय सिविलसर्जन के पास परीक्षा के लिये भेजता है। चिकित्सक के विवरण से यह सिद्ध होने पर कि रोगी सचमुच मानस-रोगसे पीड़ित है तो मजिस्ट्रेट चिकित्सालयके अधिकारीसे स्थानके विषयमें परामर्श करनेके बाद रोगीको भरती करनेका आदेशपत्र देता है। भरती होनेमें देर हो तो

तत्काल योग्य पालक के देख रेख में सुनियंत्रित रखने के लिये सम्मति देता है।

२. यदि किसी पुलिस स्टेशन के अधिकार क्षेत्र में कोई मानस रोग से पीड़ित रोगी हो और पुलिस अधिकारी को यह प्रतीत हो कि रोगी को योग्य देख रेख या औषधि तथा आहार-विहार का योग्य प्रबन्ध नहीं हो रहा है तो इस बातकी सूचना वह अधिकारी मजिस्ट्रेट को देता है और मजिस्ट्रेट द्वारा योग्य चिकित्सा का प्रबन्ध कराने का आदेश पालक को दिया जाता है या योग्य पालक के अभाव में चिकित्सालय में भरती करने का आदेश दिया जाता है।

अन्याय्य नियंत्रण (Illegal dention) :—इण्डियन ल्युनसि एक्ट १९१२ की ९३ वी धारा के अनुसार जब तक कोई चिकित्सक या व्यक्ति मानसोपचार चिकित्सालय चलाने के लिये या मानसरोग पीडित रोगी की चिकित्सा करने के लिये सरकार से विशिष्ट अधिकार प्राप्त (Licensed or Authorised) नहीं होता तब तक वह किसी मानसरोग-पीड़ित या जिस के विषय में पीडित होने की आशंका हो ऐसे व्यक्ति को नियंत्रण में रख कर न्यायानुसार चिकित्सा नहीं कर सकता। ऐसा करने पर उस चिकित्सक या व्यक्ति को न्याय संस्था द्वारा अधिक से अधिक २ साल तक कारावास या आर्थिक दण्ड हो सकता है।



सोलहवाँ अध्याय।

चिकित्सक और उनके सम्बन्धी कानून

(Law in relation to Medical Men)

१. १९३३ का इण्डियन मेडिकल कौंसिल अॅक्ट (Indian Medical Council Act 1933) :—वर्तमान समय में भारत में (१) पाश्चात्त्य चिकित्सा प्रणाली के अनुसार चिकित्सा शास्त्र की शिक्षाका नियंत्रण तथा शिक्षा का प्रबन्ध करना (२) शिक्षित चिकित्सकों की सूची रखना (३) सूची में सम्मिलित चिकित्सकों के लिये व्यवसायिक नियम (Medical Ethics) बनाना तथा (४) यदि कोई चिकित्सक अनैतिक व्यवहार (Infamous Conduct)

करे तो उसको दण्ड देना ये सभी कार्य उपर्युक्त कानून के अनुसार संघटित 'मेडिकल कौंसिल' द्वारा किये जाते हैं। यह संस्था अर्थात् केवल 'पाश्चात्य चिकित्सा प्रणाली' से ही सम्बन्धित है। वर्तमान भारतीय सरकारें इस समय इसी एकदलीय संस्था की सलाह से अपने प्रजाजनों के स्वास्थ्य तथा रोग-चिकित्सा की व्यवस्था करती है। इस कानून के अनुसार निम्न बातों का अन्तर्भाव अनैतिक व्यवहार में होता है :—

१. ऐसे कार्य करना जिनको वर्तमान न्याय संस्था 'अपराध' (Crime) मानती है।
२. रोगी के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखना।
३. झूठ या किसी तरह असत्य 'प्रमाणपत्र' देना।
४. जो चिकित्सक इस ॲक्ट के अनुसार 'रजिटर्ड' अर्थात् योग्य शिक्षा प्राप्त चिकित्सक (Qualified Medical Practitioner) नहीं है, उसके साथ सम्बन्ध रखना भी अनैतिक व्यवहार माना जाता है।

वर्तमान सभी कानूनों में जैसे डेंजरस ड्रग्स् ॲक्ट, पॉयज़न्स ॲक्ट, एक्साइज ॲक्ट, इन्शुअरेंस ॲक्ट, इंडियन एव्हिडेन्स ॲक्ट, पिनलकोड, क्रिमिनल प्रोसिजरकोड जैसे अनेक कानूनों में जहाँ जहाँ रजिस्टर्ड या 'योग्य शिक्षा प्राप्त' (Qualified) ये शब्द आते हैं वहाँ वहाँ उपर्युक्त मेडिकल कौन्सिल द्वारा रजिस्टर्ड पाश्चात्त्य चिकित्सा प्रणाली के चिकित्सक ही माने जाते हैं।

२. उत्तर प्रदेश मेडिकल ॲक्ट १९१७—इसमें उपर्युक्त मेडिकल कौन्सिल द्वारा रजिस्टर्ड चिकित्सक किसी वैद्य या हकीम के साथ संबंध रखे तो उसका ऐसा करना 'अनैतिक व्यवहार न माना जाय' यह सुधार किया हुआ है।

३. इंडियन मेडिकल डिग्रीज ॲक्ट १९१६—इस कानून में पाश्चात्त्य चिकित्सा प्रणाली में शिक्षाप्राप्त चिकित्सकों की उपाधियों का विचार किया गया है। यदि कोई चिकित्सक बिना पाश्चात्त्य चिकित्सा-प्रणाली में शिक्षा प्राप्त किये ही कोई डिग्री या शब्दों का अपने नाम के साथ प्रयोग करे जिससे यह द्योतित हो कि वह पाश्चात्त्य चिकित्सा-प्रणाली में शिक्षा-प्राप्त है तो उसका वह कार्य इस कानून के अनुसार 'अपराध' माना जाता है और इसके लिये २५० से ५०० तक दंड भी दिया जा सकता है।

४. उत्तर प्रदेश इंडियन मेडिसिन ऑक्ट १६३६-इस कानून के अनुसार निर्मित बोर्ड द्वारा आयुर्वेद तथा यूनानी इन भारतीय चिकित्सा-प्रणालिओं की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है। शिक्षित चिकित्सकों को (१) सूची रखना (२) उनकी व्यावसायिक नीति (Ethics) का निर्धारण करना (३) नियम बाह्य व्यवहार के लिये दंड देना इत्यादि कार्य किये जाते हैं।

वर्तमान समय में सरकारी किसी भी कानून में जहां जहां 'रजिस्टर्ड चिकित्सक' या 'योग्य शिक्षा प्राप्त चिकित्सक' (Registered Medical Practitioner or Qualified Medical Practitioner) ये शब्द आते हैं वहां वहां प्रत्येक जगह 'इंडियन मेडिसिन एक्ट १६३६' द्वारा रजिस्टर्ड चिकित्सक भी माने जायेंगे। यह बात इस अँक्ट में स्पष्ट कर दी गयी है।

इस कानूनों के अतिरिक्त जिन चिकित्सकों का न्यायालयों के साथ विशेष सम्बन्ध आता है उनको एव्हिडन्स ऑक्ट, पिनलकोड, क्रिमिनल प्रोसिजरकोड इत्यादि अन्य कानूनों की चिकित्साशास्त्र-संबंधी विशिष्ट धाराओं से भी परिचित रहना आवश्यक है।



APPENDIX

दि युनायटेड प्राव्हिसेंस इण्डियन मेडिसिन ऑक्ट १९३९

UNITED PROVINCES Act No. X of 1939

इस ऑक्ट के अनुसार संघटित इण्डियन मेडिसिन बोर्ड द्वारा बोर्ड के तथा अन्य शिक्षा संस्थाओं द्वारा 'नवीन भारतीय चिकित्सा-प्रणाली' के अनुसार शिक्षित चिकित्सकों की शिक्षा, चिकित्सा व्यवहार, चिकित्सकों का रजिस्टर में नाम लिख कर इनको रजिस्टर्ड चिकित्सक बनाना और इन रजिस्टर्ड चिकित्सकों से व्यावसायिक नियमों को पालन करवाना तथा उनके अधिकारों की रक्षा करना इत्यादि कार्य किये जाते हैं। बोर्ड द्वारा रजिस्टर्ड चिकित्सकों के सम्बन्धी ऑक्ट के विशेष भाग यहाँ दिये गये हैं। पूर्ण ऑक्ट की कापी गवर्नमेण्ट प्रेस इलाहाबाद को छ आने का मनियार्डर भेज कर कोई भी मँगवा सकता है।

पार्ट १

इसमें केवल ऑक्ट का नाम, लागू होने के स्थान तथा समय इत्यादि का उल्लेख है।



PART II

2. In this Act, unless there is anything repugnant in the subject or context,—

(i) "Board" means the Board of Indian Medicine, United Provinces, constituted under section 3.

(ii) "Indian system of medicine" means the Ayurvedic or the Unani Tibbi system of Medicine, whether supplemented or not by such modern advances as the Board may from time to time have determined.

(v) "Practitioner" means a practitioner of an Indian system of medicine.

(vii) "Register" means the register of Vaids and Hakims, Surgeons and midwives maintained under section 25.

(viii) "Registered practitioner" means a practitioner whose name is for the time benig entered in the register.

(x) "Vaidya" means a practitioner of Ayurvedic system of medicine.

(xi) "Hakim" means a practitioner of Unani Tibbi system jo medicine.

(xii) "Surgeon" means a Vaidya or Hakim who holds a diploma of Surgery from an institution affiliated to or recognized by the board.

(xiii) "Midwife" means one who holds a diploma or certificate in midwifery from an institution affiliated to or recognized by the Board.

25. The Board shall maintain a register or registers of Vaidyas, Hakims, surgeons and midwives practising in the United Provinces in the prescribed form.

26. (1) Subject to the provisions of this Act and subject to any general and special orders of the Board, it shall be the duty of the Registrar to keep the register and discharge such other functions as are required to be discharged by him under this Act or by any rules framed by the Provincial Government.

(2) The Registrar shall so far as practicable keep the register correct and up to date and may from time to time enter therein any material alteration in the addresses or qualifications of the practitioners. He shall also remove from the register the name of the registered practitioners who die or who cease to be qualified as such.

(3) The Provincial Government may direct that no alteration in the entries in respect of additional qualifications shall be made unless such fee as may be prescribed is paid.

(4) For the purpose of this section the Registrar may write to any registered practitioner at the address which is entered in the register to enquire whether he has ceased to practise or has changed his residence, and if no answer is received to the said letter within three months, the Registrar may issue a registered reminder and in case no reply is received to the reminder within one month from the date of its issue, he may remove the name of the said practitioner from the register :

27. (1) Every persons possessing the qualification mentioned in the Schedule shall, subject to the provisions contained in the Act, and on payment of such fees as may be prescribed in this behalf, be entitled to have his name entered in the register subject to such conditions as the Board may prescribe :

(2) Any person aggrieved by the decision of the Registrar regarding the registration of any person or the making of any entry in the register may, within ninty days of such registration or entry appeal to the Board.

(3) Such appeal shall be heard and decided by the Board in the prescribed manner.

(4) The Board may, on its own motion or on the application of any person, cancel or alter any entry in the register if in the opinion of the Board such entry was fraudulently or incorrectly made or obtained.

28. If the Board is satisfied—

(a) that a title or degree granted or qualification certified by a University, Medical Corporation, examining body or other institution in India is a sufficient guarantee that person holding such a title of degree or qualification possess the knowledge or skill requisite for the efficient practice of medicine, surgery or midwifery, or

(b) that such title, degree, or qualification is not a sufficient guarantee as aforesaid,

it may direct—

(i) in the case mentioned in clause (a) that the possession of such title, degree or qualification shall, subject to the provisions contained in this Act, and on payment of such fee as may be prescribed in this behalf, entitle a person to have his name entered in the register of Vaidyas, Hakims, surgeons, or midwives, as the case may be, or

30. Every person who applies to have his name entered in the register of Vaidyas, Hakims, surgeons or midwives must satisfy the Board that he is possessed of some degree, title or qualification, specified in the Schedule; and he must inform the Registrar of the date on which he obtained the degree, title or qualification which entitled him to claim registration under this Act, and shall furnish any other information required by the Registrar in order to enable him to discharge his duties under the Act.

31. (1) The Board may prohibit the entry in, or order the removal from, the register of the name of any Vaidya or Hakim—

(a) who has been sentenced by a Criminal Court in British India to imprisonment for an offence declared by Government to avolve such moral turpitude as would render the entry or continuance of his name in the register undesirable, or

(b) whom the Board or a Committee specially authorized for the purpose after enuiry (at which opportunity has been given to him to be heard in his defence and to appear either in person or by counsel, vakil, pleader or attorney, and which may in the discretion of the Board, be held **In camera**) has found guilty of professional misconduct or other infamous conduct by a majority of at least two-thirds of the members present and voting at the meeting.

(2) The Board may direct that the name of any person against whom an order has been made under sub-section (I) shall be entered or re-entered, as the case may be, after having satisfied itself that due to the lapse of time or otherwise the disability mentioned in subsection (1) above has ceased to have any force.

32. (1) Every Registrar of Deaths who receives notice of the death of a person whose name he knows to be entered in the register of Vaidyas and Hakims shall forthwith transmit by post or otherwise to the Registrar of the Board a certificate of such death, signed by him and stating particulars of the time and place of death.

(1) On receipt of such certificate or other reliable information regarding such the Registrar shall remove the name of the deceased person from the register.

33. If a person whose name is not entered in the register of Vaidyas and Hakims falsely pretends that it is so entered or uses in connexion with his name or title any words or letters

representing that his name is so entered, he shall whether any person is actually deceived by such representation or not, be punishable on conviction by a Magistrate of the first class, with fine which may extend to two hundred rupees.

35. (1) The Registrar shall, in every year and from time to time as occasion may require, on or before a date to be fixed in this behalf by the Board, cause to be published in the official **Gazette** and in such other manner as the Board may prescribe a full or supplementary list of the names for the time being entered in the register and setting of the names for the time being entered in the register and setting forth—

(a) all names entered in the register arranged in alphabetical order ;

(b) the registered address and appointment held by, or actual employment of, each person whose name is entered in the register; and

(c) the registered title and qualifications of each such person:

Provided that the Registrar shall form time to time get published in the official **Gazette** the names of such practitioners whose names have been duly removed under any of the provisions of this act.

(2) In any proceeding it shall be presumed that every person enterd in such list is a registered practitioner and that any person not so entered is not a registered practitioner:

Provided that in the case of a person whose name has been entered in the register after the last publication of the list, a certified copy signed by the Registrar, of the entry of the name of such person in the register shall be evidence that such person is registerd under this act. Such certificate shall be issued free of charge.

Qualified practitioner's certificates,

39 Notwithstanding anything contained in any law for the time being in force—

(1) The expression "legally qualified medical practitioner" or "duly qualified medical practitioner" or any word importing that a person is recognized by law as a medical practitioner or member of medical profession shall, in all Acts in force in the United Provinces and in all Acts of the Central Legislature (in their application to the United Provinces) in so far as such Acts relate to any of the matters specified in List II or List III in the Seventh Schedule to the Government of India Act, 1935, be deemed to include a registered practitioner.

(2) A certificate required under any law or rule having the force of law from any medical practitioner or medical officer shall be valid, if such certificate has been granted by a registered practitioner.

(3) A registered practitioner shall be eligible to hold any appointment as a physician, surgeon or other medical officer in any Ayurvedic or Unani dispensary, hospital, infirmary or lyngy in hospital supported by or reciving a grant from the Provincial Government or in any public establishment, body or institution dealing with such system of medicine.

(4) A registered practitioner shall be entitled to—

(a) sign or authenticate a birth or death certificate required by any law or rule to be signed or authenticated by a duly qualified medical practitioner;

(b) sign or authenticate a medical or physical fitness certificate required by any law or rule to be signed or authenticated by a duly qualified medical practitioner;

(c) give evidence at any inquest or in any Court of Law as an expert under section 45 of the Indian Evidence Act, 1872[1] on any matter relating to medicine, surgery or midwifery.

40. Except with the special sanction of the Provincial Government, no person other than a Vaidya or Hakim or surgeon or midwife who has qualified himself or herself from an institution affiliated to the Board or other institutions of the Province recognized by the board for the purposes, and is a domiciled resident of this Province shall be competent to hold an appointment as medical officer of health, or as physician, or surgeon or midwife of other medical officer in an Ayurvedic or Unani hospital, infirmary, dispensary, or lying-in hospital maintioned by or under the control of the Provincial Government or a local authority :

Provided that Vaidyas and Hakims in the employ of the Provincial Government or a local authority specified above on the date on which this Act comes into force shall continue to hold the said appointments :

41 (1) Notwithstanding anything in any other law for the time being in force, every registered practitioner shall be exempt, if he so desires, from serving on any inquest, or as a juror or assessor under the Code of Criminal Procedure, 1898[2].

(2) The registered practitioners shall have the same privi leges as the medical practitioners registered under the United-Provinces Medical Act, 1917[3] , have under the united Provinces Excise Act, 1910[3] , or any other Act for the time being in force.

1. U. C. A. Vol. II, P. 1

2. U. C. A. Vol. IV, P. 9

3. Vol. 2

48. (1) No court other than the Court of a Magistrate of the first class shall take cognizance of, or try an offence under this Act.

(2) No court shall take cognizance of any offence under this Act except on a complaint in writing of an officer empowered by rules made in this behalf.

PART III

51. No person other than a practitioner registered under Part II of the Act or a person whose name is entered .n the list mentioned in section 50 shall practise or hold himself out whether directly or by implication as practising or as being prepared to practice the Indian system of medicine, surgery or midwifery :

52. Any person who acts in contravention of the provisions of section 51 shall on conviction for each offence be punishable with fine, which may extend to two hundred rupees.

53. Notwithstanding anything contained in any section of this Act, on and after the expiry of one year from the date from which Part III comes into force, a person shall now be entered in the register as a registered practitioner unless he has passed a qualifying examinat on recognized by the Board.

54. Nothing in sections 51 and 52 shall apply to any person—

(a) who limits his practice to the art of dentistry, or

(b) who being a nurse, midwife or health visitor reg stered under the United Provinces Nurses, Midwives, Assistant Mip-

wives and Health Vistors Registration Act, 1934[1], or a dai, attends on a case of labour, or

(c) who is entitled to registration under section 53 of this Act.

55. (1) No person other than an association or institution recognized or authorized by the Board under this Act shall confer, grant or issue or hold it self out as entitled to confer, grant or issue any degree, diploma, licence, certificate or other document stating or implying that the holder, grantee, or recipient is qualified to practice the Indian systems of medicine.

(2) Whoever contravenes the provisions of this section shall on conviction be punishable with fine, which may extend to five hundred rupees, and if the person so contravening is an association, every member of such association who knowingly and wilfully authorizes or permits the contravention shall, on conviction, be punishable with fine, which may extend to two hundred rupees.

56. Whoever voluntarily and falsely assumes or uses any title or description or any addition to his name implying that he holds a degree, diploma, licence or certificate conferred, granted or issued by any association or institution recognized or authorized by the Board under this Act or that he is qualified to practise the Indian system of medicine under the provisions of this Act, shall, on conviction, be punishable with fine which may extend to fifty supees for the first offience under this section, and to fine which may extend to two hundred rupees for every subsequent offence.

———

1. Supra

THE SCHEDULE

(See sections 27, 28, 29, and 30)

Persons who are entitled to have their names entered in the register of Vaidyas and Hakims—

1. Vaidyas or Hakims who hold a degree or certificate of any Government Ayurvedic or Unani college or school within the United Provinces or outside it, or a degree in Indian Medicine or Surgery or Midwifery of any University established by law in India.

2. Vaidyas and Hakims who have passed the final examinations held by the Board of Indian Medicine, United Provinces or by any institution affiliated to the Board.

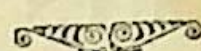
3. Vaidyas or Hakims who have passed an examination from any Ayurvedic or Unani Institution in the United Provinces or outside it recognized by the Board for purposes of registration.

4. Vaidyas or Hakims who in the opinion of the Board are or sufficient standing, reputation and ability and are known for their skill in their profession and who fulfil the conditions imposed by rules as to the length of their practice.

॥ श्रीः ॥

हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला

१७४



विष-विज्ञान

(परिवर्धित परिष्कृत तृतीय संस्करण)

लेखकः—

कविराज युगलकिशोर गुप्त

डी. आई. एम. एस., एम. डी. एच., एम. एच. ए. (कलकत्ता)

परिष्कर्ता:—

वा० कृ० पटवर्धन ए. एम. एस.

प्राध्यापक, आयुर्वेदिक कालेज, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी।



प्रकाशकः—

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी-१

[मूल्य १॥)

ई० १९५९]

प्राक्कथन

विष-विज्ञान, भारतीय चिकित्सा-शास्त्र में नवीन शिक्षाप्रणाली के अनुसार शिक्षित तथा उत्तरप्रदेशीय इण्डियन मेडिसिन ऍक्ट १९३९ एवं तत्सम अन्य-देशीय ऍक्ट्स के अनुसार रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिए विशेष महत्व का विषय है। राष्ट्रभाषा में इस विषय में लिखी पुस्तक जहाँ तक हो सके अद्य-यावत् विषय से पूर्ण, परीक्षार्थी विद्यार्थियों के लिए संक्षिप्त तथा रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिए दैनिक चिकित्सा-व्यवसाय में संदर्भ-ग्रन्थ के रूप में होना आवश्यक है।

इसमें सन्देह नहीं कि श्री कविराज युगलकिशोर जी गुप्त द्वारा लिखित प्रथम संस्करण कुछ वर्षों से परीक्षार्थियों के लिए संक्षिप्त रूप से विषय को तैयार करने के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो चुका है। फिर भी इस लघु पुस्तक द्वारा ही विद्यार्थियों को विशेष ज्ञान प्राप्त कराने के लिए पूर्वसंस्करणापेक्षया इस संस्करण में आमूल संशोधन तथा संवर्धन किया गया है।

अनेक वर्षों के इस विषय के पठन-पाठन के अनुभव एवं बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी तथा बोर्ड ऑफ इण्डियन मेडिसिन के परीक्षार्थियों के साथ सम्बन्ध तथा आयुर्वेदिक कालेज से सम्बन्धित सर सुन्दरलाल चिकित्सालय में इस विषय के प्रत्यक्ष अनुभव से भी मुझे यह कार्य करने में आत्म-विश्वास तथा सहायता मिली है। इसमें मुझे कितना यश मिला है, इसका निर्णय इस विषय के अधिकारी पाठकों पर ही छोड़ना मैं उचित समझता हूँ।

वा० कृ० पटवर्धन
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

विषय सूची

विषय	पृष्ठ
अध्याय १	
सामान्य विचार	१
विष-विक्रय सम्बन्धी नियम	,,
विष के प्रयोग-मार्ग	३
विषोत्सर्ग के मार्ग	४
विषों की क्रिया	,,
विष की क्रिया पर प्रभाव डालने वाली बातें	५
विषों का वर्गीकरण	७
अध्याय २	
विष का निदान	१३
प्रत्यक्ष परीक्षा	१५
विषों का प्रयोग	१८
विष और उसकी मात्रा आदि	२१
मृत्यु के पश्चात् विष का निदान	२६
अध्याय ३	
विषाक्त रोगी की चिकित्सा	३०
विष चिकित्सा के सिद्धान्त	३१
पुलिस, न्यायसंस्था और चिकित्सक	३६
विष-चिकित्सा-पेटी	३७
अध्याय ४	
दाहक विष	३९
अम्ल	,,
धातवीय अम्ल	,,
शोरकाम्ल	४१
गन्धकाम्ल	४३
लवणाम्ल	४४
ऐन्द्रिक अम्ल	४५
आक्जेलिकाम्ल	,,
अङ्गारिकाम्ल	४७
क्षार	४९
अध्याय ५	
क्षोभक विष	५१
अधातवीय क्षोभक विष	,,
फास्फोरस	,,
अध्याय ६	
धातवीय क्षोभक विष	५५
फेनाश्म	,,
फेनाश्म के विभिन्न यौगिक	,,
फेनाश्म के ऐन्द्रिक यौगिक	५७
नीलाञ्जन	६४
पारद	६५
पारद के अन्य लवण	६७
पारद का जीर्ण विष	६९
नाग	७०
नाग का जीर्ण विष	७२
जीर्ण विष की चिकित्सा	७४
यशद	७५

यशद के यौगिक	७५
ताम्र	७७
ताम्र के यौगिक	”
जीर्ण विष के लक्षण	७८
अध्याय ७	
वानस्पतिक क्षोभक विष	७९
जयपाल	”
अर्गट	८१
गुमची-रत्ती	८२
चित्रक	८३
अध्याय ८	
जान्तव क्षोभक विष	८४
कॅन्थेराइड्स	”
सर्पविष	८६
अध्याय ९	
नाड़ी-संस्थान पर प्रभाव करने वाले विष	९०
मस्तिष्क पर प्रभाव करनेवाले विष	”
निद्रालु विष	”
अहिफेन	”
अहिफेन के योग	९२
अध्याय १०	
मस्तिष्क पर प्रभाव करने वाले विष	९६
मादक या संज्ञाहारी विष	”
मद्य	”
जीर्णविष	९८
क्लोरोफार्म	९९
क्लोरल हाइड्रेट	१०२
पेट्रोलियम	१०३
अध्याय ११	
मस्तिष्क पर प्रभाव करनेवाले विष	१०५
प्रलापक विष	”
धतूरा	”
बेलाडोना	१०७
भाँग	१०८
जीर्णविष लक्षण	१०९
कोकेन	११०
कोकेन का जीर्ण विष	१११
सुषुम्ना पर प्रभाव करनेवाले विष	११२
कुचला	”
अध्याय १२	
हृद्विष	११६
तम्बाकू	”
जीर्ण विष के लक्षण	”
अश्वमार या कनेर	११७
डिजीटॅलिस	११८
वत्सनाभ	१२०
हाइड्रोसियानिक अम्ल	१२२
अध्याय १३	
श्वास-प्रश्वास-प्रभावक विष	१२६
कार्बन डाइ आक्साइड	”
कार्बन मानोक्साइड	१२७

मुद्रक—विद्याविलास प्रेस, वाराणसी-१ । वि० सं० २०१६

॥ श्रीः ॥

विष-विज्ञान

पहला अध्याय

सामान्य विचार

व्याख्या—'विष' की संपूर्ण विस्तृत व्याख्या देना कठिन होता है। (सामान्यतया-जो कोई भी पदार्थ शरीर के साथ बाह्य संपर्क में आने पर या शरीर में किसी प्रकार शोषित होने के बाद शरीर पर हानिकारक प्रभाव करे—वह 'विष' माना जाता है। विष की शरीर पर जो क्रिया होती है वह अनेक बातों के कारण कम या अधिक हो सकती है। विष की क्रिया पर प्रभाव डालने वाली विभिन्न बातों का विचार हम आगे करेंगे परन्तु इतना तो ध्यान में रखना चाहिये कि ऊपर लिखित 'व्याख्या' में इन बातों का विचार नहीं किया गया है।

विष-विक्रय-सम्बन्धी नियम

सन् १९०४ के कौंसिल में गवर्नर जनरल ने जो विषसंबंधी कानून (Poison's Act) स्वीकृत किया था उससे पूर्व सम्पूर्ण भारत में इसका कोई कानून न था। सन् १९१९ में यह कानून रद्द कर दिया गया और एक दूसरा विषसम्बन्धी कानून (Poison's Act) (Act No 12 of 1919) सन् १९१९ में स्वीकृत किया गया जो संपूर्ण भारत में लागू है। उसके अनुसार इण्डियन मेडिकल कौंसिल द्वारा या 'बोर्डस् आफ इंडियन मेडिसिन' द्वारा रजिस्टर्ड मेडिकल प्रेक्टिशनर्स को विषविक्रय के लिये लाइसेन्स स्वीकृत किये जाते हैं और ये लोग उत्तरप्रदेश मेडिकल ऍक्ट (U. P. Medical Act 1917) के अनुसार

ब्रिटिश फार्मेकोपिया के विष-मिश्रित योगों (poisonous preparations) को बेच सकते हैं।

इसके अनुसार एक लाइसेन्स प्राप्त व्यक्ति फेनाश्म के श्वेत चूर्ण को नहीं बेच सकता जब तक कि वह प्रति पौंएड फेनाश्म में १ औंस करखा (Soot) अथवा ½ औंस नील (Indigo) न मिला दे। आवश्यकता पड़ने पर लायसेन्स देनेवाले (Licensing Authority) अधिकारी पूर्णतया खोज-बीन करने के बाद किसी पदार्थ को मिलाये बिना ही बेचने की स्वीकृति (Permit) दे सकता है।

प्राणघातक औषधियों (Dangerous Drugs) का उत्पादन, निर्माण, देश में मंगाना, देशसे बाहर भेजना, अपने पास रखना, बेचना और उनका प्रयोग करना इन सब का नियन्त्रण करने के लिये विशेषतया कोकेन, अफ़ीम और भांग के लिये भारतीय संसद (Indian Legislature) ने सन् १६३० में प्राणघातक ओषधि-सम्बन्धी कानून (Dangerous Drugs Act) (Act No. 2 of 1930) स्वीकृत किया। इसका संशोधन सन् १६३२ और १६३८ में किया गया।

१६४० के ओषधिकानून (The Drugs Act. 1940, or Act No, XXIII of 1940) के अनुसार अंग्लोपैथिक ओषधियां जैसे पेटेण्ट ओषधि, सीरम, ह्वॅक्सिनस् और अन्य बाह्य या आभ्यन्तरिक प्रयोग के लिये बनाई हुई ओषधियां बाहरी देश से मंगाना या इनको भारत में बनाना, रखना या बेचना इन कार्यों का नियन्त्रण होता है। आयुर्वेदिक तथा यूनानी ओषधियों का उल्लेख इस कानून में नहीं है।

इस कानून के अनुसार हर हॉस्पिटल या डिसपेन्सरी में 'विषों' को रखने के निम्न नियम हैं—

१. 'विष' एक विशिष्ट बक्स या आलमारी में रखना जिस पर 'विष' का लेबिल लगा रहे।

२. प्रत्येक शीशी या डब्बे पर भी लेबिल रहना चाहिये।

३. लेबिल 'लाल रंग' में छपा हुआ और राष्ट्रभाषा तथा अंग्रेजी दोनों में लिखा रहना चाहिये।

४. विषयुक्त ओषधि विवरण पत्र (Prisciptions) केवल शिक्षाप्राप्त योग्य चिकित्सक या फार्मसिस्ट को ही वितरण करने का अधिकार है।

५. कंपाउण्डर या फार्मसिस्ट जो ४ साल से अधिक चिकित्सालय में नोकरी किये हों वे भी विषयुक्त ओषधिवितरण के लिये योग्य माने जाते हैं।

६. विषयुक्त ओषधि का प्रयोग करने पर यदि रोगी को हानि हो और विष की मात्रा उस विवरणपत्र में अधिक हो तो वितरण करने वाले भी लिखने वाले के साथ साथ दोषी माने जाते हैं। इसलिये वितरण करने वाले को आवश्यक है कि वह 'मात्राधिक्य' की सूचना लेखक को दें।

विषैली ओषधियों के संरक्षण एवं वितरण के लिये भारतवर्ष के सभी चिकित्सालयों एवम् वितरणालयों में यह नियम है कि सभी विषैली ओषधियाँ गवर्नमेण्ट के ओषधि-संग्रहकर्ताओं (Medical store-keepers) के द्वारा दी जाया करेंगी जिन पर कि नारङ्गी रंग के कागज पर लेबिल चिपके हुये होंगे, जिनमें अंग्रेजी और राष्ट्रभाषा में 'विष' (Poison) शब्द लिखा रहेगा और जो सभी बोतलों अथवा पात्रों पर लगा रहेगा। इस प्रकार की वस्तुयें अन्य वस्तुओं से बिलकुल पृथक् किसी आलमारी, सन्दूक अथवा दराज में रखी जानी चाहिये जिस पर कि 'विष' शब्द चिपका हुआ हो।

'विष' के प्रयोग-मार्ग

१. मुख के द्वारा आहार, पेय-पदार्थ आदि के साथ देना।

२. गुदा, योनि, कर्ण आदि शारीरिक छिद्रों में प्रवेश करना।

३. श्वास-क्रिया के साथ नस्य आदि विधियों से देना।

४. त्वचा पर लेप करना।

५. व्रण अथवा क्षत-स्थान पर लगाना।

६. त्वचा के नीचे इन्जेक्शन देना।

७. पेशियों में इन्जेक्शन लगाना।

८. शिरा में इन्जेक्शन देना।

विषोत्सर्ग के मार्ग

(Channels of elimination)

विष शरीर में पहुँचने के बाद प्राकृतिक उत्सर्ग-मार्गों द्वारा क्रमशः उसका उत्सर्ग भी होने लगता है। इस प्रकार 'मल, मूत्र, लाला पित्त, स्वेद इनके द्वारा विष का उत्सर्ग होता है। श्लैष्मिक तथा स्नैहिक आवरक-कलाओं के स्रावों में भी कुछ अंश में 'विष' का उत्सर्ग होता है।

विषों की क्रिया

(Action of Poisons)

विषों की क्रिया ३ प्रकार की होती है:—

१. स्थानिक क्रिया।

२. सार्वदैहिक क्रिया।

३. स्थानिक और सार्वदैहिक मिश्रित क्रिया।

(१) स्थानिक क्रिया:—यदि विष शरीर के किसी भाग के सम्पर्क में आने पर केवल उसी स्थान की धातुओं को नष्ट करे, तो यह विष की स्थानिक क्रिया कहलायगी, जैसे-—

(क) तीव्र अम्लों एवं क्षारों के शरीर के किसी भाग पर गिर पड़ने से उनकी रासायनिक क्रिया के कारण केवल उसी स्थान पर दाह और व्रण उत्पन्न हो जाते हैं।

(ख) क्षोभक पदार्थों; जैसे रसकपूर, नीलाञ्जन आदि से सम्पर्क में आने वाले भाग पर क्षोभ एवं शोथ उत्पन्न हो जाते हैं।

(ग) कुछ पदार्थ त्वचा और श्लैष्मिक कलाओं के सम्पर्क में आने पर नाड़ी पर प्रभाव करते हैं, जैसे बेलाडोना और एट्रोपीन से आँख की पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं और वत्सनाभ से झनझनाहट और संज्ञाहीनता उत्पन्न हो जाती है।

(२) सार्वदैहिक क्रियाः—विषों का शरीर में जब शोषण हो जाता है, तब वे सार्वदैहिक क्रिया करते हैं, जैसे:—

(क) कुचला और स्ट्रिकनीन से सुषुम्ना पर प्रभाव पड़ने के कारण धनुर्वात की भाँति पेशियों में आक्षेप होने लगते हैं।

(ख) वृक्कों पर केन्थेराइड्स की क्षोभक क्रिया के कारण 'वृक्क-शोथ' उत्पन्न हो जाता है।

(ग) अहिफेन एवं मार्फिया की मस्तिष्क पर 'निद्रालु क्रिया' के कारण निद्रा उत्पन्न हो जाती है।

(घ) क्लोरोफार्म का श्वास द्वारा प्रयोग करने से मूर्च्छा उत्पन्न हो जाती है।

(ङ) दाहक पदार्थों; जैसे तीव्र खनिज अम्ल और क्षार के तीव्र दाहयुक्त प्रभाव के कारण उत्पन्न पीड़ा से स्तब्धता (Shock) उत्पन्न हो जाती है।

(३) स्थानिक और सार्वदैहिक मिश्रित क्रियाः—कार्बोलिक एसिड, आक्जेलिक एसिड, फासफारस आदि कुछ विष ऐसे भी हैं जो धातुओं को नष्ट कर स्थानिक क्रिया करते हैं और साथ ही साथ शरीर में शोषित होकर सार्वदैहिक क्रिया भी करते हैं।

विष की क्रिया पर प्रभाव डालने वाली बातें

विषसंबंधी बातें—

१. विष की मात्रा।
२. विष का स्वरूप।
३. विष-प्रयोग की विधि।
४. विष का संचय।

रोगीसंबंधी बातें—

५. आयु और स्वास्थ्य।
६. अभ्यास।
७. प्रकृति।
८. निद्राकाल।

(१) विष की मात्रा :—थोड़ी मात्रा में विषसेवन करने से हो सकता है कि वह विष के लक्षण न उत्पन्न करे किन्तु अधिक मात्रा में विष का सेवन करने से लक्षण स्पष्ट एवं तीव्र होते हैं और मृत्यु भी शीघ्र हो जाती है।

(२) विष का स्वरूप :—यह तीन प्रकार का होता है :—

(अ) भौतिक (ब) रासायनिक और (क) यान्त्रिक।

(अ) भौतिक :--

(क) गैसीय रूप में श्वास द्वारा विष की क्रिया बहुत शीघ्र होती है।

(ख) तरल के रूप में गैस की अपेक्षा कुछ अधिक समय लगता है।

(ग) सूक्ष्म चूर्ण के रूप में तरल की अपेक्षा कुछ अधिक समय में विष की क्रिया होती है।

(घ) ठोस, घन अथवा ढेले के रूप में चूर्ण की अपेक्षा कुछ अधिक समय लगता है।

(ब) रासायनिक :—यदि दाहक अम्लों एवं क्षारों को मिलाकर सेवन किया जाय तो उससे शरीर पर कोई हानिप्रद प्रभाव नहीं होता।

(क) यान्त्रिक :—तीव्र अम्ल में यदि बहुत सा जल मिलाकर सेवन किया जाय तो उसकी क्रिया विष की भाँति नहीं होती।

(३) विषप्रयोग की विधि :—

(क) गैसीय रूप में श्वास द्वारा विष की क्रिया बहुत शीघ्र होती है।

(ख) यदि विष का इन्जेक्शन लगा दिया जाय, तब भी विष की क्रिया बहुत शीघ्र होती है।

(ग) 'क्षत-स्थानों' पर लगा देने से भी उसकी क्रिया शीघ्र होती है।

(घ) त्वचा अथवा श्लैष्मिक कला पर विष लगा देने से उसकी क्रिया विलम्ब से होती है।

(ङ) यदि आमाशय खाली हो और विष मुख के द्वारा खा लिया जाय तो उसका प्रभाव शीघ्र ही प्रकट होने लगता है किन्तु यदि आहार करने के बाद विष सेवन किया जाय तो उसकी क्रिया विलम्ब से और कम होती है।

(च) गुदा, योनि, कर्ण आदि शारीरिक छिद्रों के द्वारा विष-प्रवेश करने पर, विष का प्रभाव धीरे धीरे प्रकट होता है।

(४) विष का संचय :—विष का शरीर में शोषण होने के बाद उसका शरीर के भिन्न २ उत्सर्गमार्गों द्वारा उत्सर्ग हो जाता है। जब शोषित मात्रा की अपेक्षा उत्सर्जित मात्रा कम होती है तब विष का अधिक दिनों तक लगातार

प्रयोग करने से 'विष' क्रमशः बढ़ती हुई मात्रा में शरीर में संचित होने लगता है। इस प्रकार इतना अधिक संचय होता है कि उससे 'विष' के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। पारद, संखिया, यशद, डिजिटेलिस तथा कोकेन इत्यादि इसी प्रकार के विष हैं जिनकी शरीर में संचित होने की संभावना रहती है।

(५) **आयु और स्वास्थ्यः**—युवावस्था की अपेक्षा बाल्यावस्था और वृद्धावस्था की आयु में विष की क्रिया शीघ्र होती है। स्वस्थ पुरुष विष की अधिक मात्रा को भी सहन कर सकता है किन्तु दुर्बल एवं कृश व्यक्ति विष की अधिक मात्रा को सहन नहीं कर सकता।

(६) **अभ्यासः**—बहुत से व्यक्ति ऐसे हैं, जो मद्य, अहिफेन, फेनाश्म, भाँग, तम्बाकू आदि, कुछ विषों का निरन्तर सेवन करते रहते हैं, और इस कारण से उन पर उन उन विषों की घातक मात्रा से कई गुना अधिक विष सेवन करने पर भी—कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता है।

(७) प्रकृति (Idiocyncracy):—कुछ व्यक्तियों की प्रकृति ऐसी होती है कि वे किनाइन, पारद आदि को, अल्प मात्रा में दिये जाने पर भी सहन नहीं कर सकते जब कि उसी मात्रा में अन्य व्यक्तियों पर कोई प्रभाव नहीं होता।

(८) निद्राकाल—यदि विष सेवन के तत्काल बाद व्यक्ति सो जाय तो उस पर विष का प्रभाव देर से होगा।

विषों का वर्गीकरण (Classification)। (९)

किसी भी विषय का अभ्यास करने के लिए उसका वर्गीकरण करने से सुविधा होती है। शरीर पर भिन्न २ विषों की जो क्रियायें होती हैं उनके अनुसार निम्न वर्गीकरण किया जाता है:—

(१) **दाहक विष** (Corrosives):—इस वर्ग में तीव्र अम्ल जैसे हायड्रोक्लोरिक तथा सल्फ्यूरिक या क्षार जैसे कॉस्टिक सोडा तथा पोटॉश इन विषों का अन्तर्भाव होता है।

(२) **क्षोभक विष** (Irritant Poisons):—इस वर्ग में निम्न विभाग हैं:—

(अ) खनिज (Mineral) द्रोभक विषः—१. धातवीय (Metallic):- पारद, संखिया, नीलाञ्जन, सीस, यशद, ताम्र, रजत, विस्मथ।
२. अधातवीय (Non-Metallic):—फॉस्फोरस, क्लोरिन, ब्रोमिन, आयोडिन, कांच, बाल, हीरे की कनी इत्यादि।

(ब) वानस्पतिक (Vegetable):—जमालगोटा, मदार, भेलुआ, इन्द्रायन, एरंड, आक्जेलिक ऑसिड, अर्गट, गुंजा इत्यादि।

(क) जान्तव (Animal) विषः—सर्पविष, वृश्चिकविष, कीटविष, कन्थेराईड, खाद्यविष।

(३) नाडी-संस्थान पर प्रभाव करने वाले विष (Neurotics):—

(अ) मस्तिष्क पर क्रिया करने वाले विष (Cerebral):—

१. निद्रालु (Narcotics or Somniferous): —इसमें अफीम और उसके मार्फिन जैसे अल्कलॉइडस् आते हैं।

२. संज्ञाहारी (Anaesthetics) इसमें क्लोरोफार्म, क्लोरल हायड्रेट तथा कोकेन इनका अन्तर्भाव होता है।

३. मादक (Inebriants):—इसमें मद्य, ईथर, फिनेसिटीन, कपूर, तारपीन का तेल, कार्बोलिक ऑसिड इनका अन्तर्भाव होता है।

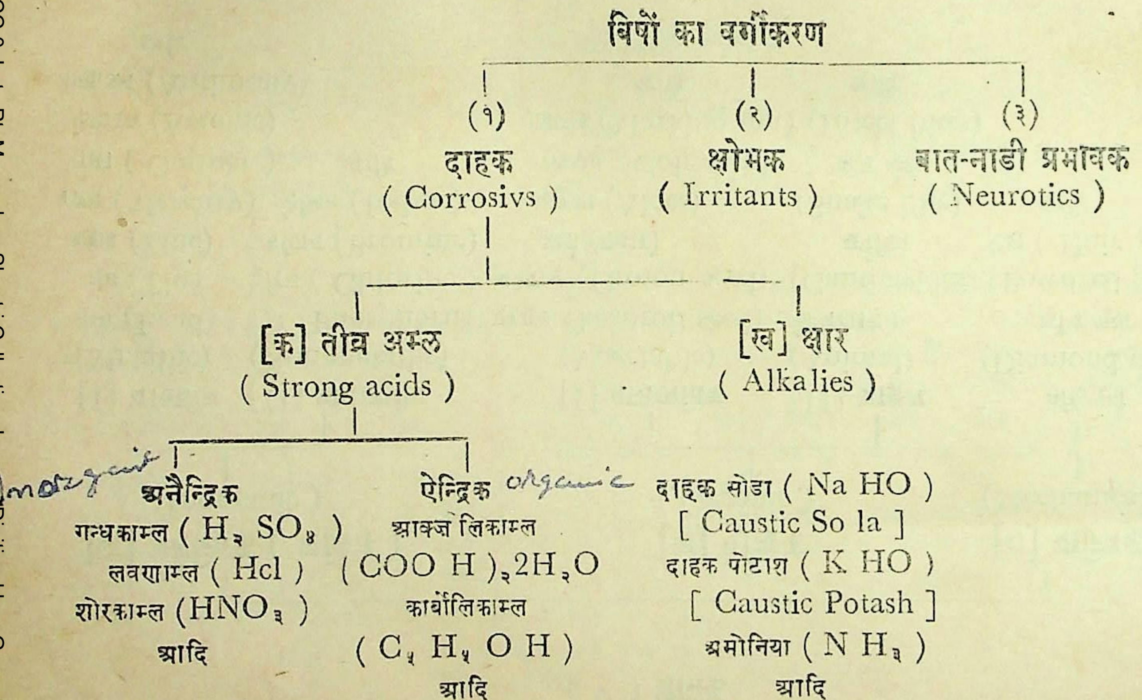
४. प्रलापक (deliriants): -इसमें धतूरा, बेलाडोना, हायोसायामस ऑट्रोपिन, भांग तथा खुरासानी अजवाईन ये विष आते हैं। काली मकोय भी इसी वर्ग का विष है।

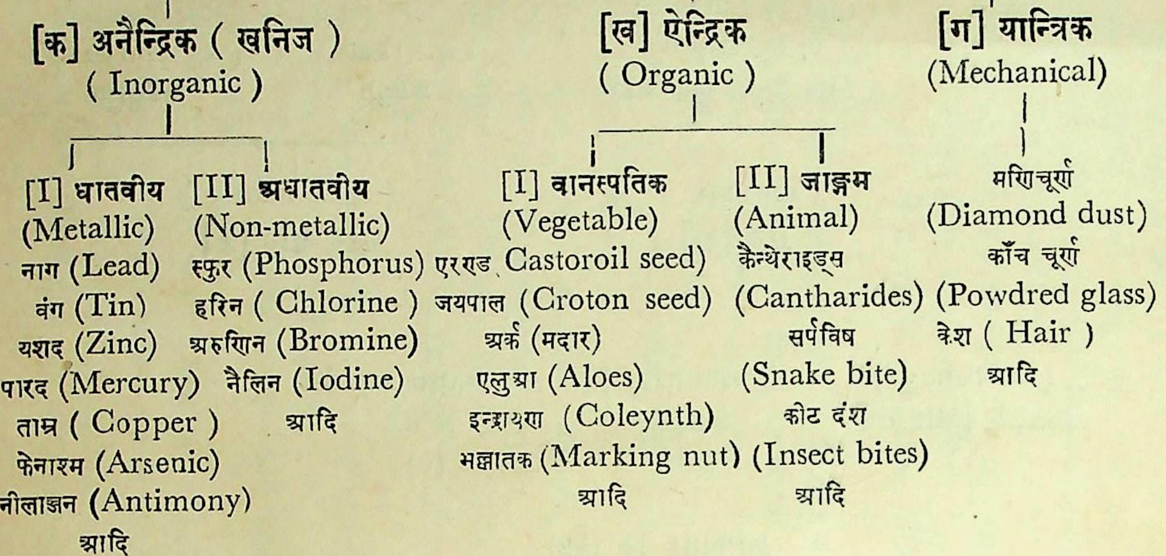
(ब) सुषुम्ना पर क्रिया करने वाले (Spinal):—इसमें विशेषतया कुचला और जेलशेमियम इन विषों का अन्तर्भाव होता है।

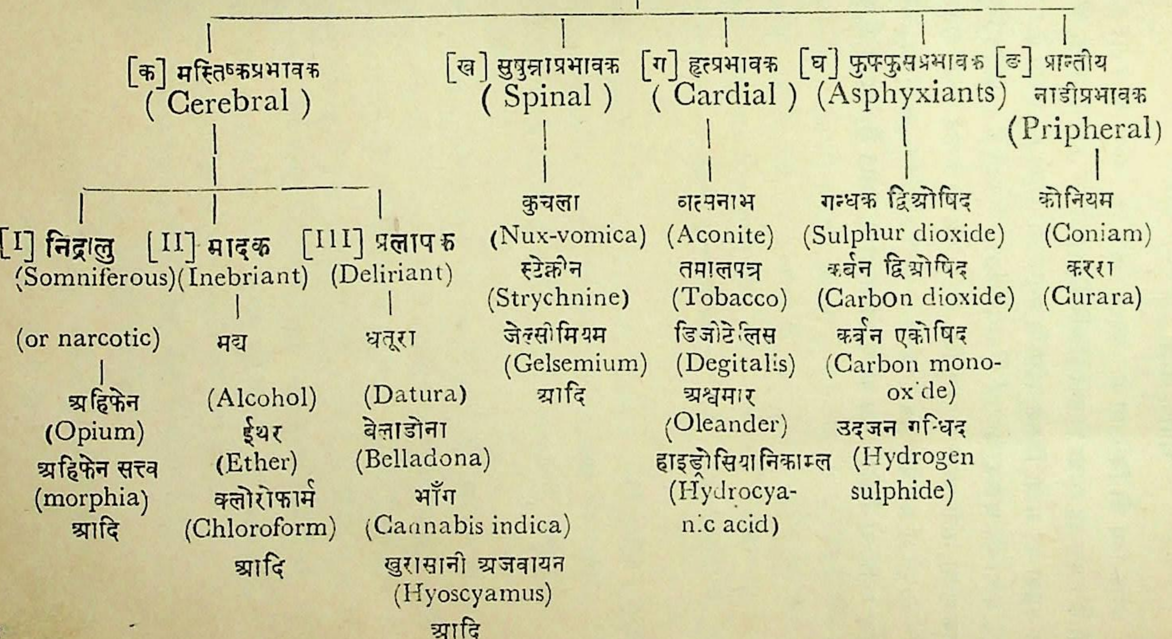
(क) प्रान्तीय नाडियों पर प्रभावक (Peripheral):—इसमें कोनियम तथा क्युरारी ये विशेष विष आते हैं।

(४) हृद्विष (Cardiac):—इसमें तम्बाकू, डिजिटॅलिस, वत्सनाभ, कन्हेर, स्ट्रोफॅन्थस, तथा हायड्रोसायानिक ॲसिड इनका अन्तर्भाव होता है।

(५) फुफ्फुस पर प्रभाव करने वाले विष (Asphyxiants :— इनमें कोयले का ग्यास, कार्बन डॉय ऑक्साइड तथा मॉनोक्साइड इनका अन्तर्भाव होता है।


विषों का वर्गीकरण
(१) दाहक (Corrosivs)
(२) क्षोभक (Irritants)
(३) वात-नाडी प्रभावक (Neurotics)
[क] तीव्र अम्ल (Strong acids)
[ख] क्षार (Alkalies)
अनैन्द्रिक
गन्धकाम्ल (H_2SO_4)
लवणाम्ल (Hcl)
शोरकाम्ल (HNO_3)
आदि
ऐन्द्रिक
आक्जलिकाम्ल
($(COOH)_2 2H_2O$)
कार्बोलिकाम्ल
(C_6H_5OH)
आदि
दाहक सोडा (Na HO)
[Caustic So la]
दाहक पोटाश (K HO)
[Caustic Potash]
अमोनिया (NH_3)
आदि


(२) क्षोभक
[क] अनैन्द्रिक (खनिज)
(Inorganic)
[I] धातवीय
(Metallic)
नाग (Lead)
वंग (Tin)
यशद (Zinc)
पारद (Mercury)
ताम्र (Copper)
फेनाश्म (Arsenic)
नीलाञ्जन (Antimony)
आदि
[II] अधातवीय
(Non-metallic)
स्फुर (Phosphorus)
हरिन (Chlorine)
अरुणिन (Bromine)
नैलिन (Iodine)
आदि
[ख] ऐन्द्रिक
(Organic)
[I] वानस्पतिक
(Vegetable)
एरण्ड Castoroil seed)
जयपाल (Croton seed)
अर्क (मदार)
एलुआ (Aloes)
इन्द्रायण (Coleynth)
भल्लातक (Marking nut)
आदि
[II] जाङ्गम
(Animal)
कैन्थेराइड्स
(Cantharides)
सर्पविष
(Snake bite)
कीट दंश
(Insect bites)
आदि
[ग] यान्त्रिक
(Mechanical)
मणिचूर्ण
(Diamond dust)
काँच चूर्ण
(Powdred glass)
केश (Hair)
आदि


(३) वात-नाडी-प्रभावक
[क] मस्तिष्कप्रभावक (Cerebral)
[ख] सुषुम्नाप्रभावक (Spinal)
[ग] हृत्प्रभावक (Cardial)
[घ] फुफ्फुसप्रभावक (Asphyxiants)
[ङ] प्रान्तीय नाडीप्रभावक (Pripheral)
[I] निद्रालु (Somniferous) (or narcotic)
[II] मादक (Inebriant)
[III] प्रलापक (Deliriant)
अहिफेन (Opium)
अहिफेन सत्व (morphia)
आदि
मद्य (Alcohol)
ईथर (Ether)
क्लोरोफार्म (Chloroform)
आदि
धतूरा (Datura)
बेलाडोना (Belladona)
भाँग (Cannabis indica)
खुरासानी अजवायन (Hyoscyamus)
आदि
कुचला (Nux-vomica)
स्ट्रेक्नीन (Strychnine)
जेल्सीमियम (Gelsemium)
आदि
वत्सनाभ (Aconite)
तमालपत्र (Tobacco)
डिजोटेलिस (Degitalis)
अश्वमार (Oleander)
हाइड्रोसियानिकाम्ल (Hydrocyanic acid)
गन्धक द्विओषिद (Sulphur dioxide)
कर्बन द्विओषिद (Carbon dioxide)
कर्बन एकोषिद (Carbon monoxide)
उदजन गन्धिद (Hydrogen sulphide)
कोनियम (Coniam)
करारा (Curara)

घातक मात्रा (Fatal dose)

अनेक विष जो चिकित्सा में प्रयुक्त होते हैं, उनकी दो प्रकार की मात्रायें होती हैं। एक वह मात्रा जिसको औषधि के रूप में व्यवहार में प्रयुक्त की जाती है और उसकी वह मात्रा जिसके प्रयोग से मनुष्य की मृत्यु हो सकती है। इस मृत्यु-कारक मात्रा को घातक मात्रा (Fatal dose) कहते हैं। प्रत्येक विष की एक घातक मात्रा मानी जाती है परंतु विष की क्रिया पर प्रभाव करनेवाली भिन्न २ बातें–जो पूर्व में हम देख चुके हैं–उनमें से १ या अधिक बातों की उपस्थिति में विशिष्ट व्यक्ति में विशिष्ट विष की घातक मात्रा के प्रभाव में भिन्नता हो सकती है।



दूसरा अध्याय

विष का निदान

(Diagnosis of Poisoning)।

विष का निदान करने की आवश्यकता जीवित और मृत दोनों अवस्थाओं में पड़ती है।

(अ) जीवितावस्था में विष का निदान :—

चिकित्सक का धैर्य, मानसिक शांति तथा विषविज्ञान तथा उसका चिकित्सा शास्त्र का ज्ञान इन सब की परीक्षा विषयुक्त रोगी का निदान और उसकी चिकित्सा इसमें जितनी होती है, उतनी अन्य रोगों में नहीं होती। विष की आशंका होने पर या कुछ लक्षण अकस्मात् उत्पन्न होने पर रोगी के रिस्तेदार प्रायः किसी कुसमय में रोगी को चिकित्सक के पास ले आते हैं या चिकित्सक को बुलाया जाता है।

इस समय चिकित्सक को स्वयं कभी भी घबड़ाना नहीं चाहिये। शांति से रोगोत्पत्ति का इतिहास पूछते हुए यथाशीघ्र विषचिकित्सा की अपनी पेटिका को लेना चाहिये। इस पेटिका को एकबार फिर से आवश्यक वस्तुओं के लिये देख लेना चाहिये।

रोगी के पास पहुँचते ही रोगी के चारों ओर की अनावश्यक भीड़ को हटाना चाहिये और रोगी के चारों ओर की चीजों को भी देखना चाहिये। यदि रोगी के जेब में या उसके कपड़े में कोई औषधि या अन्य पदार्थ मिला है या रोगी ने कय या दस्त किया है तो इन पदार्थों को अपने अधिकार में कर लेना चाहिये।

इतना होते होते रोगी के विषय में कुछ निश्चयात्मक निदान पर पहुंचने के लिये उसको निम्न प्रश्नों का निर्णय करना पड़ेगा—

१. रोगी सचमुच विषाक्त है या उसको कोई रोग है ?

२. यदि 'विषाक्त' है तो किस विशिष्ट विष से पीडित है ?

(१) विष या रोग।

इस प्रश्न का निर्णय करने में प्रायः कठिनाई होती है क्योंकि पुलिस तथा समाज के भय से रोगी के रिस्तेदार रोगी के विषय में पूर्ण इतिहास स्पष्टतया

नहीं बताते। रोगी के लक्षणों की उत्पत्ति के विषय में विचार करने से इस प्रश्न का निर्णय करने में सहायता होती है।

१. **लक्षणों की अकस्मात् उत्पत्ति**—लक्षण प्रारंभ होने के पूर्व रोगी बिलकुल निरोग होता है और वर्तमान लक्षण अकस्मात् उत्पन्न होते हैं। परंतु विसूचिका, अतिसार, मस्तिष्कगत रक्ताधिक्य इत्यादि अवस्थाओं में भी लक्षण अकस्मात् उत्पन्न हो सकते हैं। चिरकारी विषयुक्त अवस्था (Chronic poisoning) में भी लक्षण धीरे २ उत्पन्न हो सकते हैं।

२. प्रायः कोई पदार्थ या औषधि खाने या पीने के बाद में लक्षण प्रारंभ होने का इतिहास मिलता है। परंतु विष का संबन्ध मुखद्वारा होने पर ही यह इतिहास मिल सकता है।

३. यदि आहार अथवा पेय-पदार्थ के साथ विष मिलाकर दिया गया है, तो जो जो व्यक्ति उस आहार अथवा पेयपदार्थ का सेवन करेंगे—उन सब व्यक्तियों में एक ही प्रकार के चिह्न एवं लक्षण लगभग एक ही समय में उत्पन्न होंगे।

४. वमन, मूत्र, पुरीष आदि की रासायनिक एवं सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षा करने पर विष का निदान पूर्ण सफलता के साथ किया जा सकता है। इसीलिये रोगी का खाया हुआ अन्न तथा उसका वमन, मूत्र, पुरीष इत्यादि शुद्ध कांच के सीसी में अपनी सील लगाकर सुरक्षित रखना चाहिये।

इस प्रकार लक्षणों की उत्पत्ति के विषय में इतिहास का अभ्यास करने पर रोगी के 'विषाक्त' होने का प्रायः निश्चयात्मक अनुमान हो सकता है।

(२) रोगी किस विशिष्ट विष से पीडित है?

इस प्रश्न का निर्णय करने के लिये विषों के भिन्न २ वर्गों के सामान्य लक्षण तथा चिह्न और एक वर्ग के एक विशिष्ट विष से उत्पन्न होनेवाले विशिष्ट लक्षण तथा चिह्न इनका अधिक से अधिक ज्ञान प्रत्येक चिकित्सक को होना अत्यावश्यक है।

विष किस वर्ग का है इसका अनुमान होते ही विषचिकित्सा के सामान्य चिकित्सासूत्रों के अनुसार उस विशिष्ट वर्ग की प्राथमिक चिकित्सा प्रारम्भ कर सकते

हैं और साथ २ लक्षणों का विशेष अभ्यास करते हुए उस विशिष्ट 'विष' का निदान भी करने का प्रयत्न हो सकता है।

उदाहरण के लिये धतूरा एक प्रलापक वर्ग का विष है। इसका निदान होने पर—इतिहास, प्रत्यक्षपरीक्षा और अन्य परिस्थितिजन्य प्रमाणों से 'धतूरा' विष का विशिष्ट अनुमान हो सकता है। इसलिये चिकित्सक को विषों के विशिष्ट वर्ग के सामान्य लक्षण तथा चिह्नों का ज्ञान अनिवार्य है।

प्रत्यक्ष–परीक्षा।

रोगी किस वर्ग के किस विष से पीडित है इसका निश्चयात्मक अनुमान रोगी की सूक्ष्म शारीरिक प्रत्यक्ष-परीक्षा करने पर ही हो सकता है। विष की आशंका होने पर शांत चित्त से एक विशिष्ट क्रम से रोगी की संपूर्ण शारीरिक परीक्षा करनी चाहिये।

प्रत्यक्ष–परीक्षा में जो विशिष्ट लक्षण या चिह्न दिखाई देते हैं उनमें एक ही प्रकार के लक्षण-चिह्न या उपद्रव अनेक विषों में मिलते हैं। निम्न तालिका में लक्षण, चिह्न या उपद्रवों के अनुसार विष का सामान्य अनुमान बतलाया गया है इनको याद रखने से सामान्य विष-वर्ग के विषय में प्रायः निश्चयात्मक अनुमान करने में सहायता अवश्य हो सकती है :—

रोगी की अवस्था	विष का अनुमान
(१) तत्काल मृत्यु	१. पोटॉसियम सायनाइड २. हाइड्रोसियानिक ऍसिड ३. कार्बन मोनो आक्साइड ४. कार्बन डाइ आक्साइड ५. तीव्र अमोनिया ६. आक्जेलिक एसिड
(२) मूर्छा	१. अहिफेन २. मार्फिया ३. मद्य ४. क्लोरल हाईड्रेट ५. क्लोरोफार्म ६. कर्पूर

(३) हृदयावसाद

- १. तीव्र अम्ल
- २. क्षार
- ३. वत्सनाभ
- ४. नीलाञ्जन
- ५. फेनाश्म
- ६. तमालपत्र
- ७. ऐन्टी पायरिन
- ८. ऐन्टी फेब्रिन
- ९. बहुत से विषों की अंतिमावस्था

(४) मुखनीलवर्ण का होना (Cyanosed)

- १. ऐनिलोन
- २. ऐन्टी फेब्रिन

(५) प्रलाप

- १. धत्तूर
- २. बेलाडोना
- ३. भाँग
- ४. मद्य
- ५. खुरासानी अजवायन
- ६. कर्पूर

(६) धवनुर्वात की भाँति पेशियों में आक्षेप

- १. कुचला
- २. स्ट्रिकनीन
- ३. फेनाश्म
- ४. नीलाञ्जन

(७) पक्षाघात

- १. वत्सनाभ
- २. फेनाश्म
- ३. नाग
- ४. कोनियम

(८) पुतलियाँ प्रसारित	१. धत्तूर २. बेलाडोना ३. खुरासानी अजवायन (प्रथमावस्था) ४. अहिफेन } अन्तिमावस्था ५. वत्सनाभ } ६. मद्य ७. क्लोरोफार्म
(९) पुतलियां संकुचित	१. अहिफेन २. क्लोरल हाइड्रेट ३. अंगारिकाम्ल ४. फाईसोस्टिगमीन
(१०) त्वचा शुष्क	१. धत्तूरा २. बेलाडोना ३. खुरासानी अजवायन
(११) त्वचा आर्द्र	१. अहिफेन २. वत्सनाभ ३. मद्य ४. नीलाञ्जन ५. तमालपत्र ६. अन्य विषों की हृदयावसाद की अवस्था
(१२) मुँह श्वेत (Bleached)	१. अंगारिकाम्ल २. रसकर्पूर ३. दाहक अम्ल और क्षार
(१३) वमन	१. फेनाश्म(रक्तमिश्रित कपिलवर्णका वमन २. नीलाञ्जन (श्वेतवर्ण का वमन) ३. डिजिटॅलिस (हरित वर्ण का वमन) ४. वत्सनाभ ५. अमोनिया ६. फासफोरस, इत्यादि

प्रत्यक्ष परीक्षा से इस प्रकार 'विष' का अनुमान करते समय रोगी की सामान्यदशा—नाड़ी, श्वास, मूर्च्छा है या नहीं, इत्यादि बातों पर भी विचार करना चाहिये। इस प्रकार रोगी का इतिहास और सूक्ष्म शारीरिक परीक्षा का अभ्यास करने से विशिष्ट 'विष' का अनुमान हो सकता है। साथ २ विष का प्रयोग सामान्यतया दुर्घटना, आत्महत्या या परहत्या के लिये होता है। विष की औषधि रूप में मात्रा, 'विष' की मात्रा या घातक मात्रा इन विषयों की प्रत्येक विष के विषय में ज्ञान होना आवश्यक है, आगे की तालिकाओं में इन बातों को संक्षेप में दिया गया है।

विषों का प्रयोग

विष का नाम	आकस्मिक दुर्घटनाएँ	आत्महत्या के लिये	परहत्या के लिये	अन्य विवरण
शोरकाम्ल लवणाम्ल गंधकाम्ल आक्जे़लिकाम्ल कार्बोलिकाम्ल	अधिक	कभी कभी (युवतियों में)	बहुत कम (बालकों पर)	×
कास्टिक सोडा कास्टिक पोटाश अमोनिया	कभी कभी	कम	×	×
फेनाश्म	,, ,,	,,	अधिक	×
नीलाञ्जन	,, ,,	×	×	×
ताम्र	,, ,,	कम	कभी कभी	×
यशद	,, ,,	×	×	×
नाग	,, ,,	बहुत कम	×	×
पारद	अधिक	कम	कभी कभी	×
फासफोरस	,,	कभी कभी	,, ,,	×
एरण्ड	कम	×	×	×

विष का नाम	आकस्मिक दुर्घटनाएं	आत्महत्या के लिये	परहत्या के लिये	अन्य विवरण
जयपाल	कभी कभी	×	×	×
अर्क	×	कम	बहुत कम	दोनों-शिशुहत्या एवं गर्भ-पात कराने के लिये विशेष रूप से प्रयोग की जाती हैं।
इन्द्रायन	×	×	×	
गुञ्जा	×	×	कभी कभी	(I) गर्भपात कराने के लिये। (II) चमारों द्वारा-जन्तुहत्या के लिये।
चित्रक	×	×	बहुत कम	गर्भपात कराने के लिये।
भल्लातक	कभी कभी	×	कम	,, ,, ,,
अहिफेन	बहुत कम (बच्चों में)	अधिक (युवतियों में)	,, (शिशुओं और बालकों पर)	×
भाँग-गाँजा	कभी कभी	×	×	×
धत्तूरा	,, ,, (बच्चों में)	×	×	बलात्कार, लूटने आदि के लिये
मद्य	×	×	बहुत कम	×
क्लोरोफार्म	कभी कभी	कम	×	बलात्कार, लूटने आदि के लिये

विष का नाम	आकस्मिक दुर्घटनाएँ	आत्महत्या के लिये	परहत्या के लिये	अन्य विवरण
क्लोरल हाइड्रेट	कभी कभी	बहुत कम	×	मूर्च्छित करने के लिये
पेट्रोलियम	कम (बच्चों में)	×	×	×
कुचला	कभी कभी (बच्चों में)	कम	कम (स्वाद कड़वा होने के कारण	×
तमालपत्र	कभी कभी	×	×	×
डिजीटेलिस	,, ,,	×	×	×
अश्वमार	बहुत कम	कम	×	गर्भपात कराने के लिये।
वत्सनाभ	कभी कभी	बहुत कम	कम	चमारों द्वारा— जन्तुहत्या के लिये।
हाइड्रोसियानिकाम्ल	,, ,,	अधिक (शिक्षित युवकों में)	×	×
कोर्बन हाई आक्साइड, कार्बन मानो आक्साइड	,, ,,	बहुत कम	×	×

विष और उसकी मात्रा आदि

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
शोरकाम्ल (Nitric acid)	Diluted ५ से २० बूँद तक	२ ड्राम	१२ से २४ घण्टे तक
लवणाम्ल (Hydrochloric acid)	Diluted ५ से ६० बूँद तक	४ ,,	१ से ३ दिन तक कम से कम—१½ घण्टे
गन्धकाम्ल (Sulphuric acid)	Diluted ५ से ६० बूँद तक	१ ,,	१८ से २४ घण्टे कम से कम—१ घण्टा
आक्जे लिकाम्ल (Oxal.c acid)	×	४ ,, न्यूनतम–१ ड्राम	प्राय:—१ से २ घण्टे कम से कम—३ मिनट
कार्बोलिकाम्ल (Carbolic acid)	१ से ३ बूँद तक	४ ड्राम	१ से ४ घण्टे कम से कम—१० मिनट
दाहक सोडा (Caustic soda)	×	४ ,,	२४ घण्टे
दाहक पोटाश (Caustic potash)	×	४ ,,	,, ,,
अमोनिया (Liquor Ammonia)	Diluted lipuor १० से २० बूँद तक	१ ,,	,, ,,
अमोनिया कार्बोनेट	५ से १० ग्रेन तक	२ ,,	,, ,,

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
फेनाश्म (Arsenic)	१/६० से १/१२ ग्रेन तक	३ ग्रेन	१२ से २४ घंटे तक
नीलाञ्जन (Antimony tartarate)	१/२ से १ ,, ,,	१० से २० ग्रेन तक	१० से ६० घंटे
ताम्र (Copper sulphate)	१/२ से २ ,, ,, वमनार्थ- ५ से १० ग्रेन तक	१ औंस	४ घंटे से ३ दिन तक
यशद (Zinc sulphate)	१ से ३ ,, ,, वमनार्थ— १० से ३० ग्रेन तक	४ ड्राम	२ घंटे से ५ दिन तक
नाग (Lead acetate)	१/२ से २ ग्रेन तक	१ औंस	२ से ५ दिन तक
पारद			
रस कर्पूर ($HgCl_2$)	१/३२ से १/१६ ग्रेन तक	३ से ५ ग्रेन तक	१ से ५ दिन तक
रसपुष्प (HgCl)-Calomel)	१/२ से ३ ,, ,,	×	कम से कम—१/२ घंटा
Mercuric oxycyanide	१/१२ से १/६ ,, ,,	२० ग्रेन	
फासफोरस (Phosphorus)	१/१०० से १/२५ ,, ,,	१ से २ ग्रेन तक बच्चा—१/४ ग्रेन	२ से ८ दिन तक कम से कम—१/२ घंटा
एरण्ड (Castor oil seeds)	Pure oil— १ से ४ ड्राम तक	२ से १० बीज तक	४८ घंटे

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
जयपाल (Croton oil seeds)	Oil— $\frac{1}{2}$ से १ बूँद तक	तैल-१५ से ३० बूँद तक बीज-४ बीज	४-५ घण्टे अधिक से अधिक-३ दिन
अर्क (Madar)— मूलत्वक् चूर्ण	$\frac{1}{2}$ से २ ग्रेन तक	६० से १०० ग्रेन तक	१ से २ घण्टे तक
इन्द्रायण (Colocynth)	२ से ५ ग्रेन तक	६० से १२० ग्रेन तक	२ दिन
गुञ्जा	×	१$\frac{1}{2}$ से २ ग्रेन तक	३ से ५ दिन तक
अहिफेन (Powdered Opium)	$\frac{1}{2}$ से ३ ग्रेन तक	४ से ५ ग्रेन तक	६ से १२ घण्टे तक अधिक से अधिक ३ दिन
(Tincture Opii)	५ से ३० बूँद तक	१ से २ ड्राम तक	
(Extract Opii)	$\frac{1}{4}$ से १ ग्रेन तक	२ से ३ ग्रेन तक	
(Morphine Hydrochloride)	$\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$,, ,,	१ से २ ग्रेन तक	
भाँग (Ext Cannabis Indica)	$\frac{1}{4}$ से १ ग्रेन तक	५ से ७ ग्रेन तक	१२ से २४ घण्टे तक
(Tincture Cann..Indi..)	५ से १५ बूँद तक	७$\frac{1}{2}$ बूँद तक	
धत्तूर बीज का चूर्ण	$\frac{1}{2}$ से ४ ग्रेन तक	१० १५ ग्रेन तक	१२ से २४ घण्टे तक
बेलाडोना (Ext Belladone)	$\frac{1}{4}$ से १ बूँद तक	१ ड्राम	२४ घण्टे
(Tinct Belladone)	५ से ३० बूँद तक		
(Liniment Belladone)	×		

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
(Atropine Sulqhate)	$\frac{१}{२४०}$ से $\frac{१}{६०}$ ग्रेन तक	$\frac{१}{१२}$ से १ ग्रेन तक	
मद्य (Pure Alcohol)	×	२ से ५ औंस तक	१२ से २४ घण्टे
क्लोरोफार्म Concentrated	×	१५ से ३० बूंद तक	सुँघाने पर–२ मिनट
Simqle	१ से ५ बूँद तक	युवा-४ से ६ ड्राम तक बच्चा-१ ड्राम	पीने पर–५ से ६ घण्टे
क्लोरल हाइड्रेट (Chloral hydrate)	५ से २० ग्रेन तक	३० से १२० ग्रेन तक	१० से १२ घण्टे
पेट्रोलियम (Kerosene oil)	×	१ औंस	७ घण्टे
कुचला (Tinct Nux Vomica)	१० से ३० बूँद तक	६ ड्राम	५ मिनट से ४ घण्टे तक
(Extract Nux Vomica)	$\frac{१}{४}$ से १ ग्रेन तक	३ ग्रेन	
(Powdered Nux Vomica)	१ से ४ ,, ,,	३० से ५० ग्रेन	
(Strychnine Hydrochlor)	$\frac{१}{३२}$ से $\frac{१}{८}$,, ,,	१ से २ ग्रेन	
तमालपत्र (पत्तों का चूर्ण	×	१ ड्राम से २ ड्राम तक	१ घण्टा
Nicotine)	$\frac{१}{३०}$ से $\frac{१}{१५}$ ग्रेन तक	१ से ३ बूँद तक	३ से ५ मिनट तक

विष का नाम	चिकित्सा में प्रयुक्त मात्रा	घातक मात्रा	घातक काल
डिजीटेलिस			
चूर्ण	१/२ से १ १/२ ग्रेन तक	३८ ग्रेन	२४ घण्टे
(Tinct Digialis)	५ से १५ बूंद तक	६ से ६ ड्राम तक	
Infusion	१ १/२ से ५ ड्राम तक	२ औंस	
Amorphous Digitalin	१/६० से ४/६० ग्रेन तक	१ से १ १/२ ग्रेन तक	
Crystallised Digitaline	१/२४० से १/६० ग्रेन तक	१/४ से १/२ ग्रेन तक	
Digitoxin	१/६०० से १/६० ग्रेन तक	१/१६ से १/४ ग्रेन तक	
अश्वमार (Oleander)	(पृष्ठ ३६ देखो)	(पृष्ठ ३६ देखो)	(पृष्ठ ३६ देखो)
श्वेत-मूल	×	२४० ग्रेन	अनिश्चित (Karabin से १२ से २४ घण्टे में मृत्यु हो जाती है)
Karabin	×	३ ग्रेन	
बीज	×	३ बीज का चूर्ण	
पीत-मूल	×	२४० ग्रेन	
बीज	×	८ से १० तक	
वत्सनाभ			
(Tinct Aconite)	२ से ५ बूंद तक	१ ड्राम	३-४ घण्टे
(Aconitine)	×	१/२० से १/१६ ग्रेन तक	
(Acononite root)	×	१ ड्राम	
हाइड्रोसियानिकाम्ल			
(Anhydrous Prussic acid)	×	१/२ से १ ग्रेन तक	२ से १० मिनट तक
(Acid Hydrocyanic dil)	२ से ५ बूंद तक	३० बूंद	
(Potassium cyanide)	×	५ ग्रेन	

(ब) मृत्यु के पश्चात् विष का निदान :--

मृत्यु के पश्चात् विष का निदान सामान्यतया निम्नलिखित विधियों द्वारा किया जाता है :—

१. मृत्यूत्तर परीक्षा ।

२. रासायनिक परीक्षा ।

३. जन्तुओं पर प्रयोग ।

४. परिस्थितिजन्य प्रमाण ।

(१) मृत्यूत्तर-परीक्षा :—

(क) बाह्य :—१. स्ट्रिकनीन विषसेवन में मृत्यूत्तर हाथ, पैर, ग्रीवा और मुख की पेशियाँ आकस्मिक संकोच (Cadaeric spasm) के कारण कड़ी होंगी किन्तु स्मरण रहे कि धनुर्वात आदि अन्य अवस्थाओं में भी ऐसा हो सकता है।

२. अहिफेन विष-सेवन में वक्ष के ऊर्ध्व प्रान्त, ग्रीवा तथा मुख में नीलिमा पाई जाती है और प्रायः मुँह के आस-पास श्वेत वर्ण का अथवा हरे वर्ण का शुष्क फेन पाया जाता है।

३. कार्बन मानो आक्साइड विष में चमकीला रक्त वर्ण का ।

४. कुछ विषों में मृत शरीर के मुख और अन्य भागों पर विशेष प्रकार की गंध पायी जा सकती है ।

५. ताम्र विष में त्वचा पीत वर्ण की हो जाती है ।

६. फासफोरस से त्वचा पीलिमायुक्त हो जाती है ।

(ख) आभ्यन्तरिक :—शरीर के प्रत्येक अंग को क्रमशः छेदकर उसकी 'विष', रोग या अन्य आघात आदि के लिये परीक्षा की जाती है। पाचक-संस्थान के अंगों पर विशेष ध्यान देना चाहिये। क्षोभक तथा दाहक विषों में विशेषतया पाचनसंस्थान के अंग विकृत होते हैं। विशेषतया आमाशय में इन विषों से निम्न परिवर्तन हो सकते हैं :—

१. रक्ताधिक्य (Hyperaemia) ।

२. मृदुता (Softening) ।

३. व्रणोत्पत्ति (Ulceration) ।

४. भेदन (Perforation) ।

१—रक्ताधिक्य—इससे विशेषतया आमाशय में लालिमायुक्त शोथ के प्रांत आमाशय के ऊपरी ओर (Cardiac end) तथा पूर्वधारा पर दिखाई देते हैं। विष के अनुसार इसके रंग में भेद दिखाई देता है। संखिया से श्लैष्मिक-कला पीली, ताम्र से हरी या नीली और सल्फूरिक अम्ल से काली हो जाती है। नाईट्रिक अम्ल से भी पीला वर्ण होता है।

प्राकृतिक अवस्था में आमाशय की श्लैष्मिककला का वर्ण निस्तेज श्वेत होता है। पाचन के समय अन्न की उपस्थिति में यह कुछ लालिमायुक्त होता है।

रोग के कारण भी आमाशय में श्लैष्मिककला में रक्ताधिक्य हो सकता है परन्तु यह प्रायः व्रण के चारों ओर एकसा होगा तथा विष के समान विशेषतया श्लेष्मिककला की सिल्वटों पर रोग का परिणाम कम होगा। 'मृत्यूत्तर रंजन' (Post Mortem staining) से उत्पन्न नीलिमा विशेषतया आमाशय के निम्न भाग में तथा आमाशय-पेशी में अधिक दिखाई देगी। श्वासावरोधजन्य मृत्यु के बाद भी प्रायः पूर्ण आमाशय में नीलिमा दिखाई देती है।

२—मृदुता (Softening):—दाहक विषों से मुख, अन्नप्रणाली तथा आमाशय की श्लैष्मिककला रक्ताधिक्य के परिणाम स्वरूप मृदु होती है। क्षारों से यह परिवर्तन विशेष दिखाई देता है। रोग से उत्पन्न मृदुता केवल उसी अंगविशिष्ट में मिलेगी। कार्बोलिक ॲसिड के दग्ध व्रणों में श्लैष्मिककला कड़ी पड़ जाती है। मृत्यूत्तर सडन (Putrefaction) से उत्पन्न मृदुता आमाशय के सबसे निम्न भाग में तथा पेशी में विशेष दिखाई देगी। मृदु भाग के चारों ओर रक्ताधिक्य नहीं होगा।

३—व्रणोत्पत्ति (Ulceration):—आमाशय के पूर्व धारा पर व्रण पाये जाते हैं। इनके किनारे पतेले तथा भंगुर होते हैं और चारों ओर रक्ताधिक्य होता है। लालिमा पक्वाशय तथा क्षुद्रांत्र तक फैली रहती है।

४—भेदन (Perforation):—विषों से भेदन प्रायः नहीं होता। कभी कभी सल्फूरिक ॲसिड के कारण होता है। विषों से होने वाला छिद्र या मृत्यूत्तर आमाशयिक पाचक रस से उत्पन्न छिद्र (Perforation by auto-digestion after death) बड़ा तथा अनियमित होता है। विष से चारों ओर को कला दग्ध दिखाई देती है। रोगों से जो छिद्र होता है उसके किनारे

क्रमहीन नहीं होते। छिद्र युक्त स्थान प्रायः समीपवर्ती किसी अंग से जुडा होता है। आमाशय में दग्धव्रण के लक्षण नहीं होंगे।

(२) रासायनिक परीक्षा:—

रासायनिक विश्लेषण के द्वारा विष का ठीक-ठीक पता लगाया जा सकता है एतदर्थ वमन, मूत्र, पुरीष आदि को रासायनिक परीक्षकों के पास भेजा जाता है। मल, मूत्र या वमन जो चिकित्सक के सामने किया गया हो उसको रासायनिक परीक्षा के लिये रखा जाय। चिकित्सा पूर्ण होते ही इन पदार्थों को कांच के सीसी या बड़े जार में बंद करके अपना सील देकर रखना चाहिये और आवश्यकता पड़ने पर पुलिस को देना चाहिये। न्यायसंस्था द्वारा ये पदार्थ सरकार द्वारा नियुक्त रासायनिक विश्लेषक के पास भेजे जाते हैं। किन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि किसी व्यक्ति पर असत्य दोषारोपण करने के हेतु से कुछ धूर्त शत्रु मृत्यु के पश्चात् मूत्र-पुरीषादि में ऊपर से विष मिला सकते हैं। और यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि विष-सेवन किये जाने पर भी रासायनिक परीक्षण द्वारा विष की उपस्थिति का सिद्ध न होना—यह नहीं बतलाता कि व्यक्ति को विष नहीं दिया गया था अथवा उसने विष-सेवन नहीं किया, क्योंकि निम्न अवस्थाओं में ऐसा हो सकता है:—

१. फुफ्फुसों अथवा त्वचा से ओषजीकरण अथवा बाष्पीकरण के कारण विष पूर्णतया विलीन हो सकता है।

२. वमन और विरेचन होने के कारण आमाशय, अन्त्र आदि में विष नहीं भी पाया जा सकता क्योंकि सम्भव है कि वमन और विरेचन के साथ सम्पूर्ण विष बाहर निकल जाय।

(३) जन्तुओं पर प्रयोग:—

जिस आहार, पेय–पदार्थ आदि पर विष मिले हुये होने का सन्देह होता है, उन्हें घर के पालतू जानवरों को खिलाकर उनमें उत्पन्न हुये लक्षणों को भली प्रकार से देखा जाता है किन्तु ऐसा विष के अतिरिक्त अन्य अवस्थाओं में भी हो सकता है अतएव इसपर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त कुछ विषों का प्रभाव भी कुछ जन्तुओं पर नहीं होता जैसे खरगोश पर बेलाडोना, खुरासानी अजवायन और स्ट्रैमोनियम का और कबूतरों पर अहिफेन का।

प्राय: सभी प्रकार के विष कुत्तों और बिल्लियों पर मनुष्यों की ही भाँति लक्षण उत्पन्न करते हैं।

(४) परिस्थिति जन्य प्रमाण:—

चिकित्सक को मृत व्यक्ति के समीपस्थ शीशियों, पात्रों आदि को भली प्रकार से देखकर मृत्यु के कारण का अनुमान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमाण सामान्य गवाहों द्वारा न्यायालय में प्राप्त हो सकते हैं, जो कि यह बतलावे कि हमने इस व्यक्ति को विष खरीदते हुये देखा अथवा इसने हमारे सामने इस इस प्रकार के भोजन को खाया और इसके बाद ही वमन, विरेचन...आदि होने लगे—इत्यादि प्रमाणों को प्राप्त करना न्यायालय का कार्य है। परिस्थितिजन्य प्रमाणों के विषय में न्यायालय में चिकित्सक को अपनी राय नहीं देनी चाहिये। परिस्थिति का विचार न्यायसंस्था करती है। रोगी के चारों ओर की परिस्थिति, रिस्तेदारों की घबराहट या शव को जलाने या गाड़ने की जल्दी करना इत्यादि विषनिदान में सहायभूत होने वाली बातों को चिकित्सक अपने रिपोर्ट में लिख सकता है।

———

तीसरा अध्याय

विषाक्त रोगी की चिकित्सा।

विषाक्त रोगी की चिकित्सा करते समय निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिये:—

(१) रोगी के विषाक्त होने की आशंका होने पर चिकित्सक को तनिक भी देर नहीं लगाना चाहिये। तुरंत अपनी विषचिकित्सा की पेटी को लेकर और अन्य आवश्यक पदार्थों को यथाशीघ्र लेकर रोगी के पास पहुंचना उचित है। पेटी को एक बार खोलकर आवश्यक पदार्थों के लिये देखना चाहिए।

(२) रोगी के पास पहुंचते ही उसके चारों ओर ध्यान देकर चारों ओर उपस्थित अनावश्यक भीड़ को हटाना चाहिये। साथ २ रोगी के चारों ओर स्थित पदार्थ, औषधि इत्यादि अपने कब्जे में लेना उचित है।

(३) रोगी का इतिहास तथा लक्षण पूछने पर जिन वस्तुओं की चिकित्सा के लिये आवश्यकता होगी उनको शीघ्र लाने के लिये आज्ञा देनी चाहिये।

(४) चिकित्सक के बात-चीत में या व्यवहार में घबराहट नहीं होनी चाहिये। रोगी के विषय में उसके रिस्तेदार अच्छा होगा या नहीं ? विष मालूम होता है या रोग ? इत्यादि अनेक प्रश्न पूछते हैं। उनका उत्तर उस समय निश्चित देना कठिन होता है। यदि निदान का निश्चयात्मक अनुमान नहीं हुआ है या साध्या-साध्यता के विषय में कहना कठिन है तो संशयित ही उत्तर देना चाहिये। साथ २ देखानेवाले को चिकित्सक के व्यवहार में विश्वास होना अत्यावश्यक है।

(५) यदि विष की निश्चिति या साध्यासाध्यता में आंशका हो तो अपने से वयोवृद्ध तथा ज्ञानवृद्ध किसी १ या २ चिकित्सकों को सलाह के लिये अवश्य बुला लेना चाहिये। क्योंकि विषचिकित्सा में योग्य निदान और तत्काल योग्य चिकित्सा होने पर ही रोगी का जीवन निर्भर करता है।

(६) यदि अपने से योग्य चिकित्सक समय पर न मिले या घर में पूर्ण चिकित्सा करने की सुविधा न हो तो रोगी को नजदीक के अस्पताल में तुरन्त ले जाना चाहिये।

(७) चिकित्सा करते समय निराश नहीं होना चाहिये। लगातार प्रयत्न करते रहने से अन्त में यश मिलता है।

(८) आमाशय-प्रक्षालन का द्रव, रोगी का वमन, दस्त या रोगी के पास के अन्य पदार्थ योग्य कांच के बर्तन में रख कर प्रत्येक बर्तन का मुख बन्द करके प्रत्येक के ऊपर अपना सील करना चाहिये। इन पदार्थों को अपने साथ ले जाना चाहिये। प्रत्येक वर्तन पर अन्दर के वस्तु का विवरण, रोगी का नाम, समय तथा तारीख स्पष्ट लिखना चाहिये।

(९) रोगी अच्छा होने पर भी उसको अकेला नहीं छोड़ना चाहिये एक या दो दिन तक योग्य सहायक चिकित्सक या नर्स को उसके साथ रखना उचित है।

(१०) चिकित्सा के उपक्रम पूर्ण होते ही अपने विशेष नोट-बुक में रोगी के विषय में नाम, आयु, पता उसके लिये बुलाने वाले का नाम, रिस्तेदारों का नाम इत्यादि लिखने के बाद रोगी के लक्षण, आनुमानिक निदान तथा किये हुए चिकित्सा का सविस्तर विवरण लिखना चाहिये।

विष-चिकित्सा के सिद्धान्त।

(General principles of Treatment)

विषाक्त पुरुष के विष को नष्ट करना ही विष-चिकित्सा का प्रधान उद्देश्य होता है, एतदर्थ निम्नलिखित सिद्धान्तों के अनुसार विषाक्त रोगी की चिकित्सा की जाती है:—

१. अशोषित विष को शरीर से बाहर निकालना।
२. शरीर के संस्थानों में शोषित हुये विष को बाहर निकालना।
३. प्रतिविषों का प्रयोग।
४. लाक्षणिक चिकित्सा।

अशोषित विष को शरीर से बाहर निकालना :—

इस उद्देश्य से निम्न उपाय करना चाहिये :—

[अ] आमाशय-प्रक्षालन।

[ब] वमन कराना।

[क] अन्य क्रियायें।

[अ] आमाशय-प्रक्षालन :—

यदि रोगी ने विष-सेवन मुख के द्वारा किया है और इस बात का शीघ्र ही पता लग जाये, तब सर्व-प्रथम रोगी के आमाशय का प्रक्षालन 'प्रक्षालन-नलिका' अथवा 'पम्प' से करना चाहिये।

प्रक्षालन-नलिका :—

यह रबड़ की एक नली होती है जिसका व्यास ½ इञ्च और लम्बाई ५ फीट होनी चाहिये। इसके एक सिरे से २० इञ्च की दूरी पर एक निशान लगा देना चाहिये।

प्रयोगविधि :—

जिस सिरे से २० इञ्च की दूरी पर निशान लगाया जाये, उस पर स्निग्ध पदार्थ जैसे ग्लीसरीन, नवनीत, घृत, तैल आदि चुपड़ कर मुख के द्वारा उँग-लियों के सहारे से आमाशय में प्रवेश करना चाहिये और ऐसा करते समय जिह्वा को बाहर की ओर कुछ खींच लेना चाहिये, जब निशान तक नलिका का भाग अन्दर चला जाये, तब नलिका के दूसरे सिरे को सिर से कुछ ऊँचा उठाकर उस पर एक फनेल लगाकर सर्वप्रथम उष्ण जल अथवा पोटाशियम परमैंगनेट का घोल फनेल में डालना चाहिये और जब फनेल ऊपर तक भर जाये अर्थात् उसमें और अधिक द्रव न भरा जा सके, तब उस फनेल को रोगी के आमाशय से कुछ नीचे लाकर किसी काँच के पात्र में उलट देना चाहिये, ऐसा करने से आमाशय से विषमिश्रित द्रव बाहर निकलने लगता है। इसी प्रकार कई बार करना चाहिये जब तक कि समस्त विष बाहर न निकल जाये। प्रक्षालन-नलिका को प्रयोग कर चुकने के बाद जन्तुघ्न औषधियों से पूर्णतया शुद्ध करके रख देना चाहिये। जो प्रथम बार प्रक्षालन करने पर द्रव निकलता है, उसमें विष की मात्रा अधिक होती है, अतएव इस द्रव को भली प्रकार सुस्पष्ट विवरण लिखकर सुरक्षित रखना चाहिये।

आमाशय-प्रक्षालन का निषेध:—

निम्न अवस्थाओं में आमाशय का प्रक्षालन नहीं करना चाहिये या बाद में करना चाहिये, जैसे:—

(१) यदि रोगी ने विषसेवन से पूर्व आहार किया हो—इस दशा में यदि

रोगी होश में हो तो प्रथम वमन कराना चाहिये और फिर यदि आमाशय में कुछ विष रह जाय, तब आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये।

(२) दाहक विषों अर्थात् तीव्र अम्ल एवं क्षार के सेवन किये जाने की अवस्था में आमाशय का प्रक्षालन कदापि न करना चाहिये क्योंकि इसमें आमाशय अत्यन्त मृदु हो जाने के कारण उसमें छिद्र हो जाने का भय रहता है।

[ब] वमन कराना :—

यदि रोगी होश में हो और तीव्र दाहक विष की आशंका न हो तो अशोषित विष को बाहर निकालने के लिये रोगी को तुरन्त वामक औषधियों में से किसी के द्वारा वमन कराना चाहिये।

वामक औषधियाँ :—

१. सैन्धव लवण	१$\frac{३}{४}$ तोला	घोलकर पिला देना चाहिये।
उष्णोदक	४ छटाँक	
२. राई का चूर्ण	१$\frac{३}{४}$ तोला	मिलाकर पिला देना चाहिए।
जल	४ छटाँक	
३. जिंक सल्फेट	१$\frac{३}{४}$ माशा	घोलकर पिला देना चाहिये।
जल	४ छटाँक	
४. टिंचर इपीकेकुआना	४ से ६ ड्राम	मिलाकर पिला देना चाहिये।
उष्णोदक	४ छटाँक	
५. तुत्थ	३ से ५ रत्ती तक	घोलकर पिला देना चाहिये।
उष्णोदक	४ छटाँक	(फासफोरस से विषाक्त होने पर)

६. एपोमार्फीन $\frac{१}{२०}$ रत्ती—जल में घोलकर अधस्त्वक् इन्जेक्शन लगा देना चाहिये।

अन्य वामक औषधियाँ :—

मैनफल, मुलहठी, कड़ुवी तुम्बी, नीम, इन्द्रायण, कुड़े की छाल, मूर्वा, देवदाली, वायबिडङ्ग, चित्रकमूल, तुरई, अर्कमूल, अरिष्टक, लवण, राई, सरसों, करञ्ज, उष्ण जल आदि।

(क) अन्य क्रियायें —

१. यदि सर्प आदि के काटने अथवा बर्रे आदि के डङ्क मारने से विष शरीर में प्रविष्ट हो तो क्षत स्थान से ऊपर तुरन्त एक बन्धन बाँधकर-यदि मुख पर किसी प्रकार का क्षत अथवा खरोचन आदि न हो, तो विष को मुंह से चूसना चाहिये।

२. यदि विष श्वास-क्रिया के समय सूंघा गया है तो आक्सीजन की पर्याप्त व्यवस्था करनी चाहिये। आक्सीजन मास्क, जैसा कि गैसों में प्रयुक्त होती है, काम में लायी जा सकती है अथवा ९३ से ९५ प्रतिशत आक्सीजन और ५ से ७ प्रतिशत कार्बन डाई आक्साइड का मिश्रण प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि इस मात्रा में कार्बन डाई आक्साइड श्वास-केन्द्रों को उत्तेजित करता है ताकि वह बलपूर्वक कार्य कर सके।

(२) शरीर के संस्थानों में शोषित हुये विष को बाहर निकालना:—इसके लिए स्वेदल, मूत्रल अथवा विरेचक औषधियों का प्रयोग योग्य विचार करके यथास्थान करना चाहिये।

(३) प्रतिविषों का प्रयोग — use of antidote

प्रतिविष ३ प्रकार के होते हैं:—

१. यान्त्रिक प्रतिविष (Mechanical)

२. रासायनिक प्रतिविष (Chemical)

३. क्रियाविरुद्ध प्रतिविष (Physiological)

(१) यान्त्रिक प्रतिविष:—

मणि, कांच आदि का चूर्ण जब मुख के द्वारा सेवन कर लिया जाता है, तब वह अन्दर पहुँचकर अपनी यान्त्रिक क्रिया के कारण आमाशय और अन्त्र की श्लैष्मिक कलाओं पर आघात करता है और उनको कई स्थानों पर काट देता है, उनसे रक्तस्राव होता है और पीड़ा होती है, किन्तु यदि स्निग्ध पदार्थ जैसे वसा, तैल, अण्डे की एल्ब्यूमिन आदि का उपर्युक्त विषों का भक्षण करने के तुरन्त बाद अथवा उसके कुछ देर के बाद सेवन किया जाये तो आमाशय आदि की श्लैष्मिक कलायें क्षतयुक्त होने से बचायी जा सकती हैं। वसा, तैल आदि आमाशय और अन्त्र में पहुँचकर वहाँ की श्लैष्मिक कला पर एक आवरण की तरह चढ़ जाती है जिससे मणि, काँच आदि की यान्त्रिक क्रिया फिर नहीं हो पाती। वानस्पतिक या खनिज विषों को आमाशय में निष्क्रिय करने के लिए सूक्ष्म पीसे हुये कोयले का चूर्ण खिलाया जाता है।

(२) रासायनिक प्रतिविष:—

१. यदि अम्लीय पदार्थों का विष के रूप में सेवन किया गया हो, तो उसके

लिये क्षारीय पदार्थों को देना चाहिए और यदि क्षारीय पदार्थों का विष के रूप में प्रयोग किया गया हो तो अम्लीय पदार्थों को देना चाहिये ।

२. खनिज अम्लों के लिये मैगनेशिया और कार्बोनेट्स देना चाहिए ।

३. आक्ज़ेलिकाम्ल के लिए चूना ।

४. नाग और टनीन विषों के लिए सोडियम सल्फेट ।

५. रसकर्पूर विष के लिये एल्ब्यूमिन ।

६. दाहक क्षारीय विषों के लिए नींबू का रस अथवा सिरका ।

इसमें इस बात का सदैव स्मरण रहे कि ऐसे प्रतिविषों का सेवन कराना चाहिये जिससे शरीर पर किसी प्रकार का बुरा प्रभाव न हो ।

(३) क्रिया–विरुद्ध प्रतिविषः—

१. एट्रोपीन के लिए मार्फिया ।

२. एट्रोपीन के लिए पिलोकारपीन ।

३. स्ट्रिकनीन के लिए ब्रोमाइड्स—क्लोरल हाइड्रेट, डिजिटेलिस के लिए वत्सनाभ ।

४. क्लोरोफार्म के लिए एमाइल नाइट्राइट ।

विशेष विवरणः—

१. समस्त प्रकार के विषों में विशेषतया फेनाश्म, यशद, डिजीटेलिस, अम्ल, पारद, मार्फिया और स्ट्रिकनीन में निम्नलिखित योग लाभप्रद हैः—

नं० १—	कासीस का संतृप्त घोल	१०० भाग
नं० २	कैल्साइण्ड मैगनेशिया	८८ ”
	कोयला	४० ”
	जल	१०० ”

नं० १ और नं० २ को पृथक् पृथक् पात्रों में रखना चाहिये । प्रयोग करते समय दोनों को एक ही में मिलाकर विषाक्त पुरुष को पीने के लिये देना चाहिये । किन्तु क्षार, नाग, नीलाञ्जन और हाइड्रोसियानिकाम्ल विष-सेवन में इससे कोई लाभ नहीं होता ।

२. यदि विष का ठीक-ठीक अनुमान न हो अथवा २-३ विष मिलाकर प्रयोग-किया गया हो, तो ।

निम्नलिखित रासायनिक प्रतिविष अत्यन्त लाभप्रद हैं:—

पिसा हुआ कोयला	२ भाग	मिलाकर
टैनिक एसिड	१ ,,	रख देना
मैगनीसियम आक्साइड	१ ,,	चाहिए।

आवश्यकता पड़ने पर इसमें से २ ३/४ माशे लेकर ४ छटाँक जल में मिलाकर देना चाहिये। इसकी पुनः दूसरी मात्रा दी जा सकती है। कोयला—अलकलाइड्स को शोषित कर लेता है, टैनिकाम्ल—अलकलाइड्स, ग्ल्यूकोसाइड्स वा अन्य धातुओं का अवक्षेपण करता है। मैगनेशिया अम्लों को निष्क्रिय करता है और फेनाश्म के प्रतिविष के रूप में प्रयुक्त होता है।

(४) लाक्षणिक चिकित्सा:—

१. पीड़ा कम करने के लिए रुजाहर और स्निग्ध औषधियाँ देनी चाहिये अथवा मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

२. स्तब्धता और हृदयावसाद की अवस्था में शरीर का ताप बनाये रखने के लिये उष्णोदक से भरी हुई बोतलों से उष्णता पहुँचानी चाहिये अथवा तैलों से अभ्यंग करना चाहिये और शरीर में उत्तेजना पहुँचानी चाहिये। एतदर्थ स्ट्रिक्नीन १/५० ग्रेन अथवा 'कैम्फर इन आयल' (Camphor in oil) अथवा 'कैम्फर इन ईथर' (Camphor in ether) का इन्जेक्शन लगा देना चाहिये।

३. शिरा के द्वारा लवणोदक (Saline solution) का प्रयोग योग्य अवस्था में करना चाहिये।

४. श्वासावरोध की अवस्था में आक्सीजन की व्यवस्था करनी चाहिये।

५. श्वास-कर्म में बाधा पड़ने पर 'कृत्रिम श्वास-क्रिया' करनी चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर ऐट्रोपीन अथवा स्ट्रीकनीन का त्वचा के नीचे इन्जेक्शन लगाया जा सकता है।

पुलिस, न्यायसंस्था और चिकित्सक।

परहत्या—यदि चिकित्सक को यह निश्चय हो जाय कि रोगी की हत्या करने के लिये उसे विष दिया गया है तो उसको उचित है कि पुलिस को तुरन्त खबर दे। क्रिमिनल प्रोसीजर कोड की धारा ४४ के अनुसार पुलिस को खबर देना चिकित्सक का कर्तव्य है। भारतीय दंडविधान की धारा १७६ के अनुसार ऐसा न करने पर उसको दण्ड हो सकता है।

आकस्मिक दुर्घटना या आत्महत्या—यदि विष का प्रयोग आकस्मिक दुर्घटना से हुआ है या आत्महत्या के लिये किया गया है और यदि इन बातों का चिकित्सक को पूरा विश्वास है तो इन अवस्थाओं में पुलिस को सूचना देना कानून के अनुसार आवश्यक नहीं है। परन्तु इन बातों के विषय में पुलिस-जांच में चिकित्सक को पूछा जाय तो इन बातों को सविस्तार कहने के लिये चिकित्सक बाध्य है। संक्षेप में न्यायसंस्था की मदत करना चिकित्सक का कर्त्तव्य है।

विशिष्ट रोगी में दुर्घटना से या आत्महत्या के लिये विष-प्रयोग हुआ है या किसी ने उसकी हत्या करने के लिये (Homicide) विष-प्रयोग किया है इसका निश्चयात्मक अनुमान करने का कार्य न्यायसंस्था का है। इस लिये प्रत्येक विषयुक्त रोगी के विषय में पुलिस को सूचना देना ही चिकित्सक की दृष्टि से हितावह होता है और व्यवहार में सामान्यतया प्रत्येक विषाक्त रोगी की सूचना पुलिस को देनी चाहिये। चिकित्सक को स्वयं इन बातों का निर्णय करना कठिन होता है और इसमें उसकी गलती हो सकती है।

आत्महत्या के प्रयत्न में, परहत्या के प्रयत्न में या दुर्घटना, इनमें से किसी कारण विषाक्त रोगी यदि मरणोन्मुख हो या चिकित्सा होने पर भी उसकी जीवित रहने की आशा कम हो या चिकित्सक के सामने उसकी मृत्यु हो जाय तो इन अवसरों पर पुलिस को सूचना देना ही चिकित्सक का कर्तव्य है।

यदि चिकित्सक किसी अस्पताल में काम कर रहा हो तो प्रत्येक विषाक्त रोगी की चाहे वह किसी स्वरूप का हो पुलिस को या मजिस्ट्रेट को सूचना देना कानून द्वारा उसका कर्तव्य समझा जाता है।

ऐसे अवसर पर 'मृत्यु का प्रमाणपत्र' (Death Certificate) पुलिस की जांच होने के पूर्व नहीं देना चाहिये।

विषचिकित्सा-पेटी।

यह पेटी सभी आवश्यक सामान्य वस्तुओं से सदा भरी होनी चाहिये। समय-समय पर इसको खोल कर देखना उचित है। किसी रोगी की चिकित्सा होने पर उस पेटी में जो औषधि कम हो जाय उसकी पूर्ति करनी चाहिये। संक्षेप में पेटी (बैग) में निम्नलिखित वस्तुएं होनी चाहिये:—

(अ) यन्त्र और शस्त्र। (ब) औषधि।

(अ) यंत्र-शस्त्र तथा व्रणबन्धन का सामानः—(१) आमाशय-प्रक्षालन-नलिका एक बड़ी और एक छोटी (२) काच का फनेल, माउथ ग्याग तथा टंग फॉर्सेप्स्। (३) एन्याभल का डूश कैन, रबर टयूब तथा एनिमा देने का नॉफ़ल (४) रबर के कॅथीटर तथा धातु के कॅथीटर छोटे और बड़े। (५) लवण विलयन को शिराद्वारा प्रवेश करने के साधन। (६) चाकू, कैंची, चीमटी, सुई तथा सीने के लिये कॅटगट और रेशम। (७) शुद्ध रुई, गॉज तथा पट्टी और चिपकने वाला प्लास्टर (Leucoplast)। ऑक्सीजन सुंघाने का सामान।

(ब) ओषधि—ओषधियाँ अपने-अपने अनुभव के अनुसार रखी जाती हैं परन्तु नीचे सामान्यतया उपयोगी ओषधियों का उल्लेख किया गया हैः—

(१) इन्जेक्शन की ओषधियाँ —मॉरफीन टेवलेट्स् १/४ ग्रेन। ॲट्रोपीन टेबलेट १/१०० ग्रेन की। कोरॅमिन (निकेथ्यामाइड) २ सी. सी. की ॲम्पूलस्, ॲड्रिनेलिन हायड्रोक्लोर द्रव सीसे में या ॲम्पूलस् एक रंगीन सीसे में पॅराल्डिहाईड (Paraldehyde)। क्लोरोफार्म, संज्ञाहरण के लिये। थॉयोपेंटोन सोडियम ·५ ग्राम के ॲम्पूल्स् तथा परिश्रुत जल की ॲम्पूल्स्, २५ प्रतिशत २५ सी. सी. ग्लूकोज सोलूशन।

(२) वमनकारी ओषधियाँः—झींक् सल्फेट ३० ग्रेन की टिकिया एक या दो औंस जल में मिलाकर दी जाती है। इपिक्याक्युआना का चूर्ण २० ग्रेन की एक टिकिया आती है। जल के साथ १ या २ दी जाती है। ॲपोमॉर्फिन की १/१० ग्रेन की टिकिया जल में घोलकर त्वचा के नीचे इन्जेक्शन दिया जाता है।

(३) प्रतिविषः—पिसा और धुला हुआ कोयले का चूर्ण। आयोडाइड ऑफ् स्टार्च। पोटॅशियम परमॅंगनेट १० छटाक जल में १० ग्रेन डालकर आमाशय-प्रक्षालन के लिये। खाने का सोडा। अमोनियम कार्बोनेट। सोडियम तथा मॅग्नेशियम सल्फेट। टॅनिक ॲसिड। क्लोरल हायड्रेट तथा पोटाश ब्रोमाइड। हायड्रोजन पेरॉक्साइड, पुराना तारपीन का तेल। बी. ए. एल ('बाल' British anti lewisite) के ॲम्प्यूलस् भी रखना अत्यावश्यक है। डिजिटॅलिन १/१०० ग्रेन की टिकिया। स्ट्रिकनिन सल्फेट १/१०० ग्रेन की टिकिया, पिटियुट्रिन १ सी. सी. के ॲम्प्यूलस्।

(४) शामक ओषधियाँः-जैतून का तेल, घी, जिलेटिन, ईसबगोल की भूसी।

चौथा अध्याय

दाहक विष (Corrosive Poisons)

अम्ल (Acids)

अम्ल दो प्रकार के होते हैं:—

(१) अनैन्द्रिक (Inorganic acids): -इन्हें धातवीय अम्ल (Mineral Acids) भी कहते हैं। इनमें लवणाम्ल (HCI), गन्धकाम्ल (H_2SO_4) और शोरकाम्ल (HNO_3) सम्मिलित हैं।

(२) ऐन्द्रिक (Organic Acids):—इनमें आक्ज़ेलिक ऐसिड, कार्बोलिक ऐसिड, ऐसिटिक ऐसिड इत्यादि सम्मिलित हैं।

प्रत्येक अम्ल का पृथक्-पृथक् परिचय आगे दिया गया है। यहाँ पर अम्लों के सामान्य लक्षण और उनकी सामान्य चिकित्सा का वर्णन किया जायगा।

(१) धातवीय अम्ल (Mineral Acids)।

धातवीय अम्लों के सामान्य लक्षण तथा चिह्न:—

ये तीव्र दाहक विष हैं। धातुओं के संपर्क में आते ही स्थानिक धातुओं में दग्ध व्रण उत्पन्न होकर स्थानिक धातुओं का नाश होता है। इनसे सार्वदैहिक लक्षण उत्पन्न नहीं होते। शुद्ध अम्लों की क्रिया तीव्र होती है। परन्तु जल-मिश्रित होने से केवल क्षोभक (Irriant) क्रिया होती है। पर्याप्त जल मिला-कर चिकित्सा में प्रयुक्त अम्लों की क्रिया केवल उत्तेजक होती है।

अम्लों का प्रयोग प्रायः दुर्घटना से ही होता है। औषधि के स्थान में 'अम्ल' को पी जाते हैं। इनका प्रयोग आत्महत्या या परहत्या के लिये नहीं होता।

दाह तथा पीडा:—अम्ल को पीते ही मुख, कंठ, अन्नप्रणाली तथा आमाशय में तीव्र दाह तथा पीडा उत्पन्न होती है।

वमन:—दाह और पीडा के साथ २ मुख से फेनयुक्त लालास्राव और वमन प्रारम्भ होते हैं। वमन गहरे भूरे या लाल रंग के होते हैं। और उसमें

रक्त तथा श्लैष्मिक कला के टुकड़े निकलते हैं। वमन अत्यन्त अम्लिक होने के कारण वस्त्रों पर उसके धब्बे आ जाते हैं और क्षारीय भूमि पर गिरने से झाग निकलते हैं। तीव्र अम्ल की अत्यधिक मात्रा पीने से पूरे आमाशय की आंतरिक श्लैष्मिककला तथा नाडीसूत्र नष्ट होने से आमाशय में पुरःसरण क्रिया नहीं होती अतः इस अवस्था में वमन भी नहीं होते।

शब्द तथा श्वास-प्रश्वासः—मुख तथा कंठ में व्रण तथा शोथ होने से बोलने में अत्यन्त कठिनाई होती है तथा स्वरभेद होता है। इसी कारण श्वासकृच्छ्र उत्पन्न होता है।

तृष्णा तथा मल-मूत्र—रोगी को तीव्र प्यास लगती है परन्तु पानी पीने के लिये असमर्थ रहता है। पानी पीने के प्रयत्न में वार वार वमन होने लगता है। प्रायः कोष्ठबद्धता रहती है। परन्तु कभी २-विशेषतया गन्धकाम्ल से पीडित होने पर-पतले और रक्त तथा श्लेष्मा मिश्रित दस्त भी होते हैं। इन उपद्रवों के परिणाम-स्वरूप मूत्र की मात्रा क्रमशः कम होती जाती है। मूत्रकृच्छ्र तथा कभी कभी मूत्राघात भी होता है।

अवसादः—उपर्युक्त लक्षणों के बाद कुछ घण्टों में अवसाद (Shock) की अवस्था उत्पन्न होती है। नेत्रों के तारे विस्फारित तथा चर्म ठंडा और स्वेदमय होता है। नाडी दुर्बल और धीमी होती है और साथ २ स्वरयन्त्र का अवरोध होने के कारण प्राण वायु की कमी होकर मृत्यु होती हैं।

आमाशय में छिद्र—कभी २ आमाशय में छिद्र होकर (विशेषतया गंध काम्ल) परिविस्तृतकला के शोथ के कारण मृत्यु होती है।

पूयोत्पत्ति तथा कोथ—इन उपद्रवों से रोगी बच जाय तो २४ घंटों में उसको ज्वर होता है और दग्ध व्रण में पूय और कुथित धातु उत्पन्न होकर उनके शोषण से पूयविषमयावस्था के कारण ७-८ दिन में मृत्यु होती है। इससे भी बचने पर रोगी को-अन्नप्रणाली तथा आमाशय में व्रणरोपण के बाद व्रणवस्तु बनने के कारण स्थान-स्थान पर संकोच उत्पन्न होकर खाने-पीने में कठिनाई होती है और आमाशयिक उद्रेचक ग्रंथियों के नाश के कारण अजीर्ण और अग्निमान्द्य की अवस्था हमेशा रहती है।

सामान्य चिकित्सा—आमाशय-प्रक्षालन तथा वमनकारी ओषधियों का प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिये। इनसे हानि होती है।

अम्लों को निष्क्रिय करना—रोगी को तत्काल २० औन्स जल या दूध में आठ चम्मच कैलशियम या मॅग्नेशियम ऑक्साईड मिलाकर पिलाना चाहिये। ये न मिलने पर साबुन का घोल, दीवारों की सफेदी या चूना (खाने का) पानी में मिलाकर पिलाना उचित है। बाद में अंडे की सफेदी का पानी, घी, जैतून का तेल, ईसबगोल का पानी इत्यादि शामक पदार्थ देना चाहिये।

कार्बोनेट्स या बायकार्बोनेट्स का प्रयोग जहां तक हो सके करना उचित नहीं। इसके द्वारा कार्बनडायऑक्साइड ग्यास उत्पन्न होने से आमाशय में पीड़ा और पुरःसरण क्रिया बढ़ने से छिद्र होने की संभावना अधिक होती है।

तृष्णा के लिये बर्फ चूसने के लिए देना। पीड़ा के लिए मार्फिया का प्रयोग। पोषण के लिये 'पोषण बस्ति' (Nutrient Enema) देना तथा स्वरयन्त्र का आकस्मिक सकोच (Spasm) या शोफ के कारण श्वासावरोध होने की आशंका हो तो 'ट्रॅकिओटॉमी' का शस्त्रकर्म करना आवश्यक होता है। दग्ध व्रणों की सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये।

सामान्य मृत्यूत्तर रूप:—मृत्यु के पूर्व कितना समय व्यतीत हुआ है, विष की मात्रा तथा विष की तीव्रता इन बातों पर मृत्यूत्तर रूप निर्भर करेगा। तत्काल मृत्यु होने पर मुख, कंठ, अन्नप्रणाली तथा आमाशय में दग्ध व्रण मिलेंगे। दग्ध व्रणों के समीप वाले धातुओं में शोथ के चिह्न मिलेंगे। मृत्यु १ सप्ताह के बाद होने पर पूय, पूतिवस्तु तथा रोहण धातु की उपस्थिति मिलेगी। कुछ मास के बाद मृत्यु होने पर व्रणवस्तु के बनने के कारण स्थान-स्थान पर संकीर्ण भाग (Strictures) मिलेंगे। शरीर पर अन्य स्थान की त्वचा पर तथा वस्त्रों पर अम्ल से जलने के चिह्न मिलते हैं।

शोरकाम्ल (Nitric Acid)। HNO3

परिचय:—

विशुद्ध शोरकाम्ल स्वच्छ वर्णरहित द्रव पदार्थ है। वायु में खुला छोड़ देने पर इसमें से रंगरहित धुआँ निकलता है जिसमें दम घोटने वाली (Chocking) गन्ध होती है। यह एक प्रबल भस्मकारक पदार्थ (Oxidising agent) है। स्वर्ण और प्लाटिनम को छोड़कर अन्य सभी वस्तुओं को घोलने की इसमें शक्ति होती है। त्वचा और नखों पर इस अम्ल का हलका विलयन लग जाने से

पीत वर्ण का दाग पड़ जाता है। व्यवसाय में जो शोरकाम्ल प्रयुक्त होता है, वह किञ्चित् पीत वर्ण का होता है क्योंकि उसमें 'नाइट्रोजन परआक्साइड' नाम की गॅस घुली रहती है।

विशेष लक्षण:—

ओष्ठ, कपोल, मुख, जिह्वा और हाथ की श्लैष्मिक कला आदि सम्पर्क में आने वाली धातुयें प्रारम्भ में मृदु तथा श्वेत वर्ण की परन्तु कुछ देर के बाद झांथोप्रोटिक अम्ल (Xanthoproateic Acid) के बनने से पीत वर्ण की हो जाती है। दाँतों पर का एनॅमल नष्ट हो जाता है और उनका वर्ण भी पीला होता है। त्वचा और नखों पर के धब्बे भी पीले होते हैं। इन पर अमोनिया का घोल डालने से इन धब्बों का वर्ण संत्रे के रंग का हो जाता है। आमाशय में अत्यधिक आध्मान और तीव्र पीड़ा होती है। और इसके कारण दूसरे अम्लों की अपेक्षा इस अम्ल में वमन की प्रवृत्ति अधिक रहती है। हनुस्तंभ तथा मूर्छा (Lock-Jaw and insensibility) ये भी इस अम्ल के विशिष्ट चिह्न माने जाते हैं।

इस अम्ल के बाष्प सूंघने से श्वास-प्रणाली और फुफ्फुसों में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण सर्वप्रथम खाँसी आती है और फिर श्वासकृच्छ्र और श्वासावरोध हो जाता है। इससे कभी-कभी न्युमोनिया भी होता है। तीव्र अम्ल के बाष्प को सूंघने से मृत्यु होने के उदाहरण हैं।

घातक मात्रा:—१२० बूंद। घातक काल:—१२ से २४ घण्टे तक।

मृत्यूत्तर रूप:—

(क) बाह्य:—

ओठ, गाल वा अन्य शारीरिक अवयव जो कि इस अम्ल के संपर्क में आते हैं, उन पर पीत वर्ण के चकत्ते या दाग पड़ जाते हैं। मुख और नासिका पर पीतवर्ण की फेनयुक्त श्लेष्मा पायी जा सकती है।

(ख) आभ्यन्तरिक:—

मुख, जिह्वा, अन्नप्रणाली, गला, आमाशय और पक्वाशय का ऊर्ध्व भाग दाहयुक्त होता है और उन पर पीले रंग के दाग पाये जाते हैं। तीव्र अम्ल से आमाशय में छिद्र हो सकते हैं। प्रायः आमाशय क्षतयुक्त हो जाता है।

(३) स्वरयन्त्र, वायुप्रणाली और श्वासनलिकाओं में शोथ के चिह्न पाये जाते हैं।

चिकित्सा:—अम्लों की सामान्य चिकित्सा के समान।

गन्धकाम्ल (Sulphuric acid)। H_2SO_4

परिचय:—

शुद्ध गन्धकाम्ल वर्णरहित द्रव पदार्थ है। यह भारी होता है और इसका विशिष्ट घनत्व १·८४ है। वायु में खुला छोड़ देने पर भी इसमें से किसी प्रकार का धुआँ नहीं निकलता है। इस अम्ल को जल में मिलाने पर अत्यधिक ताप निकलता है। इस अम्ल में जल के शोषण करने की बहुत प्रबल क्षमता होती है। त्वचा, वस्त्र, कागज, लकड़ी अथवा अन्य किसी ऐन्द्रिक पदार्थ पर गंधकाम्ल पड़ जाने से वे झुलस जाते हैं। प्रायः गंधकाम्ल के पड़ने से वस्त्र नष्ट हो जाता है और उस पर एक रक्तिमायुक्त कपिल वर्ण का धब्बा पड़ जाता है। व्यवसाय में जो गन्धकाम्ल प्रयोग किया जाता है, वह प्रायः कपिल वर्ण का होता है और उसमें कई प्रकार की अशुद्धियाँ भी होती हैं।

विशेष लक्षण:—

मुख की श्लैष्मिक कला कपिल वर्ण की हो जाती है। जिह्वा पूर्णतया श्वेत वर्ण की होती है। कुछ समय के बाद ईषत् कृष्ण वर्ण या भूरे वर्ण की हो सकती है। दाँत खड़िये के समान निस्तेज श्वेत होते हैं। इससे अतिसार प्रायः उत्पन्न होता है और दस्त में रक्त तथा श्लैष्मिक कला के टुकड़े होते हैं। आमाशय में छिद्र होकर परिविस्तृत कला का शोथ होने की सम्भावना अधिक होती है। अवसाद के कारण मूर्छा प्रायः होती है।

घातक मात्रा:—६० बूँद। घातक काल:—१८ से २४ घण्टे तक।

चिकित्सा:—

इसकी चिकित्सा अम्लों की सामान्य चिकित्सा की तरह है।

मृत्यूत्तर रूप:—

(क) बाह्य:—

ओठ, गाल वा अन्य शारीरिक भाग जो कि इस अम्ल के सम्पर्क में आते हैं, उन पर भूरे या कालिमायुक्त भूरे वर्ण के दाग या चकत्ते पड़ जाते हैं।

(ख) आभ्यन्तरिकः—

यदि अम्ल बहुत तीव्र हो तोः—

जिह्वा और मुख शोथयुक्त, मृदु और गले हुये पाये जायेंगे।

उदर-गुहा में कृष्ण वर्ण का एक तरह का तरल पदार्थ पाया जाता है।

आमाशय की बाह्य सतह कृष्ण वर्ण की हो जाती है और उसकी भित्ति मृदु हो जाती है, कभी २ उसमें एक या एक से अधिक छिद्र भी हो जाते हैं।

अन्य आभ्यन्तरिक अवयव जो कि इस अम्ल के सम्पर्क में आ चुकते हैं, उनकी सतह पर दाह और कृष्णवर्णता पायी जा सकती है।

यदि अम्ल हलका हो तोः—

आमाशय में छिद्र नहीं होते किन्तु प्रायः सम्पूर्ण आमाशय विस्फारित हो जाता है। आमाशयिक रक्तनलिकायें फूली हुई होती हैं। आमाशय की श्लैष्मिक कला कृष्ण वर्ण की होती है। यकृत तथा वृक्कों में मेदापक्रांति (Fatty degeneration) पाया जाता है।

X लवणाम्ल (Hydrochloric acid)। HCl

परिचयः—

शुद्ध लवणाम्ल वर्णरहित वायव्य पदार्थ (Gas) है। जिसका विशिष्ट घनत्व १.२६ होता है। इसमें एक प्रकार की क्षोभक गन्ध होती है। जल में अत्यन्त घुलनशील है। वाणिज्य में प्रयुक्त होने वाला लवणाम्ल पीत वर्ण का द्रव होता है जो कि इस वायव्य पदार्थ को जल में घोलकर बनाया जाता है। ब्रिटिश फार्माकोपिया का लवणाम्ल एक वर्णरहित तरल पदार्थ होता है जिसका विशिष्ट घनत्व १.१५८ से १.१६८ तक होता है और मात्रा में ३२ प्रतिशत इसमें लवणाम्ल होता है।

द्रवमिश्रित लवणाम्ल (Acid hydrochloric dil.) में लवणाम्ल १० प्रतिशत वजन के परिमाण में रहता है। इसकी औषधि—मात्रा ५ से ६० मिनिम है।

विशेष लक्षणः—

अन्य अम्लों की अपेक्षा इसकी क्रिया मन्द होती है। इससे श्लैष्मिक कला में किसी प्रकार का रङ्ग नहीं आता। लालास्राव, आक्षेप, प्रलाप तथा कभी २ ऊर्ध्व या अधः शाखाओं का पक्षाघात देखा गया है।

इस अम्ल के बाष्प अधिक काल तक सूंघने से प्रतिश्याय, नेत्राभिष्यंद, कंठदाह तथा फुफ्फुस नलिकाओं का शोथ (Bronchitis) ये उपद्रव चिरकारी विषमयावस्था (Chronic poisoning) के रूप में दिखाई देते हैं। हृल्लास, वमन तथा उदर के पूर्वभाग में पीड़ा ये लक्षण भी होते हैं। दंतवेष्टों का शोथ होकर दांत हिलने लगते हैं।

चिकित्सा:—अम्लों की सामान्य चिकित्सा के समान।

घातक मात्रा:—२४० बूँद। घातक काल:—१ से ३ दिन तक।

मृत्यूत्तर रूप:—

आमाशय शोथयुक्त हो जाता है।

मुख, जिह्वा, अन्नप्रणाली, अन्त्र आदि सम्पर्क में आने वाले भाग किंचित् भूरे अथवा कृष्ण वर्ण के हो जाते हैं।

(२) ऐन्द्रिक अम्ल (Organic acids)।

आक्ज़ेलिकाम्ल (Oxalic acid)। ×

परिचय:—

यह वर्णरहित पारदर्शक स्फटिक होता है। इसका १ भाग शीत जल के १० भाग और शीत मद्य के २½ भाग में घुल जाता है। १५०° के तापक्रम पर यह पूर्णतया उड़ जाता है।

लक्षण:—

लक्षण स्थानिक तथा सार्वदैहिक दोनों प्रकार के होते हैं। घनस्फटिकों के रूप में या तीव्र रूप में प्रयोग करने से दाहक विष जैसा प्रभाव होता है। परन्तु द्रवमिश्रित द्रव के अम्ल के क्षोभक विष के समान प्रभाव दिखाई देते हैं। इसमें द्रवमिश्रित अम्ल शोषित होने पर नाडीसंस्थान पर प्रभाव होकर सार्वदैहिक लक्षण उत्पन्न होते हैं। व्रण के ऊपर लगाने से भी विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

पीते ही या पीने के बाद तुरन्त निम्न स्थानिक लक्षण तथा चिह्न उत्पन्न होते हैं:—

मुँह में अम्लीय स्वाद होता है।

मुँह, गला, आमाशय और उदर में तीव्र दाहयुक्त पीड़ा होती है।

रक्त और श्लेष्मा मिश्रित वमन होती है। वमन किये हुए पदार्थ का रंग हरा, भूरा अथवा काला होता है।

सार्वदैहिक लक्षण तथा चिह्नों में अन्त्रों में तीव्र मरोड और कुछ समय के पश्चात् कभी २ प्रवाहिका प्रारम्भ हो जाती है। मूत्र की मात्रा कम हो जाती है और कभी २ दो या तीन दिन तक भी मूत्राघात हो जाता है। रोगी जीवित रहने पर मूत्र की मात्रा क्रमशः बढ़ती है परन्तु मूत्र में अलबुमिन तथा वृक्कनलिका-निर्मोक मिलते हैं तथा कैलशियम ऑक्सेलेट के स्फटिक भी मिलते हैं। हृदयावसाद के लक्षण उत्पन्न होते हैं। त्वचा शीतल तथा स्वेदमय होती है। नाडी दुर्बल तीव्र तथा क्रमहीन होती है। श्वासकृच्छ्र तथा श्वासोच्छ्वास की संख्या वृद्धि होती है। अन्त में मूर्छा होकर मृत्यु होती है। कभी २ प्रलाप, आक्षेप तथा हनुस्तम्भ ये लक्षण तथा चिह्न मृत्यु के पूर्व दिखाई देते हैं।

वर्णरहित-स्फटिकाकार यौगिक पदार्थ (Salt) जिसकी प्रतिक्रिया अम्ल हो और जिसमें मुख, कंठ, आमाशय में तीव्र दाह, रक्तयुक्त वमन तथा १० से १५ या ३० मिनिटों में अवसाद की अवस्था उत्पन्न होकर मरणोन्मुख अवस्था हो जाय ऐसी अवस्था में सर्वप्रथम 'ऑक्ज़ेलिक अम्लजन्य विष' का ही अनुमान करना उचित होगा। दूसरे किसी स्फटिकाकार अम्ल यौगिक का इतना तीव्र प्रभाव नहीं होता।

घातक मात्रा:—२४० बूँद। न्यूनतम ६० बूँद।

घातक काल.—प्रायः १ से २ घण्टे, कम से कम ३ मिनट।

चिकित्सा:—

प्रतिविष:—चूना, खटिक, दीवार की सफेदी, अण्डे के ऊपर के छिलके का सूक्ष्म चूर्ण—इनमें से किसी को थोड़े से जल में मिला कर पीने को देना चाहिये। जल का अधिक प्रयोग करने से विष का शोषण जल्दी होता है इस कारण पानी अत्यल्प मात्रा में देना चाहिये। शर्करा-मिश्रित चूने का जल या थोड़े दूध में चूना मिलाकर पिलाना सबसे अच्छा उपाय है। चूने के साथ कैलशियम ऑक्सेलेट लवण बनता है जो अनघुलनशील होता है।

आमाशय में ऑक्ज़ेलिक अम्ल अनघुलनशील योग बनने पर वमनकारी औषधियों का प्रयोग करके विष को निकालने का उपाय करना चाहिये।

आमाशय का प्रक्षालन विशेष सावधानी से करना चाहिये। विषोत्सर्ग के लिए विरेचन का प्रयोग करना चाहिये। एरण्ड तैल का उपयोग अधिक हितकर है।

मूत्रविषमयावस्था की चिकित्सा के लिए शिरा द्वारा ग्लूकोज के विलयन का प्रयोग करना चाहिये।

सामान्य सूत्रों के अनुसार अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप :—मुंह और चेहरे का रङ्ग श्वेत हो जाता है।

आमाशय की श्लैष्मिक कला कृष्ण वर्ण की होती है।

आमाशयिक पदार्थ :—यह गहरे भूरे रङ्ग का द्रव होता है जिसमें श्लेष्मा और परिवर्तित रक्त का कुछ अंश होता है।

आमाशय की भित्ति शोथयुक्त होती है और वह लाल पड़ जाती है। आमाशय में प्रायः छिद्र नहीं होते।

फुफ्फुसों में प्रायः रक्ताधिक्य होता है।

मस्तिष्क में भी रक्ताधिक्य (Congestion) हो सकता है।

शरीर में अन्य अङ्गों में भी थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य पाया जाता है।

अङ्गारिकाम्ल (Carbolic acid)।

परिचय :—

शुद्ध अङ्गारिकाम्ल वर्णरहित, सूचिका-सदृश स्फटिक होता है किन्तु प्रकाश में रक्खा रहने पर इसका वर्ण गुलाबी हो जाता है और नम वायु में यह द्रवीभूत हो जाता है। इसकी प्रतिक्रिया आम्लिक नहीं होती। इसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है और इसका स्वाद किञ्चित् मधुर और दाहकारक होता है। शीत जल में यह बहुत कम घुलनशील है किन्तु उबलते हुये जल, ईथर, क्लोरोफार्म, ग्लीसरीन, स्थायी तथा उड़नशील तैलों और ९० प्रतिशत के मद्य में पूर्णतया घुल जाता है।

लक्षण :—

इससे विषाक्त होने को कार्बोलिज्म् (Carbolism) कहते हैं। इसकी क्रिया स्थानिक तथा सार्वदैहिक दोनों प्रकार की होती है। शुद्ध स्वरूप में त्वचा या श्लैष्मिक कला के संपर्क में आने से स्थानिक धातु का नाश होता है। स्थानिक प्रोटीन (Albumin) जम जाता है और स्थान संज्ञाहीन होता है।

परन्तु ऑसिड स्वयं शरीर में शोषित हो सकता है। शोषित होने पर सार्वदैहिक लक्षण विशेषतया नाडी-संस्थान और वृक्कों पर प्रभाव के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

पीते ही रोगी का मुख, अन्नप्रणाली तथा आमाशय में दारुण दाह प्रतीत होता है। इन स्थानों की श्लैष्मिककला श्वेत और कड़ी पड़ जाती है। आमाशय में तीव्र पीड़ा और कभी २ फेनयुक्त वमन होता है। विष शीघ्र ही शोषित होकर तंद्रा, चक्कर, बाद में मूर्च्छा उत्पन्न होती है। ओष्ठ नीले, नेत्रों के तारे संकुचित, चर्म में शीतल स्वेद, नाड़ी तीव्र तथा दुर्बल और श्वास कष्टमय होता है। आक्षेप और हनुस्तंभ भी देखे गये हैं। श्वास में अम्ल की गन्ध आती है।

मूत्र की मात्रा क्रमशः कम होती जाती है। मूत्र का रंग कुछ देर तक रखने पर गहरा हरा या काला हो जाता है। परन्तु मूत्रोत्सर्ग के समय प्राकृतिक नीलिमा-युक्त रहता है। मूत्र में ऑसिड का उत्सर्ग होने पर ये रंग परिवर्तन होते हैं। व्रण में अधिक दिन तक लगातार इसका प्रयोग करने से भी ये लक्षण हो सकते हैं।

श्वास-प्रश्वास तथा हृत्केन्द्र के कार्यावरोध से प्रायः मृत्यु होती है।

चिकित्सा :—वमनकारी औषधियों का प्रयोग नहीं करना चाहिये। साधारण वमनकारी औषधि का परिणाम भी नहीं होता, क्योंकि आमाशयिक श्लैष्मिक कला संज्ञाहीन होती है। प्रतिविष—मॅग्नेशियम तथा सोडियम सल्फेट प्रत्येक ½ औंस, २० औंस शुद्ध जल में मिलाकर इस द्रव से आमाशय-प्रक्षालन एक मुलायम आमाशय-प्रक्षालन-नलिका से करना चाहिये। इस द्रव के साथ मिलकर सल्फो-कार्बोलेट यौगिक बन जाता है। यह घुलनशील होते हुए भी शरीर के लिए हानिकर नहीं है। व्हिस्की, ब्रांडी या अल्कोहल के १० प्रतिशत घोल से भी प्रक्षालन कर सकते हैं परन्तु इससे कभी-कभी विष का प्रभाव बढ़ सकता है।

स्थानिक शामक पदार्थ (Demulcents) का प्रयोग, श्वासकृच्छ्र, नाड़ी, हृदय इनको ठीक रखने के लिए सामान्य चिकित्सा-सूत्रों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। मूत्र की मात्रा बढ़ाने के लिए तथा रक्तगत विष को कम करने के लिये शिरा द्वारा लवण-विलयन का प्रयोग करना चाहिये। इसमें १ औंस में ३ ग्रेन की परिमाण में सोडावायकार्ब मिला देना चाहिये।

स्थानिक दग्धव्रण को अल्कोहल से धोकर एरण्ड तैल से व्रणबंधन करना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप:—(क) बाह्य:—

मुख, ओष्ठ, गाल आदि पर श्वेत अथवा कपिल वर्ण के दाग पड़ जाते हैं।

(ख) आभ्यन्तरिक:—

मुख, जिह्वा, गाल और अन्नप्रणाली की श्लैष्मिक कला में शोथ होता है। इनका रंग बदल जाता है। और ये प्रायः श्वेत अथवा कपिल श्वेत वर्ण की हो जाती हैं। आमाशय में रक्त वर्ण का द्रव पाया जा सकता है जिसमें कि कार्बोलिक ऐसिड की गंध होगी और इस द्रव पदार्थ में श्लेष्मा और श्लैष्मिक कला के टुकड़े मिले हुए हो सकते हैं। आमाशय की श्लैष्मिक कला शोथयुक्त और कठिन होगी। उसका वर्ण कपिल अथवा कपिल-श्वेत होगा। कभी-कभी यह कला गलकर पृथक् हो जाती है और तब उसके नीचे की धातुयें दिखलाई पड़ने लगती हैं। इन धातुओं में भी तीव्र शोथ पाया जायगा। आमाशय से लेकर अन्त्र तक क्षोभ के चिह्न पाये जा सकते हैं। प्रायः आमाशय में छिद्र नहीं होते। वृक्कों का आकार बढ़ जाता है और उनमें रक्ताधिक्य होता है। रक्तस्रावजन्य वृक्कशोथ की अवस्था भी पायी जा सकती है। उदर के सभी अंगों में थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य होता है। फुफ्फुसों में भी रक्ताधिक्य होता है। प्रायः मस्तिष्क और उसकी कलाओं में भी रक्ताधिक्य पाया जाता है।

क्षार (Alkalies)।

परिचय:—इसमें कॉस्टिक सोडा (Caustic soda), कॉस्टिक पोटाश (Caustic potash), अमोनिया (Ammonia) आदि सम्मिलित हैं।

लक्षण:—मुंह में कषैला स्वाद मालूम होता है। मुंह, गला और आमाशय में दाहयुक्त ऊष्मा का अनुभव होता है। कभी-कभी वमन होती है जिसका रंग गहरा भूरा होता है। वमन में रक्त और उभड़े हुए श्लैष्मिक कलाओं के टुकड़े मिले रहते हैं। वमन की प्रतिक्रिया क्षारीय होगी। विरेचन होता है। उदर प्रदेश में तीव्र शूल एवं पीड़ा होती है। नाडी दुर्बल हो जाती है। मुंह से आमाशय तक की श्लैष्मिक कला रक्त वर्ण की और शोथयुक्त होती है। अम्ल और क्षार यद्यपि दोनों दाहक वर्ग के हैं तथापि क्षारों में निम्न लक्षण विशेष होते हैं जो अम्लों में नहीं होते—

(१) मुंह में साबुन का सा स्वाद। (२) वमन की प्रतिक्रिया क्षारीय होगी। (३) वमन जमीन पर गिरने से झाग नहीं उठेंगे। क्षारों में वमन के साथ २ विरेचन भी होते हैं। अमोनिया के बाष्प से नेत्र, नासिका तथा स्वरयन्त्र इनमें क्षोभ होता है। स्वरयन्त्र के शोथ से मृत्यु तक हो सकती है।

घातक मात्रा :—

कॉस्टिक सोडा —४ ड्राम (१¼ तो०) कास्टिक पोटाश—४ ड्राम (१¼ तो०)

लाइकर अमोनिया—१ ड्राम(६० बूंद) अमोनिया कार्ब—२ ड्राम (७½ माशे)

घातक काल :—२४ घण्टे।

चिकित्सा :—

आमाशय का प्रक्षालन या वमनकारी औषधि का प्रयोग वर्ज्य है। सिरका, नींबू का रस, हल्का-एसिटिकाम्ल (Dilute acetic acid), हल्का साइट्रिकाम्ल (Dilute citric acid)—इनमें से किसी को जल के साथ मिलाकर पिलाना चाहिये। इससे क्षार निष्क्रिय हो जाता है। नवनीत, घृत, दुग्ध, तैल (जैतून आदि के), अण्डे की सफेदी आदि स्निग्ध तथा शामक औषधियों को पिलाना चाहिये। यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिए। उत्तेजना के लिए स्ट्रिक्नीन आदि के इन्जेक्शन लगाना चाहिये। सामान्य सूत्रों के अनुसार अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप :—

मुख और उसके आस-पास दाह के चिह्न पाये जाते हैं। मुख, गला, अन्न-प्रणाली और आमाशय की श्लैष्मिक कला मृदु, शोथयुक्त और फूली हुई होती है। इनका वर्ण गहरा भूरा अथवा कृष्ण होता है। स्वरयन्त्र, श्वासनलिका, वायुप्रणालियों और फुफ्फुस की श्लैष्मिक कलाओं में शोथ और रक्ताधिक्य पाया जायेगा।



पाँचवाँ अध्याय

क्षोभक-विष (Irritant Poisons) ।

इन विषों की क्रिया से विशेषतया पाचन-प्रणाली के संपर्क-स्थान में क्षोभ और उसके परिणामस्वरूप शोथ उत्पन्न हो जाता है ।

सामान्य लक्षण :—

विष खाने के ½ से १ घण्टे में दाह और पीड़ा होकर भीतर से अवरोध सा प्रतीत होता है । निगलने में असमर्थता होती है । उदर के पूर्वभाग में तीव्र पीड़ा होकर लगातार वमन प्रारम्भ होते हैं । वमन के प्रारम्भ में भोजन, बाद में पित्त और अन्तमें रक्त आने लगता है ।

विरेचन भी प्रारंभ होकर उदर में तीव्र मरोड़ होकर दस्त में भी श्लैष्मिक कला के टुकड़े तथा रक्त आने लगता है । उदर में स्पर्शासह्यता रहती है ।

मूत्रकृच्छ्र होकर मूत्राघात भी हो सकता है । अवसाद की अवस्था उत्पन्न होकर त्वचा में शीतल स्वेद और नाडी दुर्बल, तीव्र गतियुक्त तथा अनियमित होती है । अवसाद के साथ २ आक्षेप भी होने लगते हैं । १ से ४ दिन में अत्यन्त दौर्बल्य होने से मृत्यु होती है ।

यदि रोगी २-४ दिन तक बच जाता है तो उसे ज्वर होने लगता है । अन्ननलिका में व्रणरोपण होने पर-आभ्यन्तरिक संकोच (Stricture) परिणामस्वरूप मृत्यु हो सकती है ।

अधातवीय क्षोभक विष ।

(Non-Metallic irritant Poisons)

फास्फोरस (Phosphorus) ।

परिचय :—

यह दो प्रकार का होता है—(१) पीत और (२) रक्त ।

(१) पीत फास्फोरस :—यह मोम की तरह अल्पपारदर्शक शलाकाओं के रूप में होता है । जल में अविलेय तथा ईथर, मद्य, वसायुक्त और ईथरयुक्त तैलों में किंचित् घुलनशील एवं कार्बन बाईसल्फाइड (Carbon Bisulphide) में शीघ्र घुल जाता है । वायु में खुला छोड़ देने पर शनैः-शनैः इसका

भस्मीकरण (Oxidation) होने लगता है और इसमें श्वेत धूम्र निकलता है जिसमें लहसुन की सी गंध होती है और अन्धेरे में इससे प्रकाश निकलता है। ३४०° से० पर यह जलने लगता है और इसमें से श्वेत धूम्र निकलता है। इसे सदैव जल में डालकर सुरक्षित करते हैं क्योंकि जल से बाहर रहने पर इसका भस्मीकरण सरलता के साथ होता रहता है। पीत फास्फोरस बहुत विषैला होता है और चूहों तथा अन्य पशुओं को मारने के लिये लेह (Vermin paste) बनाने के काम में प्रयोग किया जाता है। इस लेह में तैल, आटा, शर्करा इत्यादि मिलाया जाता है और इसमें २ से ४ प्रतिशत तक फास्फोरस होता है।

(२) रक्त फास्फोरस :—यह रक्त कपिल वर्ण के बेरवेदार चूर्ण के रूप में पाया जाता है। पीत फास्फोरस को आक्सीजन के अभाव में २४०° से० से २५०° से० तक गरम करके रक्त फास्फोरस बनाया जाता है। इसमें न तो कोई गन्ध ही होती है और न स्वाद ही। इससे अन्धेरे में कोई प्रकाश नहीं निकलता। यह विषैला भी नहीं होता। यह कार्बन बाई सल्फाइड में अविलेय है। साधारण तापक्रम पर इसका भस्मीकरण नहीं होता अत एव जल में सुरक्षित रखने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। दियासलाई (Safety matches) के बनाने में इसका व्यवहार होता है।

लक्षण :—

इसकी तीन अवस्थायें होती हैं। साधारणतया विष खाने पर २ से ६ घंटों में लक्षण प्रारम्भ होते हैं।

(क) प्रथमावस्था :—

१. गला, अन्नप्रणाली और आमाशय में दाहयुक्त पीड़ा होने लगती है।
२. मुँह में लहसुन की तरह स्वाद मालूम होता है।
३. प्रश्वास से लहसुन की तरह गन्ध निकलती है।
४. जी मचलाने लगता है।
५. वमन होती है जिसमें फास्फोरस की तरह गन्ध रहती है और वमन किया हुआ पदार्थ अंधेरे में चमकता है।
६. कभी-कभी विरेचन भी होता है और मल भी अंधेरे में चमकता है।
७. त्वचा शीतल और स्वेदयुक्त होती है।
८. शरीर का तापक्रम साधारण से कम हो जाता है।

९. रोगी की तंद्रा, मूर्छा तथा कभी २ आक्षेप उत्पन्न होकर मृत्यु हो जाती है। किन्तु यदि रोगी बच जाता है, तो लक्षणों की तीव्रता कुछ कम हो जाती है और फिर द्वितीयावस्था के लक्षण प्रारम्भ हो जाते हैं।

(ख) द्वितीयावस्था :—

इसमें रोगी की दशा निम्न रूप से सुधरती हुई दिखाई देती है।

१. पीड़ा कम हो जाती है। २. वमन भी कम होती है।

३. विरेचन या तो बन्द हो जाता है या बहुत कम हो जाता है। परन्तु २ से ६ दिन में पुनः हालत बिगड़ने लगती है।

(ग) तृतीयावस्था :—

पुनः सभी लक्षण तीव्र रूप में प्रगट हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित परिवर्तन पाये जाते हैं :—

१. कामला उत्पन्न हो जाता है।

२. यकृत् का आकार बढ़ जाता है। प्लीहा भी बढ़ती है।

३. शरीर के विभिन्न भागों की श्लैष्मिक कला और त्वचा के नीचे रक्तस्राव होने लगता है। गर्भिणी स्त्रियों में तीव्र रक्तस्राव होकर गर्भस्राव होता है।

४. मूत्र का रंग गहरा हो जाता है और मात्रा में कम होता है। मूत्र में पित्त के रञ्जक पदार्थ तथा अल्बूमिन होता है।

५. वमन और विरेचन पहले की अपेक्षा तीव्र हो जाते हैं और उनके साथ रक्त भी निकलता है।

६. नाड़ी दुर्बल और तीव्र गति से चलने लगती है।

७. शरीर का तापक्रम पहले बढ़ जाता है और बाद में साधारण से भी कम हो जाता है।

८. अंत में बेचैनी, शिरःशूल, निद्रानाश, कर्णनाद, कर्णबाधिर्य, सर्वाङ्ग में कम्प और धीरे २ तंद्रा, मूर्छा और आक्षेप होकर मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा :—१ से २ ग्रेन (½ से १ रत्ती तक) बच्चों में-⅛ रत्ती।

घातक काल :—२ से ८ दिन तक। कम से कम ½ घंटा।

चिकित्सा :—

(१) सर्व-प्रथम वमन कराना चाहिये, एतदर्थ १½ रत्ती की मात्रा में तुत्थ को थोड़े से जल में घोलकर १० या १५ मिनट के अन्तर पर बराबर देते रहना चाहिये जब तक पर्याप्त वमन न होने लगे, इसकी फॉस्फोरस के साथ रासायनिक

प्रतिविष की सी क्रिया होकर तुत्थ के साथ मिलकर इससे तुत्थ का फॉस्फाइड लवण बनता है जो अनघुलनशील होता है। और इससे कोई हानि नहीं होती।

(२) तदनन्तर आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। एतदर्थ पोटाशियम परमैंगनेट का ⅛ प्रतिशत का घोल प्रयोग करना चाहिये और प्रक्षालन कर चुकने के बाद कुछ द्रव आमाशय में ही छोड़ देना चाहिये। यह भी फास्फोरस के लिए रासायनिक प्रतिविष है। इसके मिलने से फास्फोरिक ऍसिड, फॉस्फेटस, तथा मेंगनीज डॉय-ऑक्साईड जैसे पदार्थ बनते हैं जिनसे शरीर के लिए कोई हानि नहीं होती। फ्रेंच टरपेन्टाइन, हायड्रोजन पेराक्साइड, तथा सॅनीटस (Sanitas) नामक पदार्थों का उपयोग भी प्रतिविषों के रूप में किया जाता है।

(३) तैल, वसा वा अन्य वसायुक्त पदार्थ जैसे दुग्ध, घृत, नवनीतादि नहीं देना चाहिये क्योंकि इनमें फास्फोरस घुलकर शरीर में शोषित हो जाता है।

(४) प्रतिविषों के प्रयोग के बाद विरेचन के लिए मॅग-सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए। रक्त की क्षारीयता बढ़ाने के लिए सोडाबायकार्ब पर्याप्त मात्रा में देना चाहिए। यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिए।

मृत्यूत्तर रूप:—

आमाशय से लेकर अन्त्र तक की श्लैष्मिक कलाओं में रक्ताधिक्य होगा। प्रायः इनमें क्षोभ, शोथ, मृदुता और व्रणोत्पत्ति के चिह्न पाये जाते हैं।

आमाशय और उसमें रहनेवाले पदार्थों में फास्फोरस की तरह गन्ध होती है और वे अंधेरे में चमकते हैं।

समस्त बाह्य और आभ्यन्तरिक अङ्गों में पीलापन होगा।

यकृत् बढ़ा हुआ होता है और उसमें 'वसागलन' होने के चिह्न मिलते हैं। यकृत् का रंग पीला होता है। यकृत् की धातु (Tissue) मृदु हो जाती है और उसमें अंगुली से दबाव डालने पर अंगुली यकृत् में घुस जाती है।

हृदय और वृक्कों में भी 'वसागलन' होने के चिह्न मिलते हैं।

त्वचा और श्लैष्मिक कलाओं के नीचे तथा शारीरिक गुहाओं में रक्तस्राव पाया जायगा।

जीर्ण विष :—दियासलाई या फॉस्फोरस के कारखानों में काम करनेवालों में इस वस्तु के बाष्पों को सूंघते रहने से यह अवस्था उत्पन्न होती है। बढ़ती हुई कृशता और दौर्बल्य के साथ २ उदर में पीड़ा, वमन, अतीसार ये उपद्रव होते हैं।

विशेषतया फास्फोरस के बाष्पों का प्रभाव दातों पर होकर 'कृमिदंत' उत्पन्न होते हैं। कृमिदन्तों द्वारा या जहां दाँत न हों ऐसी जगहपर अधोहन्विकास्थि पर इन बाष्पों का प्रभाव होकर अस्थिकोथ (Necrois) उत्पन्न होता है। इस अधोहन्विका की विकृति को 'फॉसी जॉ (Phossy Jaw) कहते हैं। गर्भिणी स्त्रियों में प्रायः गर्भस्राव होता है।

चिकित्सा:—कारखानों में शुद्ध हवा आने का प्रबन्ध होना चाहिये। काम करने वालों के दाँतों को समय-समय पर 'कृमिदन्त' के लिये परीक्षा और उनकी योग्य चिकित्सा करनी चाहिये। पानी में सोडाबायकार्ब डालकर कवलग्रह करने से फॉस्फोरस-बाष्पों का प्रभाव दाँतों पर कम होता है।

छठा अध्याय

धातवीय क्षोभक विष।

(Metallic irritant Poisons)।

फेनाश्म (Arsenic)।

परिचय:—

यह एक ऐसी वस्तु है जिसको कि पाश्चात्य प्रणाली के चिकित्सक, वैद्य और हकीम सभी प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त चूहों वा अन्य जन्तुओं को मारने के लिये भी इसका बहुत प्रयोग होता है। इसके बहुत से यौगिक हैं जिनका यहाँ पर वर्णन करना आवश्यक है।

फेनाश्म के विभिन्न यौगिक

(१) आर्सिनियस आक्साइड (Arsenious Oxide)

इसका सूत्र $As_4 O_6$ है। इसे आर्सिनियस ऐसिड, श्वेत संखिया वा फेनाश्म भी कहते हैं। यह बेरवेदार अथवा स्फटिक के रूप में पाया जाता है। फेनाश्म के स्फटिक वर्णरहित और पारदर्शक होते हैं जो कुछ समय तक खुला रखने पर

श्वेत वर्ण के और अपारदर्शक हो जाते हैं। इसमें किसी प्रकार का स्वाद अथवा गन्ध नहीं होती। प्रायः जल में अविलेय होता है। इसका विशिष्ट घनत्व ३·६८९ होता है। यह मद्य और ग्लीसरीन में किंचित् घुलनशील है। इसके अतिरिक्त अम्लों एवं क्षारों में भी घुल जाता है। यह कृत्रिम पुष्पों और दीवार के कागजों के बनाने में तथा चित्रों के रंगने आदि के लिये अधिक प्रयोग किया जाता है। पतंग के कागज़ बनाने में भी इसका प्रयोग किया जाता है। चूहों तथा अन्य पशुओं को मारने के लिये जो चूर्ण और लेह बनाये जाते हैं, उनमें भी इसको डालते हैं। आर्सेनियस ऍसिड ब्रिटिश फार्माकोपिया की ओषधि है। इसका नाम उस ग्रन्थ में 'आर्सेनाईट्राय ऑक्सीडम्' है। इसकी ओषधि मात्रा १/१२ से १/६० ग्रेन है। फॉउलर का द्रव (Lguor Arsenicalis) यह भी इसी का द्रव है। इसकी ओषधि मात्रा २ से ७ मिनिम है।

(२) पोटाशियम आर्सेनाइट और सोडियम आर्सेनाइट



($K_3 A_5 O_3$)   ($Na_3 A_5 O_3$)

ये दोनों विषैले होते हैं और पतङ्ग के कागज़ आदि के बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। ओषधि के रूप में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

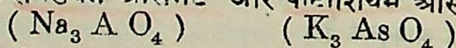
(३) कापर आर्सेनाइट ($Cu H As O_3$)

यह कृत्रिम पुष्पों, दीवार के कागजों, वस्त्रों, खिलौने और मिठाइयों को रञ्जित करने के लिये प्रयोग किया जाता है। यह जल में अविलेय है।

(४) आर्सेनिक ऐसिड ($H_3 As O_4$)

यह आर्सिनियम ऐसिड की अपेक्षा कम विषैला होता है और रंग तथा पतङ्ग के कागज के बनाने में प्रयोग किया जाता है।

(५) सोडियम आर्सेनेट और पोटाशियम आर्सेनेट



($Na_3 A O_4$)   ($K_3 As O_4$)

ये परहत्या और पशुहत्या के लिये प्रयोग किये जाते हैं।

(६) आर्सेनिक सल्फाइड्स

इसमें हरिताल (Yellow Arsenic, $As_2 S_3$) और मैनसिल (Red Arsenic, $As_2 S_2$) सम्मिलित हैं। ये दोनों खानों से निकाले जाते हैं और कृत्रिम रूप से भी बनाये जाते हैं। वैद्य लोग इसको रक्तविकृति वा त्वचा आदि के रोगों में अधिक प्रयोग करते हैं।

(७) आर्सेनिक डाइ क्लोराइड ($AsCl_3$)

यह वर्णरहित अति विषैला द्रव पदार्थ है। औषधि के रूप में अर्बुद की चिकित्सा के लिये प्रयुक्त होता है।

(८) आर्सीनियस आयोडाइड (AsI_3)

यह संखिया और आयोडीन के मिश्रण को गरम करके बनाया जाता है। यह नारंगी रंग के स्फटिक के रूप में होता है। त्वचा के रोगों में १/३२ से १/८ रत्ती की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। यह जल, मद्य, क्लोरोफार्म, ईथर और कार्बन बाई सल्फाइड में घुलनशील है।

फेनाश्म के ऐन्द्रिक यौगिक (Organic Compounds)।

१. कॅकोडिलिक ऐसिड (Cacodylic acid)
२. एटोक्सिल (Atoxyl)
३. सालवरसन (Salvarsan)
४. निआसालवरसन (Neo Salvarsan)
५. सिल्वर सालवरसन (Silver Salvarsan)
६. सल्फार्सफीनामीना (Sulpharsphenamina)

लक्षण:—विष खाने से कुछ ही देर से १ घण्टे के भीतर लक्षण उत्पन्न होते हैं। चक्कर मालूम होना, थकावट और जी मिचलाना ये प्रारम्भिक लक्षण हैं। बाद में दाह, तृष्णा और वमन-ये लक्षण उत्पन्न होते हैं। गला और आमाशय में तीव्र दाह और पीड़ा होती है जो दबाने से बढ़ती है। साथ २ तीव्र तृष्णा और वमन प्रारम्भ होते हैं जो अन्ततक जारी रहते हैं। वमन में प्रथम आमाशयिक पदार्थ और बाद में रक्तयुक्त श्लेष्मा निकलने लगता है। वमन हरा या नीला भी हो सकता है। गहरा काला या पीला भी होता है। हरिताल या अन्य संखिया के यौगिक पित्त के साथ मिलने से ये रङ्ग-परिवर्तन दिखाई देते हैं कभी २ वमन नहीं भी होता है।

दस्त—भी आने लगते हैं जिनमें प्रायः रक्त रहता है। मलत्याग के समय उदर में तीव्र शूल होता है और रोगी को बहुत कूंथना पड़ता है। प्रथम दस्त अत्यन्त दुर्गंधमय और भूरे या काले होते हैं। कुछ समय के बाद दुर्गन्ध और रंग भी जाते रहते हैं और उनका रूप बिलकुल विसूचिका या हैजे के मल के

समान होता है। टांगों में ऐंठन होती है और तीव्र उदरशूल के कारण श्वास लेने में कठिनाई होती है।

मूत्र—क्रमशः कम होता जाता है। मूत्रोत्सर्ग के समय भी दाह और पीड़ा होती है।

रोगी अत्यन्त बेचैन हो जाता है और अवसाद की अवस्था उत्पन्न होती है। शरीर पर शीतल स्वेद, मुख चिंतायुक्त, आंखें धसी हुई और मुख पीला या नीलिमायुक्त होता है। नाडी तीव्र गतियुक्त, दुर्बल और अनियमित होती है। श्वासकृच्छ्र होता है। अन्त में मृत्यु के पूर्व तन्द्रा, मूर्छा और आक्षेप भी होते हैं।

अत्यधिक मात्रा में विष खाने से कभी २ प्रारम्भ में ही अवसाद की अवस्था उत्पन्न होकर शीघ्र मृत्यु होती है। परन्तु क्वचित् अत्यधिक वमन होने से 'विष' का आमाशय से ही उत्सर्ग होता है इससे 'शोषण' न होने से रोगी बच जाता है।

कभी २ केवल नाडीसंस्थान पर ही विशेष प्रभाव दिखाई देते हैं (Narcotic Form)। वमन और विरेचन बिलकुल नहीं या अत्यल्प होते हैं। अकस्मात् चक्कर, अङ्गमर्द, तन्द्रा, प्रलाप ये लक्षण होकर शीघ्र मूर्च्छा होती है। नेत्र के तारे विस्फारित होते हैं। क्वचित् शाखाओं का 'पक्षाघात' (Paralysis) हो जाता है।

संखिया थोड़ी २ मात्रा में परन्तु लगातार लेने से लक्षण क्रमशः उत्पन्न होते हैं। गले में क्षोभ के कारण कास, उदर में आध्मान होने के साथ २ वमन और दस्त इत्यादि पूर्वोक्त लक्षण होते हैं। इसमें प्रान्तीय नाडीशोथ के लक्षण विशेष होते हैं। शारीरिक पेशियों में तीव्र पीडा और निद्रानाश भी होता है। रोगी के बचने पर नाडीशोथ चिरस्वरूप का जारी रहता है।

कभी २ हनुस्तम्भ, आक्षेप, प्रलाप ये उपद्रव होकर बोलने में अशक्ति, कर्णनाद, प्रकाशासह्यता और नेत्रों के अर्थग्रहण में विकृति, ये लक्षण उत्पन्न होते हैं। ज्वर हो जाता है और लालास्राव और श्वासकृच्छ्र होने लगते हैं। अन्त में श्वासावरोध से मृत्यु होती है।

घातक मात्रा —२ ग्रेन (१½ रत्ती)

घातक काल —१२ से २४ घण्टे तक।

सापेक्षिक निदानः—आमाशयान्तर्कला शोथ (Gastritis), क्षुद्रान्त-

कला शोथ (Enteritis), या दोनों कलाओं का शोथ (Gastro-Enteritis) इनके साथ संखिया विष के लक्षणों का कुछ साधर्म्य है। उदर की परिविस्तृत कला का शोथ उत्पन्न होने पर भी कुछ सदृश लक्षण उत्पन्न होते हैं। परन्तु विशेषतया संखिया विष के लक्षण तथा विसूचिका (Asiatic Cholera or Cholera Morbus) के लक्षणों में अधिकतर साधर्म्य होता है। इसी कारण निम्न सारिणी में इनमें भिन्नतादर्शक बातें दी गयी हैं।

फेनाश्म विष	विसूचिका
(१) इसमें एक, दो या इससे कुछ अधिक व्यक्ति अर्थात् जिन-जिन व्यक्तियों को विष दिया गया होगा, विष से आक्रान्त होंगे।	(१) प्रायः महामारी के रूप में किसी नगर, गाँव या बस्ती में विसूचिका का प्रसार होता है और बहुत से लोग विसूचिका-ग्रस्त मिलेंगे।
(२) रोगी को पहले वमन होती है और बाद में दस्त आते हैं।	(२) रोगी को पहले दस्त आते हैं और बाद में वमन होती है।
(३) वमन रक्तमिश्रित होती है और उसमें श्लेष्मा तथा पित्त का कुछ अंश पाया जाता है।	(३) वमन किया हुआ पदार्थ पानी की तरह पतला होता है और उस में श्लेष्मा, पित्त या रक्त नहीं होता।
(४) पहले रोगी के गले में पीड़ा होती है और बाद में वमन होती है।	(४) प्रायः गले में पीड़ा नहीं होती, यदि होती भी है तो वमन होने के बाद में।
(५) रोगी को पानी की तरह पतले दस्त आते हैं जिसमें रक्त और पित्त का कुछ अंश उपस्थित होता है। दस्त के समय रोगी को उदर-शूल वा गुद-संक्षोभ होता है।	(५) सदैव चावल के मण्ड की भांति ही दस्त आते हैं। इसमें पित्त वा रक्त अनुपस्थित होता है किन्तु कभी २ रक्त आता भी है।
(६) रोगी के कण्ठ-स्वर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।	(६) रोगी का कण्ठ—स्वर प्रायः भारी हो जाता है।
(७) वमन और दस्त किये हुये	(७) दस्त किये हुये पदार्थ का

पदार्थों का विश्लेषण करने पर उसमें फेनाश्म का कुछ अंश पाया जाता है ।

सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षण करने पर या उनकी 'जीवाणु-सम्वर्धन-क्रिया' (Culture) करने पर उसमें विसूचिका के जीवाणु (Coma Bacilli) पाये जाते हैं ।

चिकित्सा :—

(१) सर्व-प्रथम यदि अपने-आप वमन न हुआ हो तो वमन कराना चाहिये एतदर्थ ज़िंक सल्फेट (Zinc Sulphate), राई, एपोमार्फीन (Apomorphine) का इन्जेक्शन—इनमें से किसी का प्रयोग किया जा सकता है। तुत्थ का प्रयोग नहीं करना चाहिये ।

(२) जल्दी से जल्दी दूध और पानी मिलाकर आमाशय-प्रक्षालन-नलिका द्वारा आमाशय का प्रक्षालन करना ही सबसे अच्छा उपाय है। प्रक्षालन करने के बाद नलिका द्वारा हायड्रेटेडफेरिक ऑक्साइड का द्रव आमाशय में छोड़ना चाहिये। यह योग्य प्रतिविष है। इससे फेरिक आर्सेनाइट् (Feric Arsenite) नामक अघुलनशील तथा निष्क्रिय योग बनता है। 'हायड्रेटेड फेरिक ऑक्साइड के बनने में जो 'अवक्षेप' (Precipitate) बनता है उसको ४ ड्राम की मात्रा में बार बार खिलाना चाहिये। हायड्रेटेड फेरिक आक्साइड बनाने की विधि निम्नलिखित है :-

Hydrated Ferric Oxide Solution:—

Tinct Ferri Perchloride	OZ 3
(टिंचर फेरी पर क्लोरायड) (१½ छ०)	
Soda Bicarb	OZ 1
(सोडा बाई कार्ब) (½ छ०)	
Aqua (जल) (५½ छ०)	OZ 11

(३) कॅलसाइड मॅग्नेशिया तथा जान्तव कोयले के चूर्ण को मिलाकर प्रतिविष के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। डायलाइज्ड आयरन् (Dialysed Iron) का भी प्रतिविष के रूप में प्रयोग किया जाता है। १ या २ प्रतिशत खाने के सोडे के द्रव से भी आमाशय का प्रक्षालन करने से लाभ होता है ।

दस्त न हुआ हो तो एरण्ड तैल या मैग-सल्फेट १ औंस देना चाहिये ।

(४) अण्डे की सफेदी, दूध इत्यादि स्निग्ध तथा शामक औषधियाँ देनी चाहिये।

(५) शरीर के ताप की रक्षा के लिये उष्णोदक से भरी बोतलों का प्रयोग करना चाहिये।

(६) यदि पीड़ा अधिक हो, तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगा देना चाहिये।

(७) शरीर में उत्तेजना पहुँचाने के लिये स्ट्रिक्नीन का इन्जेक्शन दिया जा सकता है।

(८) अत्यधिक वमन और दस्तों से शरीर का द्रव और अन्य क्षार कम होते हैं और मूत्र की मात्रा भी कम होती जाती है। अतः सामान्य लवणद्रव (Normal saline) तथा ग्लूकोज का प्रयोग त्वचाद्वारा या शिराद्वारा अवश्य करना चाहिये।

(९) सोडियम थायो सल्फेट का १० प्रतिशत घोल से ७½ ग्रेन की मात्रा में शिरा द्वारा प्रयोग रोज १ बार करना चाहिये।

(१०) 'बाल' (BAL) का प्रयोग निदान होते ही यथाशीघ्र करना चाहिये।

'बाल' (BAL):—इसका पर्यायवाचक नाम डीमरक्याप्टॉल (Demercaptol) या डीमरकॅप्रॉल (Dimercaprol) है। यह संखिया के लिये विशेष परिणामकारक 'प्रतिविष' सिद्ध हुआ है। लिवीसाइट (Lewisite) नामक संखियायुक्त गैस का प्रयोग द्वितीय महायुद्ध में होता था। इस गैस के शारीरिक प्रोटीन पर विषैले प्रभाव को रोकने के लिये तथा प्रोटीन के साथ सम्बन्धित विष का शरीर से उत्सर्ग बढ़ाने के लिये इंग्लैण्ड में इस पदार्थ का 'प्रतिविष' के रूप में आविष्कार हुआ और युद्धकाल में इसका प्रयोग बड़ा यशस्वी हुआ। युद्धकाल के बाद इसका प्रयोग 'पारद विष' तथा 'सुवर्ण' के विषैले प्रभाव को ठीक करने के लिये भी बहुत यशस्वी सिद्ध हुआ है। इङ्गलैंड में इसका आविष्कार हुआ इसलिये इसको 'ब्रिटिश अंटी लिवीसाइट' (British Anti Lewisite, BAL) कहते हैं।

यह तेल में औषधि का १० प्रतिशत घोल होता है जिसमें २० प्रतिशत बेन्झिल बेन्झोट (Benzyl Benzoat) मिला रहता है। इसके १ सी. सी. में १०० मिलीग्राम औषधि होती है।

इन्जेक्शन हमेशा पेशी में (Intramuscular) दिया जाता है। आत्ययिक काल में शिराद्वारा प्रयोग के लिये इसका विशेष विलयन (Bal. In-Travenous) बाजार में आता है—उसका प्रयोग करना चाहिये।

मात्राः—विष का परिणाम अत्यधिक हो तो—

एक किलोग्राम शरीर के वजन के लिये ३ मिलीग्राम औषधि इस परिमाण में १ इन्जेक्शन के लिये पूर्णमात्रा का निश्चय करना चाहिये (3Mg/kg of body weight/dose).

प्रथम और द्वितीय दिन—१ इन्जेक्शन हर ४ घण्टों पर-दिन-रात।

तृतीय दिन—१ इन्जेक्शन हर ४ घण्टों पर दिन-रात।

चौथे दिन से जब तक पूर्ण स्वस्थ न हो—१ इन्जेक्शन हर १२ घण्टों में प्रायः १० दिन तक या जब तक पूर्ण स्वस्थ न हो।

विष का परिणाम अधिक न हो तो—

एक किलोग्राम शरीर के वजन के लिये २½ मिलीग्राम औषधि इस परिमाण में १ इन्जेक्शन के लिये पूर्ण मात्रा का निश्चय करना चाहिये 2·5 Mg/keg of body weight/dose)।

प्रथम और द्वितीय दिन—१ इन्जेक्शन हर ४ घण्टों पर दिन भर में ४।

तृतीय दिन—१ इन्जेक्शन सुबह और शाम को।

चतुर्थ दिन में—१ इन्जेक्शन रोज, १० दिन तक या पूर्ण स्वस्थ होने तक।

'बाल' के कुछ दुष्परिणामः—हृल्लास, वमन, शिर-शूल, अंगमर्द तथा दाह ये विशेष उपद्रव इन्जेक्शन देते ही कभी २ होते हैं। परन्तु प्रायः आधा घण्टे में शान्त होते हैं ये उपद्रव अधिक काल तक रहने पर 'बार्बिटयुरेटस्' का प्रयोग करने से लाभ होता है।

मृत्यूत्तर रूपः—

हृदय में जमा हुआ रक्त मिलेगा। आमाशय की श्लैष्मिक कला रक्त वर्ण की होगी और कला के नीचे रक्तस्राव पाया जायेगा। आमाशय की भित्ति में फेनाश्म के कण चिपटे हुये मिलेंगे (यदि वह चूर्ण या ढेले के रूप में खाई गई हो।) कभी-कभी आमाशय में छिद्र हो जाते हैं। अन्त्र की श्लैष्मिक कला

शोथयुक्त होगी और उसके नीचे रक्तस्राव पाया जायगा। मलाशय की श्लैष्मिक कला में तीव्र शोथ हो सकता है। प्रायः फुफ्फुस, यकृत्, प्लीहा और वृक्कों में थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य पाया जाता है।

जीर्णविष.—बहुत समय तक लगातार संखिया खाने से या तीव्र विषयुक्त अवस्था के बाद बचने पर भी यह अवस्था उत्पन्न होती है। जिन कारखानों में संखिया किसी न किसी रूप में प्रयुक्त होता है ऐसे कारखानों में काम करने से या दिवारों पर लगाने के रङ्गीन कागजों के अधिक दिन सम्पर्क आने से जीर्ण विष के लक्षण होते हैं।

अभ्यास के लिये लक्षण ४ अवस्थाओं में बाटे जा सकते हैं। (१) प्रथम अवस्था में पाचन-संस्थान के लक्षण जैसे-अग्निमांद्य, अरुचि, मसूड़ों का फूलना, लालास्राव के लक्षण होते हैं। उदरशूल और विबन्ध प्रायः होते हैं परन्तु क्वचित वमन और दस्त भी होते हैं। ज्वर भी हो जाता है। (२) दूसरी अवस्था में स्वरयन्त्र तथा श्वासनलिकाओं में शोथ के कारण खाँसी और स्वरभेद तथा त्वचा में अनेक प्रकार की पिडिकाएँ उत्पन्न होती हैं। खाँसी में कभी २ रक्त भी आता है। नासा से जलस्राव और नेत्र लाल होते हैं। त्वचा की पिडिकाएँ विशेषतया वृषण, वंक्षण तथा कक्षासन्धियों में दिखाई देती हैं। कुछ दिनों के बाद उपत्वचा का उत्सर्ग होने लगता है। नख और बाल ढीले होकर गिरने लगते हैं। (३) तीसरी अवस्था में नाडीसंस्थान पर प्रभाव होता है। शिरःशूल, त्वचा का स्थान २ पर चेतनाहीन होना, पेशिओं में पीडा और संभोगशक्ति का ह्रास ये विशेष उपद्रव होते हैं। कभी २ त्वचा पर अत्यधिक स्वेद आता है। (४) चौथी अवस्था में पेशियों में पक्षाघात (Paralysis) होना विशेष उपद्रव है। पेशियाँ दुर्बल हो जाती हैं। चलने में कठिनाई होती है। 'पेशीक्षय' होने लगता है। अन्त में पेशियों में कंपन और चलने में असमर्थता होती है और हृत्पेशीदौर्बल्य से मृत्यु होती है।

चिकित्सा:—कारण को हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। ओषधि रूप में खाने के लिये पोटाशियम आयोडाइड का प्रयोग किया जाता है। सोडियम या कॅलशियम थायोसल्फेट (Sodium or Calcium Thiosulphate) का रोज शिरा द्वारा इञ्जेक्शन देना चाहिये। निदान होते ही 'बाल' (BAL) का योग्य मात्रा में प्रयोग करने से अधिक लाभ होता है।

नीलाञ्जन (Antimony)।

अञ्जन के निम्नलिखित यौगिक होते हैं :—

(१) एण्टीमनी टार्टरैटम (Antimony tartaratum):—

इसे पोटाशियम एण्टीमनी टार्टरेट (Potassium antimony tartarate) भी कहते हैं। यह वर्णरहित पारदर्शक स्फटिक अथवा श्वेत चूर्ण के रूप में पाया जाता है। इसमें लगभग ३५ प्रतिशत धातवीय अञ्जन (Sb) होता है। इसका स्वाद किञ्चित् आम्लिक और धातु का सा होता है। जल में घुलनशील है किन्तु मद्य में नहीं घुलता। स्वेदल गुण के लिये १/६४ से १/१६ रत्ती की मात्रा में और वामक गुण के लिये १/४ से १/२ रत्ती की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। कभी-कभी भूल से मैगनेशियम सल्फेट, सोडा बाई कार्ब और टार्टेरिक ऐसिड के स्थान में इसे प्रयोग करते हुये देखा गया है। पशु-चिकित्सा में भी इसका प्रयोग होता है।

(२) एण्टीमोनियस आक्साइड (Antimonious oxide) अथवा एण्टीमनी ट्राई आक्साइड (Antimony trioxide, $Sb_2 O_3$):—

यह कपिल श्वेत चूर्ण के रूप में पाया जाता है। इसमें किसी प्रकारकी गन्ध अथवा स्वाद नहीं होता। औषधि के रूप में १/२ से १ रत्ती की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। यह जल में प्रायः अघुलनशील और लवणाम्ल (HCl) में घुलनशील है।

(३) एण्टीमनी ट्राई क्लोराइड (Antimony trichloride, $Sb_2 Cl_3$):— यह एक वर्णरहित द्रवित हो जाने वाला स्फटिकीय पदार्थ है। ७४° से० पर यह तेल की तरह पीत वर्ण का द्रव हो जाता है। खाने पर यह एक तीव्र दाहक की भांति कार्य करता है वा अञ्जन विष के अन्य लक्षण उत्पन्न करता है।

(४) एण्टीमनी ट्राई सल्फाइड (Antimony trisulphide, $Sb_2 S_3$):— यह बाजार में काला सुरमा के नाम से मिलता है। इसमें अशुद्धि के रूप में किञ्चित संखिया पाया जाता है।

(५) एण्टीमनी हाइड्राइड या स्टिबिन (Antimony hydride or Stabin, $Sb H_3$):— यह वर्णरहित विषैली गैस होती है।

व्यवहारायुर्वेद की दृष्टि से एण्टीमनी टार्टरेटम का विशेष महत्त्व है।

लक्षण:—

मुँह में धातवीय स्वाद मालूम होता है। जी मचलाने लगता है। वमन होने लगती है। आमाशय में दाहयुक्त पीड़ा होती है। विरेचन होता है। नाड़ी मन्द हो जाती है। त्वचा शीतल और स्वेद युक्त होती है। श्वासक्रिया में कठिनता और पीड़ा होती है। मूर्छा उत्पन्न हो जाती है। हृदयावसाद होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा:—५ से १० रत्ती। घातक काल:—१० से ६० घंटे।

चिकित्सा:—

(१) यदि वमन न होती हो तो वामक औषधियों से वमन कराना चाहिये।

(२) प्रतिविष के रूप में टैनिकाम्ल (Tannic acid) १५ से ३० रत्ती की मात्रा में देना चाहिये। एतदर्थ गैलिकाम्ल (Gallic acid), प्रबल चाय (Strong tea) अथवा 'काफी' भी प्रयोग की जा सकती है।

(३) दूध, अंडे की सफेदी, जैतून का तेल इत्यादि स्निग्ध तथा शामक औषधियाँ देनी चाहिये।

(४) यदि पीडा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाया जा सकता है।

(५) उत्तेजक औषधियाँ देनी चाहिये। एतदर्थ स्ट्रिकनीन का इन्जेक्शन लगाया जा सकता है।

मृत्यूत्तर रूप:—

आमाशय और पक्वाशय की श्लैष्मिक कलाओं में रक्तिमा और शोथ पाये जाते हैं। कलाओं के नीचे रक्तस्राव भी पाया जा सकता है। आमाशय में व्रण मिल सकते हैं अथवा वह शोथयुक्त हो सकता है। प्रायः मलाशय में छोटे-छोटे व्रण पाये जाते हैं। यकृत्, प्लीहा, वृक्क और मस्तिष्क की श्लैष्मिक कलाओं में प्रायः रक्ताधिक्य होता है।

पारद (Mercury)।

परिचय:—

यह एक धातु है जो कि द्रवरूप में प्राप्त होता है। पारद का स्वरूप पिघली हुई चाँदी की तरह होता है। इसका वर्ण श्वेत और विशिष्ट घनत्व १३·५९ होता है। यह—३९° से० पर जमता और ३५९° से० पर उबलता है। स्वतन्त्र रूप में

पारद बहुत कम मात्रा में प्रकृति में पाया जाता है। साधारणतया हिंगुल से पारद प्राप्त किया जाता है। इसका बाष्प बहुत विषैला होता है। अतः पारद के कारखानों में काम करनेवाले व्यक्तियों में पारद के जीर्ण विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। पारद के निम्नलिखित लवण होते हैं:—

(१) मरक्यूरिक क्लोरायड (Mercuric chloride. $Hg\,Cl_2$) पर्याय:—Corrosive sublimate, Perchloride of mercury और रसकर्पूर।

यह श्वेत वर्ण के स्फटिकीय ढेर के रूप में होता है। यह जल, ग्लीसरीन, मद्य और ईथर में घुलनशील होता है। गरम करने पर यह पिघलकर वर्णरहित तरल के रूप में हो जाता है और फिर इसमें से श्वेत वर्ण का धूम निकलने लगता है और इस प्रकार से सारा रसकर्पूर धूम में परिणत होकर उड़ जाता है। यह बहुत ही विषैली वस्तु है। १/६४ से १/३२ रत्ती की मात्रा में उपदंश के लिए विशेष रूप से प्रयोग की जाती है। अधिक मात्रा में विष का कार्य करती है।

(२) मरक्यूरस क्लोराइड (Mercurous chloride, $Hg\,Cl$)

इसे कैलोमल (Calomel), सब क्लोराइड आफ मर्करी (Subchloride of mercury), रसपुष्प अथवा हीरकद्युति भी कहते हैं। यह धुँधला श्वेत वर्ण का स्वादहीन चूर्ण होता है। जल, मद्य अथवा ईथर में अविलेय होता है। गरम करने पर बिना पिघले ही यह उद्धनित (Sublime) हो जाता है। यह रेचक औषधि के रूप में १/४ से १ १/२ रत्ती तक की मात्रा में प्रयोग किया जाता है।

(३) यलो मरक्यूरिक आक्साइड (Yellow Mercuric oxide or $Hg\,O$):—यह पीत वर्ण का चूर्ण होता है। जल में अविलेय होता है। इसे मलहमों के विभिन्न योगों में डालते हैं।

(४) रेड मरक्यूरिक आयोडाइड (Red Mercuric iodide, $Hg\,I_2$):—यह सिन्दूर की तरह रक्तवर्ण का चूर्ण होता है और जल में प्रायः अविलेय होता है। चिकित्सा में १/६४ से १/३२ रत्ती की मात्रा में प्रयुक्त होता है।

(५) ओलियेटेड मर्करी (Oleated mercury):—यह किञ्चित् पीतवर्ण का चिकना पदार्थ होता है। इसे मलहम बनाने में प्रयोग करते हैं।

(६) अमोनियेटेड मर्करी (Ammoniated Mercury, $N\,H_2$

Hg Cl):—यह श्वेत वर्ण का गन्धरहित चूर्ण होता है और जल, मद्य तथा ईथर में अविलेय होता है।

(७) मरक्यूरिक आक्सीसाइनाइड (Mercuric oxycyanide):—यह श्वेत वर्ण का स्फटिकीय चूर्ण होता है। जल में करीब-करीब घुल जाता है।

पारद के अन्य लवण

(८) मरक्यूरस आक्साइड (Mercurous Oxide, Hg_2O)

(९) मरक्यूरस नाइट्रेट [Mercurous Nitrate, $Hg_2(No_3)_2$]

(१०) मरक्यूरस सल्फेट (Mercurous Sulphate) $Mg_2 So_4$)

(११) मरक्यूरिक नाइट्रेट [Mercuric Nitrate, $Hg(No_3)_2$]

(१२) मरक्यूरिक सल्फाइड (Mercuric Sulphide, Hg S)

इसमें हिंगुल और रससिंदूर दोनों सम्मिलित हैं।

(१३) मरक्यूरिक सल्फेट (Mercuric Sulphate, $Hg So_4$)

लक्षण:—

खाने के पश्चात् शीघ्र ही या अधिक से अधिक १½ घण्टे के भीतर लक्षण प्रारम्भ होते हैं। रोगी मुँह से धातवीय स्वाद बताता है और मुह, गला और आमाशय में क्षोभ होने से तीव्र दाहयुक्त पीड़ा और स्वरभेद ये उपद्रव होते हैं। मुँह से राल टपकने लगती है, मसूड़े सूज जाते हैं और उनसे दुर्गन्धित रक्त-मिश्रित पूय आने लगता है। दाँत ढीले पड़ जाते हैं। साथ २ मुँह और कण्ठ में क्षोभ होकर शोथ के लक्षण उत्पन्न होते हैं। श्वास लेने में भी कठिनाई होती है। जी मिचलाने लगता है और वमन प्रारम्भ हो जाते हैं। वमन में रक्तमिश्रित श्लेष्मा अधिक होता है। इसके बाद 'दस्त' प्रारम्भ होते हैं। दस्त के समय तीव्र उदरशूल और कूंथन होता है। मूत्र की मात्रा क्रमशः कम हो जाती है या 'मूत्राघात' होता है। मूत्र में रक्त तथा अल्ब्यूमिन मिलता है। नाडी की गति बढ़ जाती है और नाडी दुर्बल तथा अनियमित हो जाती है। हृदयावसाद के लक्षण प्रारम्भ होते हैं। शरीर में शीतल स्वेद और श्वासकृच्छ्र होता है। कभी २ मृत्यु के पूर्व कंपन, आक्षेप, तन्द्रा तथा मूर्छा ये उपद्रव होते हैं।

यदि रोगी ५-६ दिन तक बच जाता है तो कोथयुक्त अंत्रशोथ से पीडित होता है।

सापेक्षिक निश्चिति :—संखिया तथा पारद विषों के लक्षणों में साधर्म्य होता है। पारद विष के लक्षण शीघ्र प्रारम्भ होते हैं। मुंह में धातवीय स्वाद और गले में क्षोभ तथा अवरोध ये उपद्रव पारद विष में अधिक होते हैं। वमन और दस्त में रक्त प्रायः अधिक होता है। वृक्कशोथ भी पारद विष में अधिक होता है।

घातक मात्रा :—रसकर्पूर—३ से ५ ग्रेन (१½ से २½ रत्ती) मरक्यूरिक आक्सीसायनाइड—१० रत्ती।

घातक काल :—१ से ५ दिन। कम से कम ½ घण्टा।

चिकित्सा :—

(१) सर्वप्रथम अण्डे की सफेदी, दूध इत्यादि एल्ब्यूमिन युक्त पदार्थों को रोगी को पिलाना चाहिये। इससे अल्ब्यूमिनेट ऑफ मर्करी (Albuminate of mercury) बनता है जो पानी में अघुलनशील परन्तु अधिक अल्ब्यूमिन में घुलनशील होता है।

(२) अल्ब्यूमिनेट ऑफ मर्करी को निकालने के लिये नलिका से तुरन्त आमाशय का प्रक्षालन कर देना चाहिये।

(३) जांतव कोयले का चूर्ण तथा मॅगसल्फेट पानी में मिलाकर पर्याप्त मात्रा में पीने के लिये देना चाहिये।

(४) सोडियम थायोसल्फेट तथा 'बाल' (BAL) का प्रयोग यथाविधान शीघ्र प्रारम्भ करना चाहिये। इनकी प्रयोगविधि संखिया विष की चिकित्सा में दी हुई है। सोडियम फार्मालिडहाइड सल्फाक्सिलेट (Sodium formaldehyde Sulphoxylate) का प्रयोग प्रतिविष के रूप में करने से कुछ रोगियों को लाभ हुआ है परन्तु प्रथम दो औषधियों के होते हुए इसकी आवश्यकता नहीं होती।

(५) जौ के पानी अथवा आटे को जल में घोलकर पिलाना चाहिये।

(६) शरीर के ताप की रक्षा के लिये उष्णोदक से भरी बोतलों का प्रयोग करना चाहिये।

(७) हृदयावसाद की अवस्था में स्ट्रिक्नीन आदि के इन्जेक्शन देना चाहिये।

(८) यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिये।

मूत्राघात, शरीरमें द्रव की तथा लवणों की कमी, श्वासकृच्छ्र इत्यादि उपद्रवों की सामान्य चिकित्सासूत्रों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप:—

मुख और गले की श्लैष्मिक कलायें धुँधली, श्वेत अथवा कपिल वर्ण की और कड़ी होती हैं। आमाशय की श्लैष्मिक कला स्लेटी भूरे रंग की और कड़ी होती है। कभी-कभी इसका रंग काला हो जाता है। आमाशय में प्रायः गाढ़े-चिपचिपे, भूरे-काले रंग का तरल पदार्थ पाया जाता है। यदि रोगी विषाक्त होने के कुछ दिन बाद मरे तो आमाशय की श्लैष्मिक कला पृथक् हो जाती है और कला के नीचे की धातुओं में व्रण पाये जाते हैं। कभी-कभी आमाशय में छिद्र भी हो जाते हैं। मलाशय की श्लैष्मिक कला रक्त वर्ण की और शोथयुक्त होती है। वृक्कों का आकार बढ़ जाता है और उनमें रक्ताधिक्य हो जाता है तथा रक्तस्राव मिलता है।

पारद का जीर्ण विष

(Chronic Poisoning)

कारण:—

पारद के बाष्पीय वातावरण में अधिक समय तक रहने से जीर्ण विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। पारद का मलहम या मुख द्वारा पारद का प्रयोग लगातार अधिक मात्रा में करने से भी जीर्ण विष के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

लक्षण:—

उदर में शूल, हृल्लास तथा वमन प्रारम्भ होते हैं। मसूढ़े फूल जाते हैं। मुँह से अत्यधिक लालास्राव (Ptyalism) और दुर्गन्धयुक्त स्राव होता है। मसूढ़े और दाँतों के मध्य स्थान में नीली रेखा दिखाई देती है। दांत ढीले पड़ जाते हैं। अस्थि और दाँतों में भी कृमि (Necrosis) युक्त अवस्था होती है। दस्त भी होते हैं। क्रमशः दौर्बल्य और पांडु बढ़ते जाते हैं। त्वचा में भिन्न प्रकार की पिडिकाएं होती हैं। हाथ और पैरों में कम्पन होने लगते हैं (Mercurial Tremors)। जिह्वा तथा मुख की पेशियों में भी कम्पन होते हैं। शाखाओं में पक्षाघात भी होता है। कभी मानसिक विकृति उत्पन्न होकर मानस रोग के लक्षण उत्पन्न होते हैं। खांसी होती है और खाँसी के साथ रक्तयुक्त श्लेष्मा निकलता है। फुफ्फुस, वृक्क तथा नाडीसंस्थान की विकृति के कारण चिरकालीन रुग्णावस्था से प्रायः मृत्यु होती है।

चिकित्सा:—सर्वप्रथम कारण को हटाना चाहिये। मुँह को ठीक करने के लिये, पोटॅशियम क्लोरेट तथा हायड्रोजन पेराक्साइड से कवलग्रह कराना चाहिये। दस्त न होते हों तो मॅग्-सल्फेट देना चाहिये। त्वचा से उत्सर्ग बढ़ाने के लिये उष्णोदक से स्नान करना उचित है। पीने के लिये पर्याप्त मात्रा में दूध देना चाहिये।

पारद का विषैला प्रभाव कम करने के लिये तथा विषोत्सर्ग बढ़ाने के लिये (१) सोडियम थायोसल्फेट तथा (२) 'बाल' का प्रयोग शीघ्र करना चाहिये। (प्रयोग विधि और मात्रा 'संखिया विष' की चिकित्सा में देखें)।

योग्य मात्रा में 'पोटॅशियम आयोडाइड' का प्रयोग करना चाहिये।

पक्षाघात के लिये तैल या विद्युत् से मर्दन कराना चाहिये। कम्पन के लिये 'बार्बिट्युरेट्स' का प्रयोग कर सकते हैं।

नाग (Lead)

सीस, ब्रध्न, व्रप्र, योगेष्ट और सांप के जितने नाम हैं, वे सब सीसे के नाम हैं। इसे लेड (Lead) अथवा प्लम्बम (Plumbum) भी कहते हैं।

परिचय:—

सीसा नील-कपिल वर्ण का एक अपारदर्शक, गन्धरहित, स्वादरहित, मृदु, ठोस पदार्थ है जिसमें एक प्रकार की धातवीय चमक होती है। यह जल में अविलेय होता है। कागज पर रखकर घिसने से काला निशान बना देता है। ३३०° से० तक गरम करने पर पिघल कर तरलावस्था में हो जाता है और उसके ऊपर एक काले मैल 'लेड आक्साइड' (Lead oxide) की परत सी चढ़ जाती है। इसका विशिष्ट घनत्व ११·३ होता है। इसके भिन्न-भिन्न लवण चित्र को रंगने, छापने इत्यादि के काम में प्रयोग किये जाते हैं। औषधि के रूप में नाग के निम्नलिखित लवण प्रयोग में लाये जाते हैं:—

(१) प्लम्बाई ॲसीटास (Plumbi Acetas):—

यह श्वेत वर्ण का स्फटिकीय पदार्थ होता है। इसका स्वाद मधुर होता है और इसमें से सिरके की तरह गन्ध आती है। इसका १ भाग जल के २½ भाग और ९० प्रतिशत मद्य के ३० भाग में घुलनशील है। ¼ से १ रत्ती तक की मात्रा में प्रयोग किया जाता है। इससे सपोजीटोरियम प्लम्बाई कम्पाउन्ड (Suppositorium plumbi Compound) नामक योग तैयार किया जाता है।

(२) लाइकर प्लम्बाई सबअॅसीटेटिस फोर्टिस (Liqr plumbi Subacetatis Fortis):—

यह स्वच्छ, वर्णरहित, क्षारीय द्रव होता है। स्वाद मधुर और प्रतिक्रिया क्षारीय होती है। इसका विशिष्ट घनत्व १-२८ होता है। इससे लाइकर प्लम्बाई सब असीटेटिस डाल्यूटस (Liqr plumbi Subacetatis dilutus) नामक योग बनाया जाता है।

(३) प्लम्बाई मानो आक्साइडम् (Plumbi Monoxidum):—

इसे लिथार्ज (Litharge), मृद्दारसङ्ग या मुर्दासङ्ग भी कहते हैं। यह पीला और ईंट की तरह लाल रंग का अथवा पीला और नारंगी की तरह लाल रंग का चूर्ण होता है। यह हल्के शोरकाम्ल और एसिटिकाम्ल में घुल जाता है और जल में प्रायः अनघुल रहता है। इससे ऐमप्लास्ट्रम प्लम्बाई (Emplastrum plumbi), पिल्यूला प्लम्बाई कम ओपाई (Pilula Plumbi Com Opii), अन्जेण्टम प्लम्बाई ओलिऐटिस (Ungentum plumbi Oleatis), इत्यादि योग बनाये जाते हैं।

लक्षण:—

विष खाते ही मुखमें धातवीय स्वाद तथा कण्ठशोष और तीव्र तृष्णा होती है। शीघ्र ही वमन प्रारम्भ होते हैं। वमन में रक्त या केवल श्लेष्मा होता है। रह रह कर तीव्र उदरशूल होता है जो दबाने पर कुछ शान्त होता है (Colicky Pains)। तीव्र विबन्ध होता है और उदर की दीवार सिकुड़ी हुई तथा उसमें स्पर्शासह्यता होती है। क्वचित् दस्त होते हैं जो लेड-सल्फाइड के बनने से तीव्र दुर्गन्धियुक्त और काले होते हैं। मूत्र की मात्रा कम होती जाती है। जिह्वा शुष्क, मैली और श्वास-प्रश्वास में दुर्गन्ध आती है। अत्यन्त दौर्बल्य होकर अवसाद की अवस्था उत्पन्न होती है। चर्म पर शीतल स्वेद तथा नाडी तीव्र गति युक्त तथा दुर्बल होती है। निद्रानाश, तन्द्रा, शिरःशूल, चक्कर आना, पेशियों में आकस्मिक-संकोच तथा शून्यता और आक्षेप तथा पक्षाघात ये नाडीसंस्थानकी विकृति के भिन्न २ उपद्रव होते हैं। कृशता बढ़ती जाती है और चिरकाल तक बढ़ते हुए दौर्बल्य से मृत्यु होती है।

नाग का जीर्ण विष।

(Chronic Poisoning)

कारण—

सीस के कारखानों में काम करने से और चित्रकारी आदि के कारण सीस के जीर्ण विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। पानी के नल बैठाने वाले (Plumbers), पेंटर्स, छापाखाने में टाइप जोड़ने वाले (Compositors), एन्यामल, ग्लास तथा बिजली के कारखानों में काम करने वालों में जीर्ण विष होने की सम्भावना होती है। टीन के डब्बों में रखा हुआ सामान खाना, शीशे के बर्तन में रखा पानी लगातार पीना, बालों के रंगने के पदार्थ जिसमें शीशा होता है उनका प्रयोग करना इन सब बातों से जीर्ण विष उत्पन्न होते देखा गया है। कलई किये हुए बर्तनों में खट्टे पदार्थ रखने से या कलई के बर्तनों में पकाया भोजन लगातार कुछ महीनों तक खाने से क्वचित् जीर्णविष प्रकट होने के उदाहरण हैं। कलई में रांगे (Tin) के साथ कभी २ शीस भी मिला रहता है इसीसे विषैला परिणाम होता है। जो स्त्रियाँ मांग में सिन्दूर लगाती हैं उनमें भी धीरे २ शीस के जीर्ण विष के लक्षण देखे गये हैं। मांग के सिन्दूर के साथ बालों का तेल मिलने से सिन्दूर में कुछ अंश में उपस्थित शीस साबुन के रूप में परिवर्तित होकर उससे जीर्ण विष की अवस्था उत्पन्न होते देखा गया है।

लक्षणः—

मसूड़ों पर कृष्णवर्ण की रेखा का होना—यह मुख में स्थित हायड्रोजन सल्फाईड के साथ शीसके मिलने से लेड सल्फाईड बनता है, उसके कारण होती है। रोगी क्रमशः पांडुवर्ण, दुर्बल तथा निस्तेज होता जाता है। आध्मान, अजीर्ण, अग्निमान्द्य तथा विबन्ध ये उपद्रव होने लगते हैं। ब्लड् प्रेशर बढ़ता है और नाडी मन्द होती है। रक्त के लाल कणों में पंक्टेट बेसोफायलिया (punc- tate baso-philia) मिलता है। सामान्य धमनीदार्ढ्य (Arterio- Sclerosis) दिखाई देता है। वृक्कशोथ होकर मूत्र में अल्ब्यूमिन मिलता है। स्त्रियों में मासिक रजःस्राव में विकृति होती है और स्त्री-पुरुष दोनों में प्रजोत्पादन-क्षमता नष्ट होती है।

शारीरिक भिन्न-भिन्न संस्थानों में निम्न मुख्य उपद्रव उत्पन्न होते हैं :—

(१) पाचनसंस्थानः—तीव्र विबन्ध तथा उदरशूल जो उदर को दबाने से

शमन होता है, ये विशिष्ट लक्षण हैं। शूल नाभि के चारों ओर विशेषतया कुन्थन के रूप में होता है। उदर की पेशियां संकुचित और कड़ी होती हैं। विबन्ध के साथ श्वास से दुर्गन्ध और अग्निमान्द्य ये लक्षण भी होते हैं।

(२) सन्धिशूल (Arthralgia):—जानु-कूर्पर तथा स्कन्ध जैसे बड़े जोड़ों में रह-रहकर तीव्र शूल होता है। भिन्न २ अस्थियों में भी पीड़ा होती है। परन्तु छोटे जोड़ों में नहीं होती। पेशियों में भी आकस्मिक सङ्कोच तथा कम्पन होते हैं।

(३) नाडीसंस्थान के उपद्रव (Encephalopathy):—निद्रानाश, शिर:शूल, चक्कर आना, दृष्टिमान्द्य या नेत्रों के अर्थग्रहण में विकृति ये लक्षण प्रारम्भ होते हैं। आगे प्रलाप, उन्माद, आक्षेप तथा मूर्छा ये उपद्रव भी होते हैं। स्त्रियों के योनिमार्ग में आकस्मिक संकोच (Vaginismus) तथा गर्भिणी में गर्भपात के उपद्रव भी होते हैं और पुरुषों में षंढता होती है।

(४) पक्षाघात (Paralysis):—अग्रबाहु की प्रसारक पेशियों का पक्षाघात हो जाता है (Wrist drop) जिससे हाथ नीचे को झुक जाता है और अंगुलियाँ भीतर की ओर मुड़ जाती हैं (Claw Shaped hand) कुछ समय के पीछे पांव की पेशियों में भी यही अवस्था होती है (Dropped foot)। अन्त में पेशियों का क्षय होने लगता है और संक्षेप में 'बाल पक्षाघात' (Acute Anterior Polyo-myelitis) की सी दशा होती है। इस अवस्था के पहिले कम्पन भी होते हैं।

घातक मात्रा:—लेड ऍसिटेट—१ औन्स (½ छटाँक)

घातक काल:—२ से ५ दिन।

चिकित्सा:—

(१) मैगनेशियम सल्फेट (Magnesium Sulphate) अथवा सोडियम सल्फेट (Sodium Sulphate) के घोल को पिलाना चाहिये। इससे 'लेड सल्फेट' बनता है जो अघुलनशील है। इसके बाद सामान्य जल से भी आमाशय प्रक्षालन कर सकते हैं। पानी में द्रव मिश्रित 'अगन्धकाम्ल' (Dilute Sulphuric Acid) को मिलाकर उससे आमाशय का प्रक्षालन करने से भी यही क्रिया होती है।

(२) यदि आमाशय का प्रक्षालन न किया हो तो जिंक सल्फेट (Zinc Sulphate) से अथवा एपोमार्फीन (Apomorphine) का इन्जेक्शन लगाकर वमन कराना चाहिये ।

(३) दूध, जौ का पानी, अण्डे की सफेदी इत्यादि स्निग्ध या शामक औषधियां देनी चाहिये ।

(४) यदि पीड़ा अधिक हो, तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिये ।

(५) केलशियम क्लोराइड या १० प्रतिशत केलशियम ब्रोमाइड की ८ से १० सी० सी० धीरे २ शिरा द्वारा उदरशूल में दिया जाता है ।

(६) शिरा द्वारा सोडियम थायोसल्फेट यथाविधान एक बार लगभग १ हफ्ते तक प्रयोग करने से लाभ होने की संभावना होती है ।

जीर्ण-विष की चिकित्सा:—

(१) कारण का खोज करके उसको हटाने का प्रयत्न करना चाहिये ।

(२) दिन भर में २० से ३० ग्रेन तक सोडावायकार्ब ४-५ मात्रा में विभाजित करके खाने को देना चाहिए । इसके साथ मिलकर धातुगत शीस का घुलनशील योग बन जाता है । बाद में मैगनेशियम अथवा सोडियम सल्फेट का संतृप्त घोल पिलाकर रोगी को विरेचन कराना चाहिये ।

(३) पोटॅशियम आयोडाईड का योग्य मात्रा में प्रयोग करने से लाभ हो सकता है ।

(४) पेशियों के कमजोर होने पर पक्षाघात होने पर मालिश, विद्युत का प्रयोग तथा त्वचा के नीचे स्ट्रिक्निन् हायड्रोक्लोराइड का प्रयोग कर सकते हैं ।

(५) शुद्ध वायु और पौष्टिक दुग्धभूयिष्ठ आहार की व्यवस्था करनी चाहिये । ऐसे भोज्य पदार्थ देना चाहिये जिससे पाचनसंस्थान में सौम्य अम्ल पदार्थ रहें । कारखानों में काम करने वालों को पीने के पानी में थोड़ा गन्धकाम्ल देना चाहिये तथा बीच-बीच में उनकी शारीरिक परीक्षा करनी चाहिये । हफ्ते में एक बार सोडियम या मॅग्नेशियम सल्फेट विरेचन के लिए देना चाहिये ।

मृत्यूत्तर रूप :—

आमाशय और अन्त्र में शोथ होता है । आमाशय और पक्वाशय की श्लैष्मिक कला मुलायम और मोटी होती है और उसमें व्रण होते हैं ।

यशद (Zinc) ।

परिचय :—

यशद स्वतन्त्र रूप में प्रकृति में नहीं पाया जाता । खानों में यह केलेमाइन (Calamine), या ज़िंक कार्बोनेट (Zinc carbonata), ज़िन्काइट (Zincite) या ज़िंक आक्साइड (Zinc oxide) और ज़िंक सल्फाइड (Zinc sulphide) के रूप में पाया जाता है । इसको खर्पर भी कहते हैं । यह दो प्रकार का होता है । जिसमें पत्र होते हैं, उसे दर्दुर (ज़िंक कार्बोनेट) और जिसमें पत्र नहीं होते, उसे कारवेल्लक (ज़िंक सल्फाइड) कहते हैं ।

यशद श्वेत वर्ण की स्फटिकीय धातु है जिसमें किञ्चित् नीलिमा होती है। साधारण तापक्रम पर यह भङ्गुर (Brittle) होता है । १००° से० से १५०° से० तक गरम करने पर यह घनवर्धनीय (Malleable) हो जाता है और लगभग २००° से० तक गरम करने पर यह पुनः भंगुर हो जाता है । लगभग ४२०° से० पर यह पिघल जाता है । और फिर अधिक गरम करने पर किञ्चित् नील-श्वेत प्रकाश के साथ जलता है इसका विशिष्ट घनत्व ६·९ है ।

यशद के यौगिक ।

(१) ज़िंक आक्साइड (Zinc oxide, Zn O):—

यह श्वेत चूर्ण के रूप में पाया जाता है जिसमें किसी प्रकार का स्वाद नहीं होता । गरम करने पर किञ्चित् पीत वर्ण का हो जाता है किन्तु ठंढा होने पर पुनः श्वेत हो जाता है । जल में अविलेय है किन्तु सोडियम हाइड्राक्साइड और हल्के धातवीय अम्लों के विलयनों में घुल जाता है । ओषधि के रूप में २½ से ५ रत्ती तक की मात्रा में प्रयुक्त होता है । इससे ज़िंक मलहम (Zinc ointment) और ज़िंक पेस्ट (Zinc paste) बनाये जाते हैं । इसके बाष्प अत्यधिक विषैले होते हैं ।

(२) जिंक सल्फेट (Zinc Sulphate):—

इसको ह्वाइट विट्रीओल (White vitriol, $ZnSO_4$) भी कहते हैं । इसके वर्णरहित पारदर्शक स्फटिक होते हैं जिनमें धातवीय स्वाद होता है । इसमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती और यह जल में घुल जाता है । ओषधि के रूप में ½ से १½ रत्ती तक दिया जाता है । इससे एक मलहम बनाया जाता

है जिसे अन्जेन्टम ज़िंकाई ओलिऐटिस (Ungentum Zinci Oleatis) कहते हैं।

(३) ज़िंक क्लोराइड (Zinc chloride, Zn Cl_2):—

यह एक ठोस पदार्थ है जो कि चूर्ण, शलाका अथवा ढेले के रूप में होता है। इसका १ भाग जल के १ भाग, ९० प्रतिशत मद्य के १·५ भाग और ग्लीसरीन के २ भाग में घुल जाता है।

इसके अतिरिक्त ज़िंक कार्बोनेट (Zinc carbonate, Zn CO_3), ज़िंक नाइट्रेट [Zinc nitrate. Zn (NO_3 $)_2$] ज़िंक हाइड्राक्साइड [Zinc Hydroxide, Zn $(OH)_2$] इत्यादि भी यशद के यौगिक हैं।

लक्षण :—

मुँह में धातवीय लक्षण मालूम होता है। अत्यधिक लालास्राव तथा वमन होती है। आमाशय में तथा उदर में पीड़ा होने लगती है। विरेचन होते हैं। हृदयावसाद उत्पन्न हो जाता है और अन्त में रोगी की मृत्यु हो जाती है। ज़िंक क्लोराइड से विशेषतया तीव्र क्षोभक विष के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

घातक काल :—ज़िंक सल्फेट—४ ड्राम (१$\frac{1}{4}$ तो०)

घातक मात्रा :—२ घण्टे से ५ दिन।

चिकित्सा :—

(१) सोडा बाईकार्ब (Soda bicarb) को उष्णोदक में घोलकर, इसी से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। ज़िंक क्लोराइड की आशङ्का होने पर प्रक्षालन नहीं करना चाहिये।

(२) यदि वमन न होती हो तो उष्णोदक पिलाकर गले में अंगुली डालकर वमन करा देना उचित है। ज़िंक सल्फेट स्वयं वामक ओषधि है।

(३) दूध, अण्डे की सफेदी, उष्ण चाय, टैनिकाम्ल (Tannic acid) इत्यादि पिलाना चाहिये। ये पदार्थ इस विष के प्रतिविष हैं।

(४) यदि पीड़ा अधिक हो तो मॉर्फिया का इन्जेक्शन लगा देना चाहिए और यथासमय अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप:—

ज़िंक सल्फेट से—मुख, अन्नप्रणाली, आमाशय और आँतों की श्लैष्मिक कलायें प्रायः रक्तिमायुक्त पाई जाती हैं और उनमें रक्ताधिक्य होता है।

ज़िंक क्लोराइड से—मुख, अन्नप्रणाली, आमाशय और आँतों की श्लैष्मिक कलाओं में व्रण हो जाते हैं और वे नीचे की धातुओं से पृथक् हो जाती हैं। कभी-कभी व्रण और छिद्र भी हो जाते हैं।

ताम्र (Copper)।

परिचय:—

बहुत प्राचीन काल से लोग ताम्र को जानते हैं। मुक्तावस्था में यह चीन और जापान में पाया जाता है। यह एक विशेष प्रकार के लाल रंग की चमकीली धातु है। यह घनवर्धनीय और तन्य (Ductile) होता है। इसका विशिष्ट घनत्व ८'९५ और द्रवणाङ्क १०८०° से० है। यह ताप और विद्युत् का अच्छा चालक है।

ताम्र के यौगिक।

(१) कापर सल्फेट (Copper sulphate $Cu\ SO_4$):—

इसे $\frac{1}{8}$ से रत्ती तक की मात्रा में चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। इससे एक मलहम बनाया जाता है जिसे अन्जेन्टम क्यूप्री ओलिऐटिस (Ungentum Cupri Oleatis) कहते हैं और यह दद्रु के लिये विशेषतया प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद में यह खुजली, दाद, आँख और दांत के रोगों के लिये अन्य ओषधियों के साथ मिलाकर प्रयोग किया जाता है।

(२) क्यूप्रिक आक्साइड (Cupric Oxide, $Cu\ O$)

(३) क्यूप्रस आक्साइड (Cuprous Oxide, $Cu_2\ O$)

(४) क्यूप्रिक क्लोराइड (Cupric Chloride, $Cu\ Cl_2$)

(५) क्यूप्रस क्लोराइड (Cuprous Chloride, $Cu_2\ Cl_2$)

लक्षण:—

मुँह में धातवीय स्वाद मालूम होता है। आमाशय में दाहयुक्त पीड़ा होती है। प्यास बहुत लगती है। वमन होती है जिसका रंग नीला या हरा होता है। पित्त (Bile) का संदेह मिटाने के लिये वमन के साथ अमोनियम हायड्रोक्साइड को मिलाने पर तुत्थ विषयुक्त वमन का रंग गहरा नीला हो जाता है। पित्त में यह प्रतिक्रिया नहीं होगी। उदर-प्रदेश में भी पीड़ा होती है। मूत्र बहुत कम आता है या मूत्राघात होता है। मूत्र स्राव होने पर रक्तमिश्रित होता है। भूरे रंग के दस्त होते हैं। कुंथन भी होता है। कामला उत्पन्न हो जाता है। त्वचा पीतवर्ण की हो जाती है और उसका स्पर्श शीतल होता है तथा वह

स्वेदयुक्त होती है। तदनन्तर हृदयावसाद होकर या क्वचित् पक्षाघात तथा मूर्छा होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

जीर्ण विष के लक्षण।

ताम्र के कारखानों में काम करने वालों को इसके सूक्ष्म कण श्वास में जाने से तथा ताम्र के बर्तनों से होता है। मुँह का स्वाद धातु की तरह रहता है। मसूड़ों पर हरित वर्ण की रेखा हो सकती है। रोगी को अरुचि हो जाती है। शिरःशूल होने लगता है। चक्कर आते हैं। दुर्बलता बहुत बढ़ जाती है। कभी कभी शूल और विरेचन भी होते हैं। पांडु और कभी २ ,पक्षाघात के लक्षण होते हैं। त्वचा कामला के समान पीली होती है, बाल, मूत्र तथा स्वेद भी हरे वर्ण के हो सकते हैं।

घातक मात्रा :—नीला तूतिया—$\frac{1}{2}$ छटाँक।

घातक काल :—४ घंटे से ३ दिन।

चिकित्सा :—

५ प्रतिशत के पोटाशियम फेरो सायनाइड (Potassium Ferro Cyanide) के घोल से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। इससे क्यूप्रिक फेरोसायनाइड (Cupric Ferocyanide) नामक अघुलनशील योग बनता है। वामक औषधि का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि तुत्थ स्वयं वामक होता है। प्रतिविष के रूप में दूध और अंडे की सफेदी देनी चाहिये। इनसे अल्ब्यूमिनेट ऑफ कॉपर (Albuminate of Copper) बनता है जो अघुलनशील योग है। इसके बाद विरेचन के लिये एरंड तैल का प्रयोग करना चाहिये। अन्य शामक पदार्थ देना चाहिये। यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इंजेक्शन लगाना चाहिये। मूत्रल औषधियाँ देनी चाहिये और लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

जीर्णविष की चिकित्सा में कारण को हटाने का प्रयत्न करना चाहिये। रोगी को शुद्ध हवा और योग्य भोजन देना चाहिये। व्यवहार में आने वाले ताम्र के बर्तनों में कलई लगाना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप :—

मुख, गला और आमाशय की श्लैष्मिक कला मृदु और शोथयुक्त होती है। इनका रंग नीला अथवा हरा हो जाता है। बृहदान्त्र की श्लैष्मिक कला शोथयुक्त हो सकती है। यकृत् मृदु और वसायुक्त हो जाता है। वृक्कों में शोथ और रक्ताधिक्य होता है।



सातवाँ अध्याय

वानस्पतिक क्षोभक विष।

(Vegetable irritant poisons)

जयपाल (Croton seeds)।

परिचय :—

जयपाल को जमालगोटा भी कहते हैं। इसके पेड़ बहुत ऊँचे होते हैं। इसके बीज बहुत विषैले होते हैं। इससे तैल निकाला जाता है जिसे क्रोटन आयल (Croton oil) कहते हैं। यह तैल कपिल-पीत अथवा रक्तिमायुक्त कपिल-वर्ण का और चिपचिपा होता है। तैल में एक प्रकार की अप्रिय गन्ध होती है। इसका स्वाद चरपरा और दाहकारक होता है। तैल में रेजिन (Resin) और स्टियेरिक (Stearic), पामिटिक (Palmitic), लारिक (Lauric), वलेरिक (Valeric), ओलिक (Oleic), लिनोलिक (Linolic) तथा टिगलिक (Tiglic) के ग्लीसराइड्स (Glycerides) पाये जाते हैं। ओषधि के रूप में ½ से १ बूँद तक की मात्रा में तैल का प्रयोग किया जाता है। त्वचा पर लग जाने से छाले पड़ जाते हैं। यह अति तीव्र विरेचक होता है जिसके कारण अल्प मात्रा में सेवन करने पर पानी की तरह पतले दस्त होते हैं और तीव्र उदरशूल तथा ऐंठन होती है। इसके बीज अंडाकार और गहरे भूरे रंग के होते हैं। बीज में ओलियम क्रोटोनिस (Oleum crotonis), प्रोटीड्स (Proteids), एलब्यूमिन (Albumin) इत्यादि होते हैं। इसकी जड़ में रेजिन (Resin) और स्टार्च (Starch) होता है।

लक्षण :—

मुँह, गला और आमाशय में दाहयुक्त पीड़ा होती है। वमन होने लगती है। लालास्राव होता है। रक्तमिश्रित विरेचन होते हैं। कुंथन अत्यधिक होता है। शरीर में ऐंठन होती है। त्वचा शीतल हो जाती है। अन्त में हृदयावसाद होकर मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा :—बीज = ४, तैल—१५ से २० बूँद।

घातक काल :—४ से ५ घण्टे। अधिक से अधिक २ दिन।

चिकित्सा :—

उष्णोदक से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। जौ का पानी, अण्डे की सफेदी आदि स्निग्ध शामक ओषधियाँ देनी चाहिये। यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाना चाहिये और अन्य लाक्षणिक उपाय करना चाहिए। हृदयावसाद के लिये उत्तेजक ओषधियाँ देनी चाहिये। दस्तों को रोकने के लिए ३ बूंद कर्पूर अर्क या १० बूंद स्पिरिट कैम्फर प्रति दस मिनट पर शक्कर या दूध में मिलाकर ५ या ६ बार देना चाहिए, बाद में कम करना चाहिए।

मृत्यूत्तर रूप :—

मुख, गला, अन्नप्रणाली, आमाशय और अन्त्र में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है। शरीर के अन्य अंगों में थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य होता है।

एरण्ड (Castor oil Plant)।

एरण्ड के बीजों के खाने से विष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। उनमें उपस्थित विषैले अवयव को 'राइसिन' कहा जाता है।

लक्षण :—

गले में पीड़ा, उदर में शूल, मल-त्याग की अधिकता अथवा अनुपस्थिति, वमन, ठण्डा स्वेदयुक्त चर्म, हृदयावसाद और मृत्यु।

घातक मात्रा—३ बीज।

घातक काल—२ से ६ दिवस।

मृत्यूत्तर रूप—सारी पाचन-प्रणाली की कला में शोथ के लक्षण पाये जाते हैं।

चिकित्सा—१-आमाशय का प्रक्षालन। २-शरीर के ताप को बनाये रखने के लिए उपचार। ३-पीड़ा कम करने के लिए मार्फिया का प्रयोग।

इन्द्रायन (Colocynth)।

इस वस्तु के चूर्ण का गर्भ गिराने के लिए प्रयोग किया जाता है। इस वृक्ष के फल के चूर्ण को विरेचन के लिए दिया जाता है। इसको प्रायः २ से ८ ग्रेन तक प्रयोग करवाते हैं। अधिक मात्रा में यह क्षोभक विष की भाँति क्रिया करता है। इसके वृक्ष के प्रत्येक भाग का स्वाद कड़ुआ होता है। चूर्ण यदि वायु से उड़कर नेत्रों में पड़ जाता है या नासिका के भीतर पहुँच जाता है तो वहाँ भी क्षोभ उत्पन्न कर देता है।

लक्षण—रोगी को वमन होता है। इसके पश्चात् दस्त आने लगते हैं जिनमें आँव और रक्त दोनों मिले रहते हैं। रोगी दुर्बल हो जाता है; उसके अङ्ग ठण्डे हो जाते हैं। नाड़ी मन्दी चलती है, हृदय दुर्बल हो जाता है और हृदयावसाद से रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा—१½ से २ ड्राम। घातक काल—४० घण्टे।

मृत्यूत्तर रूप—अङ्गों में शोथ उत्पन्न हो जाता है।

चिकित्सा—आमाशय का प्रक्षालन करें। वमनकारी ओषधियाँ दें। अण्डे की सफेदी, जौ का पानी, जल में गेहूँ का आटा अथवा अरारोट मिलाकर रोगी को दें। शरीर की उष्णता को बनाये रखें तथा रोगी को उत्तेजक वस्तुएँ दें।

अर्गट (Ergot)।

यह एक प्रकार के फङ्गस के दाने होते हैं जो जौ, बाजरा और गेहूँ इत्यादि पर लग जाते हैं। इन अन्नों की बालों पर यह वस्तु गहरे लाल लाल दानों के रूप में दिखाई देती है। यह दाने ½ इंच से १½ इंच तक लम्बे और नुकीले होते हैं। यह वृक्षों का एक प्रकार का रोग होता है। यही दाने बाजार में अर्गट नाम से बिकते हैं।

अर्गट अधिकतर गर्भस्राव के लिए काम में लाया जाता है। किन्तु यह वस्तु केवल प्रसव की पीड़ा के समय काम करती है।

लक्षण—इसके लक्षण शीघ्र नहीं उत्पन्न होते। इसका जल के साथ जो सत्व बनाया जाता है, उसके दो औंस देने से भी विष के लक्षण नहीं उत्पन्न होते।

विष उत्पन्न होने पर जी मिचलाने लगता है, वमन होते हैं, उदर में शूल होता है, रोगी को प्यास बहुत लगती है। दस्त आने लगते हैं, हृदय दुर्बल हो जाता है, मुँह से थूक अधिक निकलता है, मूत्र कम निकलता है, शिर चकराता है, नेत्रों के तारे विस्फारित हो जाते हैं। पेशियों में ऐंठन होती है। दुर्बलता मालूम होने लगती है। सारा शरीर ठण्डा हो जाता है। अन्त में रोगी को मूर्छा उत्पन्न हो जाती है, आक्षेप होने लगते हैं, प्रलाप उत्पन्न हो जाता है, श्वास में अवरोध प्रतीत होता है और अन्त में मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा और काल—अनिश्चित।

चिकित्सा—आमाशय को धोवें, वमनकारी ओषधियों का प्रयोग करें।

टैनिक अम्ल ½ ड्राम मात्रा में जल के साथ मिलाकर कई बार दें। गाढ़ी चाय भी देनी चाहिए। यदि रोगी स्वयं न निगल सके तो ओषधि को नलिका के द्वारा आमाशय के भीतर पहुँचावें। उत्तेजक ओषधियाँ—जैसे ब्रांडी, स्पिरिट अमोनिया, ईथर इत्यादि—का प्रयोग करावें। रोगी को मृदु विरेचन कराना उत्तम है।

गुमची-रत्ती (Abrus Precatorius)।

इसके छोटे-छोटे लाल रङ्ग के अण्डे के समान बीज होते हैं, जिनके एक सिरे पर एक छोटा काला धब्बा रहता है। स्वर्णकार इसको स्वर्ण या चाँदी के तौलने के काम में लाते हैं। प्रत्येक गुमची ¾ इंच चौड़ी होती है।

गुमची विषैली होती है। किन्तु उबालने से उसका विष नष्ट हो जाता है। उसके चूर्ण को दूध के साथ उबाल कर ओषधि की भाँति देते हैं। किन्तु बिना उबाले या भूने हुए खाने से शरीर में विष फैल जाता है। प्रायः परहत्या के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। गाय या भैंस इत्यादि को मारने के लिए भी यह वस्तु काम में लाई जाती है। प्रायः धतूरे और अफीम के साथ गुमचियों के चूर्ण को मिलाकर उससे सुई के आकार के काँटे बना लेते हैं। इन सुइयों को जन्तु के शरीर में चुभो देते हैं। कभी-कभी मनुष्य की हत्या भी इन सुइयों के द्वारा की जाती है। जन्तुओं की हत्या करनेवाले प्रायः चमार जाति के लोग होते हैं, जो चमड़े का व्यापार करते हैं।

लक्षण—इस वस्तु का प्रभाव विशेषकर नाड़ी-मण्डल पर पड़ता है। जिस स्थान पर सुई चुभाई जाती है वहाँ सूजन उत्पन्न होकर कुछ समय में चारों ओर फैल जाती है। तीव्र पीड़ा होने लगती है। यदि सुई गर्दन या मुख पर चुभाई गई है तो मुख और गर्दन की पेशियों का सङ्कोच हो जाता है। मुख खोलने में कष्ट होता है। टिटेनस या धनुर्वात के समान दशा उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी ज्वर होते भी देखा गया है। कुछ रोगियों तथा जानवरों में धनुर्वात के समान दशा उत्पन्न हो जाती है। मूर्च्छा उत्पन्न होकर उनकी मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा—१½ से २ ग्रेन या १ रत्ती।

घातक काल—२ से ५ दिवस।

मृत्यूत्तर रूप—व्रण में प्रायः पिसी हुई गुमची की सुइयों के टुकड़े मिलते

हैं। व्रण अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं। चर्म, श्लैष्मिककला, फुफ्फुस तथा हृदयावरण में रक्तस्राव पाया जाता है। आमाशय और अन्त्रियों की कला के नीचे भी रक्तस्राव मिलता है।

चिकित्सा--(१) यदि सुई लगते ही रोगी को देख लिया जाय तो जिस स्थान में सुई लगने के चिह्न हों, उस सारे स्थान को काटकर निकाल देना चाहिए। (२) गुमची में ऐब्रिन नाम का विष रहता है। उसको नाश करने के लिए यदि तैयार ऐंटी-एब्रिन मिल जावे तो उसका इन्जेक्शन करना चाहिए। (३) अन्य चिकित्सा के प्रयोग सर्पविष के समान करने चाहिएँ।

चित्रक (Plumbago Rosea or Zeylanica)।

इस वृक्ष की केवल जड़ काम में लाई जाती है। इसको गर्भ गिराने में भी प्रयुक्त किया जाता है वृक्ष के मूल के चूर्ण का कल्क बनाकर उसको किसी लकड़ी के टुकड़े से योनि या गर्भाशय में प्रविष्ट करके गर्भपात कराया जाता है। बहुधा इससे स्त्रियों की मृत्यु हो जाती है।

चर्म के ऊपर चित्रक लगाने से काल चिह्न पड़ जाते हैं, जो बेंत या किसी ऐसी ही वस्तु के आघात से उत्पन्न हुए चिह्नों के समान होते हैं। झूठा दोषारोपण करने के लिए बहुधा शरीर पर इस प्रकार के चिह्न बना लिये जाते हैं।

लक्षण—यह एक क्षोभक विष है और साथ में नाड़ीमण्डल पर भी अपना प्रभाव डालता है। इस कारण जिन स्थानों पर यह लगता है वहाँ पर प्रथम सूजन उत्पन्न हो जाती है और पीड़ा होने लगती है जो कुछ समय के पश्चात् बहुत बढ़ जाती है। प्रायः रक्त का प्रवाह भी होने लगता है। यदि गर्भस्राव हो जाता है तो उसके पश्चात् गाढ़ी स्तब्धता उत्पन्न हो जाती है। रक्तस्राव बन्द होना कठिन होता है और प्रायः जिस वस्त्र में लगाकर विष इत्यादि गर्भाशय तक पहुँचाया जाता है उसके साथ संक्रमण भी वहाँ पहुँच जाता है। रोगी की विचार-शक्ति भी विकृत हो जाती है। धीरे-धीरे उसको मूर्च्छा हो आती है। श्वास में भी विकार उत्पन्न हो जाता है और अन्त में रोगी की मृत्यु हो जाती है।

विष के खा लेने से वमन, विरेचन इत्यादि क्षोभक विषों के लक्षण भी उत्पन्न होते हैं।

घातक मात्रा और काल—अनिश्चित।

चिकित्सा—यदि मुख द्वारा विष खाया गया है तो साधारण नियमों के अनुसार आमाशय का प्रक्षालन, वमनकारी तथा उत्तेजक औषधियाँ इत्यादि के द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए। यदि विष का स्थानिक प्रयोग किया है तो सब से प्रथम उस स्थान से विषैले वस्त्र इत्यादि को निकाल कर शुद्ध बोरिक विलयन से धोकर वहाँ शामक औषधियों का प्रयोग करना चाहिए। दूसरे लक्षणों की चिकित्सा लक्षणानुसार की जाती है।

—ooxoo—

आठवाँ अध्याय

क्षोभक विष (Irritant poisons) ।

(क) जान्तव क्षोभक विष (Animal poisons) ।

कॅन्थेराइडस् (Cantharides) ।

यह मक्खी एक इंच के लगभग लम्बी होती है और प्रत्येक मौसम में सब स्थानों में पाई जाती है। इसके सिर, टाँगों और पैरों का रङ्ग गहरा चमकता हुआ हरा होता है। उसको सुखाकर पीस लिया जाता है और इस चूर्ण का गर्भ गिराने के लिए प्रयोग किया जाता है। स्तम्भन के लिए भी कुछ लोग इसका प्रयोग करते हैं। इस भाँति के प्रयोगों से आकस्मिक दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। मिर्च के धोके में भी कभी कभी उसका प्रयोग हो गया है।

लक्षण—विष को खाते ही मुख, आमाशय और सारे उदर में दाह मालूम होने लगता है। निगलने में कष्ट होता है। प्यास अधिक लगती है और मुँह से थूक गिरने लगता है जिसके पश्चात् वमन आरम्भ हो जाता है। वमन में रक्त और श्लैष्मिक कला के टुकड़े निकलते हैं और चूर्ण के हरे-हरे कण भी होते हैं। विरेचन आरम्भ हो जाता है और मल में भी रक्त मिला होता है। साथ में आक्षेप होते हैं।

रोगी को मूत्रत्याग करने की इच्छा होती है, किन्तु मूत्र नहीं निकलता

अथवा बहुत थोड़ा निकलता है जिसमें प्रायः रक्त मिला हुआ होता है। पुरुषों में शिश्न का प्रहर्ष हो जाता है जिससे पीड़ा होती है। अण्ड-ग्रन्थियों में भी सूजन उत्पन्न हो जाती है। स्त्रियों में गर्भस्राव होता है।

रोगी को तीव्र ज्वर हो आता है, नाड़ी तीव्र हो जाती है, बेचैनी बढ़ जाती है, श्वास कष्ट के साथ आने लगता है, विचारशक्ति मन्द हो जाती है। तीव्र दशाओं में मूर्च्छा और पेशियों में कम्पन होने लगते हैं, जिसके पश्चात् मृत्यु हो जाती है।

मृत्यूत्तर रूप—आमाशय की श्लैष्मिक कला शोथ और व्रण युक्त होती है। उस पर विस्फोट अथवा कोथ तक उपस्थित मिल सकते हैं। आन्त्र कला की भी यही दशा होती है। वृक्क तथा प्लीहा में भी शोथ उत्पन्न हो जाता है। यदि चूर्ण का प्रयोग किया गया है तो उसके सूक्ष्म चमकीले कण आमाशय की श्लैष्मिक कला पर उपस्थित पाये जा सकते हैं।

घातक मात्रा—२४ ग्रेन (१२ रत्ती) चूर्ण और टिंक्चर के एक औंस (२½ तोले) से मृत्यु हो गई है। किन्तु एक औंस टिंक्चर और ११½ ग्रेन चूर्ण उदरस्थ करने पर भी रोगी बच गये हैं। इस मक्खी के शरीर में एक वस्तु होती है जिसको Cantharidin कहते हैं। उसी के कारण इस विष के लक्षण उत्पन्न होते हैं।

घातक काल—२४ से ३६ घण्टे।

चिकित्सा—(१) आमाशय का प्रक्षालन, प्रक्षालन नलिका के द्वारा। (२) यदि गले और आन्त्र-प्रणाली में इतना शोथ हो कि नलिका को भीतर न डाला जा सके तो वमनकारी ओषधियों का प्रयोग करना चाहिए। ऐपोमारफीन् का इन्जेक्शन, राई, ज़िंक सल्फेट, इपीकेकुवाना इत्यादि ओषधियाँ प्रयुक्त की जा सकती हैं। (३) शामक वस्तुयें—अण्डे की सफेदी, दूध, यव का जल जिसमें गोंद घोल दिया गया हो; कोई तैलीय वस्तु नहीं देनी चाहिये। (४) मारफीन या अफीम, यदि पीड़ा अधिक हो तो, रोगी को दी जाय। आधा ग्रेन मारफीन या ३० बूँद अफीम का टिंक्चर (Laudanum) भी दिया जा सकता है। यदि दस्त अधिक आ रहे हों तो मारफीन की सपोजिटरी (गुदावर्त्ति) का प्रयोग करना चाहिए। (५) दशा के सुधरने पर रोगी को उष्ण जल से स्नान करवाया जाय।

सर्पविष (Snake-Venom)

भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में सर्प होते हैं, किन्तु बङ्गाल में सबसे अधिक पाये जाते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक वर्ष हमारे देश में बीस हजार मनुष्यों की साँप के काटने से मृत्यु होती है। सन् १९०० में समस्त देश में २२३९२ मृत्यु हुई थी। उनमें से १०५५७ केवल बङ्गाल में और ६०५६ उत्तर प्रदेश में हुई। कभी-कभी सर्प का विष हत्या के लिए भी काम में लाया जाता है। जन्तुओं की हत्या के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। विष को वस्त्र इत्यादि पर लगाकर जन्तु की योनि या गुदा में प्रविष्ट कर दिया जाता है, जहाँ से शरीर में विष फैल जाता है। मुगलों के राज्य में अपराधी को सर्प से कटाकर मारने की रीति प्रचलित थी।

सर्पों में अनेक जातियाँ होती हैं। किन्तु केवल दो जातियाँ विषैली होती हैं जिनको 'कौल्यूब्राइन' और 'वाइपराइन' कहते हैं। कौल्यूब्राइन का शरीर लम्बा और गोल, शिर छोटा और पूँछ गोल होती है। शिर के ऊपर बड़े-बड़े डैने या परत होते हैं। कोब्रा, जो 'नाग' या 'काला साँप' कहा जाता है, इसी श्रेणी का सर्प है। इसके अतिरिक्त Hamadryad, जिसको Tree cobra या King-cobra अथवा कहीं-कहीं 'संकर चोर' भी कहते हैं; ब्लू क्रेट और ब्रेंडेड क्रेट, जो 'साँपराज' के नाम से भी पुकारा जाता है, इसी श्रेणी के सर्प हैं।

वाइपराइन जाति के सर्पों का शरीर छोटा होता है और गर्दन भी सिकुड़ी होती है। शिर बड़ा, शरीर की अपेक्षा चौड़ा और कुछ त्रिकोण के आकार का होता है। इस जाति के सर्पों के नेत्र के तारे कौल्यूब्राइन की भांति गोल नहीं होते, किन्तु एक खड़ी लकीर की भांति दिखाई देते हैं, जैसे बिल्ली इत्यादि के होते हैं। रसेल्स वाइपर, जो 'बोरा' या 'तिकपोलोंगा' कहा जाता है और जिसे फुरसा तथा कपर भी कहते हैं, वाइपराइन श्रेणी के सर्प हैं।

विषैले सर्पों के मुँह के भीतर दो बड़े दाँत होते हैं जो भीतर से खोखले होते हैं। शिर में नेत्रों के पीछे की ओर दो विष की ग्रन्थियाँ स्थित होती हैं। दोनों ग्रन्थियों से दाँतों तक एक पतली नलिका जाती है जिसके द्वारा विष दाँतों में पहुँचता है। जब सर्प काटता है तब दोनों ओर की ग्रन्थियों से विष दांतों में होता हुआ कटे हुए व्यक्ति के शरीर में पहुँच जाता है।

जो सर्प विषैले नहीं होते उनमें यह दाँत नहीं पाये जाते। केवल छोटे-छोटे दाँत होते हैं। कौल्यूब्राइन श्रेणी के सर्पों के विषैले दाँत भी वाइपराइन के दाँतों की अपेक्षा छोटे होते हैं। इस कारण वह वाइपराइन की भाँति वस्त्र के द्वारा नहीं काट सकते।

सर्पविष के लक्षण—कौल्यूब्राइन जाति के सर्पों के विष का प्रभाव विशेषकर नाड़ी मण्डल पर होता है। किन्तु वाइपराइन जाति का विष हृदय और रक्त पर प्रभाव डालता है।

कोब्रा के काटने के पन्द्रह मिनट से एक घण्टे के भीतर लक्षण आरम्भ हो जाते हैं। सर्प जितना अधिक विषैला होता है उतने ही शीघ्र लक्षण प्रकट होते हैं। काटने के स्थान पर पीड़ा होती है। वहाँ रक्त जमा हो जाता है और सूजन उत्पन्न हो जाती है। किन्हीं किन्हीं रोगियों का जी मिचलाता है और वमन भी होते हैं। कुछ समय के पश्चात् रोगी को निद्रा मालूम होने लगती है। टाँगों में भारीपन मालूम होता है, रोगी चलने में लड़खड़ाता है और अन्त में खड़ा भी नहीं हो सकता। सारे शरीर की पेशियाँ धीरे-धीरे दुर्बल होने लगती हैं। उनका स्तम्भ होने लगता है। गले और स्वरयन्त्र की पेशियों के स्तम्भ से रोगी बोलने में असमर्थ हो जाता है। उसके मुँह से लाला स्राव होने लगता है। श्वासकर्म की पेशियों का भी स्तम्भ होना प्रारम्भ हो जाता है। इस कारण श्वासकर्म में अवरोध होता है। जब श्वासपेशियाँ पूर्णतया स्तम्भित हो जाती हैं तब श्वास बन्द हो जाता है और रोगी की मृत्यु हो जाती है। हृदय श्वासावरोध के कुछ मिनट पश्चात् तक चलता रहता है।

वाइपराइन जाति के सर्पों के विष से धमनियों के भीतर रक्त जमने से मृत्यु होती है। जब सर्प के काटने के पश्चात् थोड़े ही समय में श्वासावरोध से मृत्यु हो जाती है तब उसका कारण फुस्फुसीय धमनी में रक्त का जमना होता है जिससे रक्त फुस्फुस में नहीं पहुँच सकता। सर्प के काटने के पश्चात् तुरन्त ही या पन्द्रह मिनट के भीतर काटे हुए स्थान के चारों ओर शोथ उत्पन्न हो जाता है और वहाँ चर्म के नीचे रक्त जमा होने लगता है। कुछ समय में सारे अङ्ग की यही दशा हो जाती है। वमन होने लगते हैं और हृदयावसाद आरम्भ हो जाता है जो कभी कभी सर्प के काटते ही उत्पन्न हो जाता है। नाड़ी दुर्बल और मन्द

चलती है। उसको प्रतीत करना भी कठिन होता है। चर्म पर शीतल स्वेद आने लगता है। नेत्रों के तारे प्रसरित हो जाते हैं और रोगी मूर्च्छित हो जाता है। यदि रोगी इन सब दशाओं से उबर आता है तो उसके मुख, नासिका, मलद्वार इत्यादि से रक्त प्रवाह होने लगता है। इस विष का रक्त पर सबसे बड़ा यह प्रभाव होता है कि रक्त की जमने की शक्ति बिलकुल नष्ट हो जाती है। इसी कारण रक्तस्राव होकर रक्त चर्म के नीचे भी यत्रतत्रतः एकत्र हो जाता है।

मृत्यूत्तर रूप—सर्प के काटने के स्थान पर दो छोटे-छोटे छिद्र होते हैं। कभी-कभी छिद्र इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनको देखने के लिए ताल या लैंस की आवश्यकता होती है। इस छिद्र के चारों ओर शोथ होता है। इन व्रणों से रक्तस्राव हो सकता है। चर्म के नीचे रक्त एकत्र हो जाता है। श्लैष्मिक कलाओं से—विशेषकर मुख, गुदा, नासिका इत्यादि की श्लैष्मिक कलाओं से—रक्तस्राव होता है। रक्त अत्यन्त तरल हो जाता है और उसके जमने की शक्ति जाती रहती है।

घातक काल—सर्प काटने के कुछ ही घण्टे से एक या दो दिन में मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा—१५ से २०, मिलिग्राम (एक ग्राम का सहस्रांश)। एक बार काटने में कोब्रा २०० से ३७० मि० ग्राम विष निकालता है।

चिकित्सा—(१) सर्प द्वारा कटे हुए स्थान से ऊपर की ओर दो-दो इंच की दूरी पर कसकर तीन बन्ध लगा देने चाहिएँ। इसके लिए रबर की नली उत्तम होती है। किन्तु यदि वह न मिल सके तो जो कुछ भी मिल जाय उसी को बाँध देना उचित है।

(२) यदि सर्प ने अँगुली पर काटा हो तो उसको काट देना चाहिए। अन्य स्थानों से भी, जहाँ सर्प ने काटा हो, आध सेर के लगभग मांस काट देना उचित है। यह कार्य कठिन अवश्य है और ऐसा करना प्रायः दुष्कर होता है, किन्तु जहाँ तक हो सके यह कर्म करना उचित है। व्रण को पोटाशियमपरमैंगनेट के प्रबल विलयन से धोया जाय।

(३) विष सञ्चरित हो जाने से धातुएँ विवर्ण हो जाती हैं। ऐसी विवर्ण धातुओं को काटकर निकाल दिया जाय।

(४) ऐंटी-वेनीन—यह सर्पविष का प्रतिविष होता है, जो जानवरों के शरीर में सर्पविष को प्रविष्ट करने से बनाया जाता है। कोब्रा के विष का यह पूर्ण प्रतिविष है और उसका निश्चित रूप से नाश करता है। किन्तु वाइपराइन जाति के सर्पों के विष पर इसकी क्रिया नहीं होती। आजकल कोल्यूब्राइन और वाइपराइन दोनों जाति के सर्पों के विष से ऐंटीवेनीन बनाया जाता है।

इस ऐंटी-वेनीन की कम से कम १०० सी० सी० पेशियों में प्रविष्ट करनी चाहिए। इन्जेक्शन देने से पूर्व चर्म को स्वच्छ कर लेना उचित है। किन्तु समय तनिक भी न नष्ट करना चाहिए।

(५) पोटाशियम परमैंगनेट भी सर्पविष का प्रतिविष कहा जाता है। किन्तु यह सर्पविष को उसी समय नष्ट करता है। जिस समय उसके सम्पर्क में आता है। जिस विष का शरीर में शोषण हो चुका है उस पर इसका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। इसलिए पोटाशियम परमैंगनेट का उसी समय विलयन बनाकर सर्प के काटने से उत्पन्न हुए छिद्रों द्वारा इन्जेक्शन देना उचित है। यदि ऐसा न हो सके तो इसे अङ्ग पर शोथयुक्त धातुओं में प्रविष्ट किया जाय।

(६) स्ट्रिक्नीन का $\frac{१}{६०}$ ग्रेन का इन्जेक्शन समय-समय पर देते रहना चाहिए।

(७) ऐड्रिनेलिन हाइड्रोक्लोराइड का चर्म के नीचे और कैलशियम क्लोराइड १ ग्रेन को २० बूँद जल में घोलकर पेशियों में इन्जेक्शन के द्वारा प्रविष्ट करना उत्तम है।

(८) उत्तेजक ओषधियों का प्रयोग किया जाय। किन्तु यदि ऐंटीवेनीन का प्रयोग किया गया है तो ब्रांडी इत्यादि नहीं देनी चाहिए।

(९) कुछ रोगियों में शिरा द्वारा लवण-विलयन शरीर में प्रविष्ट करने से लाभ हुआ है। एक बाहु से रक्त को शरीर से बाहर निकालना और दूसरे से विलयन भीतर प्रविष्ट करना उचित है।

(१०) रोगी के शरीर की उष्णता की रक्षा करनी चाहिए।

(११) यदि आवश्यक हो तो कृत्रिम श्वासक्रिया करना उचित है।

नौवाँ अध्याय

नाडी-संस्थान पर प्रभाव करनेवाले विष ।

(Neurotic Poisons)

(अ) मस्तिष्क पर प्रभाव करनेवाले विष ।

(Cerebral Or Narcotic Poisons)

(ब) निद्रालु विष (Somniferous) ।

अहिफेन (Opium) ।

इसके वृक्ष को 'पपावर सोम्नीफेरम' (Papaver Somniferum. N. O. Papaveraceoe) और 'पोपी' (Poppy) भी कहते हैं ।

प्राप्ति :—

पोस्त के अपरिपक्व डोडों (Capsules) को चीर कर उसके गूदे और रस को निकाल कर और निचोड़ कर सुखा लेते हैं—यह अफीम कहलाती है ।

परिचय :—

अफ़ीम कई प्रकार की होती है, जैसेः—(क) टर्की की अफ़ीम (ख) योरोपीय अफ़ीम (ग) फारसी अफ़ीम (घ) भारतीय अफ़ीम । ताजी बनाई हुई अफ़ीम कुछ नरम होती है और उसमें लगभग ९ या १० प्रतिशत मार्फीन (Morphine) रहती है । यह प्रायः चपटे ढेले के रूप में होती है जिसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध रहती है । सूखने पर अफ़ीम कुछ कठिन हो जाती है । इसका स्वाद कड़ुवा होता है और यह भूरे काले रंग की होती है ।

विश्लेषण :—

अफ़ीम में दो प्रकार के अल्कलॉइड्स् (Alkaloids) पाये जाते हैं जिनके नाम नीचे दिये जाते हैं :—

(अ) प्रधान—

१. मार्फीन (Morphine) ६ से १२ प्रतिशत ।
२. कोडीन (Codeine) ·३ से २ प्रतिशत ।
३. थिबेन (Thebaine) ·३ से १ प्रतिशत ।

४. नार्कोटाइन (Narcotine) २ से ८ प्र० श० ।
५. पॅपावैरीन (Papaverine) १ प्र० श० ।
६. स्यूडोमार्फीन (Pseudo-morphine)
७. नारसीन (Narceine)
८. क्रिप्टोपाइन (Cryptopine)
९. प्रोटोपाइन (Protopine)
१०. हाइड्रोकोटारनाइन (Hydrocotarnine)
११. लौडेनाइन (Laudanine)
१२. लौडेनोसाइन (Laudanosine)
१३. मिकोनीडाइन (Meconidine)
१४. रिहीडाइन (Rhoeadine)
१५. कोडामाइन (Codamine)
१६. नोस्कोपाइन (Gnoscopine)
१७. लैन्थोपाइन (Lanthopine)
१८. जैंथलाइन (Xanthaline)

(ब) अप्रधान अल्कलॉइड्स :—

१. एपोमार्फीन (Apomorphin)
२. एपोकोडीन (Apocodine)
३. थिबिनाइन (Thebenine)
४. कोटारनाइन (Cotarnine)
५. आक्सीडोमार्फीन (Oxydimorphine)
६. डिसोक्सीकोडीन (Desoxycodine)
७. पोरफोरोक्सीन (Porpheroxine)
८. रिहीडिनाइन (Rhoeadenine)

(क) अन्य पदार्थ :—

१. ओपिओनिन (Opionin)
२. मिकोनिन (Meconin)
३. मिकोनोईडिन (Meconoidin)

(ङ) ऐन्द्रिक अम्लः—

१. लैक्टिक ऐसिड (Lactic acid)

२. मिकोनिक ऐसिड (Meconic acid)

३. गन्धाम्ल ।

(च) जल। (छ) रेज़िन (Resin), ग्लूकोज़ (Glucose), वसा (Fats), सुगन्धित तैल (Essential oil), अमोनियम (Ammonium), कैलसियम (Calcium) और मैगनीशियम (Magnesium) के लवण (Salts)

अहिफेन के योग ।

(१) एक्सट्रॅक्ट ओपियाई सिक्कम मात्रा ½ से १ रत्ती ।

(२) पल्व क्रीटा एरोमैटिक कम आपिआ मात्रा ५ से ३० रत्ती ।

(३) पल्व इपीकाक कम्पाउण्ड या
डोवर्स पाउडर मात्रा २½ से ५ रत्ती

(४) टिन्चर ओपियाई ,, ५ से ३० बूंद

(५) टिंचर कैम्फर कम्पाउण्ड ,, ३० से ६० बूंद

लक्षणः—

प्रायः ३० मिनट से १ घण्टे में प्रकट होने लगते हैं। इसकी तीन अवस्थायें होती हैं:—

[१] प्रथमावस्था या उत्तेजना की अवस्था ।

[२] द्वितीयावस्था या तन्द्रावस्था ।

[३] तृतीयावस्था या निद्रावस्था ।

[१] उत्तेजना की अवस्था :—मानसिक उत्तेजना के कारण रोगी विकल रहता है। चेहरा लाल रहता है और हृदय की गति भी बढ़ जाती है। कभी २ मनोविभ्रम या प्रलाप भी होते हैं। बच्चों में आक्षेप हो सकते हैं।

[२] तन्द्रावस्था :—इस अवस्था में मस्तिष्ककेन्द्र शिथिल होने लगते हैं। प्रथम शिरःशूल, चक्कर आना और अत्यन्त थकावट होकर रोगी को तन्द्रा होने लगती है। इस अवस्था में बाह्य उत्तेजना से उसको थोड़ा होश आता है। पूरे शरीर की त्वचा में खुजली रहती है। मुख और ओठों पर किञ्चित नीलिमा

(Cyanosis) रहती है और नेत्रों के तारे (Pupils) संकुचित रहते हैं। श्वास-प्रश्वास और नाडी पर विशेष प्रभाव नहीं होता।

[३] निद्रावस्था:—रोगी पूर्णतया मूर्च्छित होता है। बाहरी उत्तेजना से जगा नहीं सकते। पेशियाँ शिथिल हो जाती हैं। मुख निस्तेज और ओष्ठों में नीलिमा रहती है। जबड़ा नीचे गिरने से मुँह खुला रहता है। शारीरिक परिवर्तन (Reflexes) नष्ट होते हैं। नेत्रों के तारे प्रकाशपरावर्तन रहित तथा आलपिन की चौड़ाई के इतने अत्यन्त संकुचित (Contracted to pin points) होते हैं। शारीरिक सभी उद्रेचन शुष्क हो जाते हैं परन्तु त्वचा में शीतल स्वेद रहता है। नाडी मन्दगतियुक्त और दुर्बल होती है। श्वास-प्रश्वास की गति भी कम होती है और श्वासकृच्छ्र होता है।

उपर्युक्त अवस्था तक तत्काल योग्य चिकित्सा होने पर रोगी की दशा सुधरने की आशा रहती है। परन्तु ऐसा न होने पर हालत क्रमशः बिगडती जाती है, नाडी अनियमित और अत्यन्त दुर्बल, श्वासकृच्छ्र और श्वास-प्रश्वास रुक-रुक कर आते हैं (Cheyne-Stokes Breathing) और अन्त में श्वासावरोध से मृत्यु होती है।

कभी २ पेशियों में आक्षेप होते हैं और नेत्रों के तारे अत्यधिक विस्फारित (Dilated) होते हैं।

उपर्युक्त सभी अवस्थाओं में श्वास-प्रश्वास में अहिफेन की गन्ध आती है।

कभी २ तीव्र वमन तथा दस्त होते देखा गया है। बच्चों में प्रायः पेशियों में आक्षेप होते हैं। तापक्रम भी बढ़ता देखा गया है। 'क्लोरोडीन' से विषाक्त होने पर नेत्रों के तारे प्रथमावस्था से ही विस्फारित मिलते हैं। औषधि मात्रा में त्वचा के नीचे मॉर्फीन का इन्जेक्शन देने पर क्वचित् अकस्मात् हृत्कार्यावरोध (Syncope) से मृत्यु होते देखा गया है।

कभी २ तन्द्रा की अवस्था में विष का शोषण कम होने से योग्य चिकित्सा करने पर रोगी की दशा एक बार सुधर जाती है परन्तु दशा सुधरने के कारण ही विष का शोषण फिर से बढ़ता है और रोगी की दशा फिर से बिगड़ने लगती है।

सापेक्षिक निश्चितिः—(१) मस्तिष्कगत रक्ताधिक्य (Apoplexy), (२) मस्तिष्क पर दबाव (Compression of the brain) (३) मूत्र-

विषमयावस्था, (४) कार्बोलिकाम्ल-विष तथा (५) मदात्यय, इन अवस्थाओंसे सापेक्षिक निश्चिति करना पड़ता है ।

घातक मात्रा :—

अहिफेन चूर्ण—२ से २½ रत्ती।

टिंचर ओपियाई—६० से १२० बूंद ।

ऐक्स्ट्रैक्ट ओपियाई—१ से १½ रत्ती ।

मार्फीन हाइड्रोक्लोराइड—½ से १ रत्ती ।

घातक काल:—९ से १२ घण्टे । अधिक से अधिक ३ दिन ।

चिकित्सा :—

(१) सर्वप्रथम यथाशीघ्र सामान्य उष्णोदक से आमाशय-प्रक्षालन करना चाहिये और द्रव रासायनिक परीक्षा के लिये अलग रखना चाहिये ।

(२) बाद में २० औंस जल में १० से १५ ग्रेन पोटॅशियम परमेंगनेट मिलाकर या हलके गुलाबी रंग का द्रव बनाकर उस द्रव से लगातार अनेक बार आमाशय का प्रक्षालन करते जाना चाहिये जब तक बाहर आनेवाले द्रव का रंग वैसा ही न हो जैसा डाला गया था और उस द्रव में अफीम की गन्ध न हो ।

पोटॅशियम परमेंगनेट अफीम का रासायनिक प्रतिविष है । इससे अहिफेन के सभी घटक निष्क्रिय हो जाते हैं और किसी भी रासायनिक परीक्षा द्वारा अफीम की निश्चिति करना कठिन होता है । अतः नं० १ उपक्रम में लिखे हुए रीति से प्रथम उष्णोदक से आमाशय का प्रक्षालन करना उचित है । पर्याप्त प्रक्षालन होने पर लगभग १० औंस द्रव आमाशय में छोड़ देना चाहिये । इसमें थोड़ा द्रव मिश्रित गन्धकाम्ल (Dilute Sulphuric Acid) मिलाने से पोटॅशियम परमेंगनेट की क्रिया अधिक अच्छी होती है ।

समय पर तत्काल पोटॅशियम परमेंगनेट न मिलने पर चाय के क्वाथ से, टॅनिक ॲसिड के द्रव से या जांतव कोयले के चूर्ण के द्रव से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये ।

मॉर्फिन का अधस्त्वक् इन्जेक्शन देने से यदि विषैले लक्षण उत्पन्न हो जायँ तो भी आमाशय का प्रक्षालन आवश्यक होता है । क्योंकि रक्त में मिलने के बाद 'विष' आमाशय में उत्सर्जित होता है और बाद में आमाशय से पुनः शोषित होकर विषैला प्रभाव दिखा सकता है ।

(३) विषका उत्सर्ग बढ़ाने के लिये आमाशय-प्रक्षालन के बाद ½ औंस मॅग्नेशियम सल्फेट पिलाना चाहिये और मूत्राशय को कथीटर से रिक्त करना चाहिये।

(४) उपर्युक्त तीनों उपक्रम करने के साथ २ ऑट्रोपिन सल्फेट $\frac{1}{40}$ ग्रेन तक की मात्रा में अधस्त्वक् इन्जेक्शन देना चाहिये। इस इन्जेक्शन को फिर से दे सकते हैं जब तक कि नेत्रों के तारे विस्फारित न हों। परन्तु अट्रोपिन के स्वयं विषैले लक्षण न हों इस बात की ओर ध्यान देना चाहिये।

(५) लाक्षणिक चिकित्सा—तन्द्रा-रोगी प्रारम्भिक दो अवस्थाओं में हो तो उसको गरम या ठंडा पानी चेहरे पर मारकर या घुमाकर सोने नहीं देना चाहिए परन्तु रोगी की पेशियां शिथिल हो गई हों तो ऐसा करने से कोई लाभ नहीं। शीतलस्वेद-त्वचा को पोंछकर शरीर को गरम रखने का प्रयत्न करना चाहिए। हृदय को ठीक रखने के लिये कॅफीन या स्ट्रिक्नीन सल्फेट का इन्जेक्शन देना चाहिये। गरम चाय या कॉफी मुख द्वारा या गुदाद्वारा देना उचित है। श्वास केन्द्र तथा हृदय की उत्तेजना के लिए ५ से १५ सी. सी. की मात्रा में कोरॅमिन शिरा द्वारा या पेशीगत इन्जेक्शन से देना चाहिये। लोबेलीन के इन्जेक्शन से भी लाभ हो सकता है। ५ से ७ प्रतिशत कार्बनडॉय ऑक्साइड के साथ प्राणवायु (Oxygen) को सुंघाना चाहिए। कृत्रिम श्वासक्रिया करनी चाहिए तथा रोगी अत्यधिक तन्द्रा या मूर्छा में हो तो विद्युत् प्रवाह (Faradic Current) से उत्तेजना पहुंचानी चाहिये। तीव्र मूर्छा, नीलिमा, श्वासकृच्छ्र इत्यादि अन्तिम अवस्था के लक्षण हों तो शिराव्यध द्वारा रक्तमोक्षण करना चाहिये तथा उतनी ही मात्रा में २५ प्रतिशत ग्लूकोज का द्रव या सामान्य लवणविलयन शिरा द्वारा देना चाहिये। ब्लड् प्रेशर ठीक रखने के लिए ॲड्रिनलिन क्लोराईड का प्रयोग करना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप:—

(क) बाह्य:—

मुख, ओठ, हाथ और पैरों की अँगुलियों के नखों में नीलिमा (Lividity) होती है। मुख और नासिका में फेन पाया जा सकता है। मृत्यूत्तर अधस्त्वक् वैवर्ण्य स्पष्ट होता है।

(ख) आभ्यन्तरिक :—

फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य और शोथ होता है। श्वासप्रणाली में फेन पाया जाता है। यदि चिकित्सा न की गई हो तो आमाशय में अहिफेन के कण पाये जा सकते हैं। इसके अभाव में आमाशय और आमाशयिक पदार्थों में अहिफेन की गन्ध आयेगी। मस्तिष्क और उसकी कलाओं में रक्ताधिक्य होता है। उदर के अन्य अङ्गों में भी थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य होता है।

दसवाँ अध्याय

मस्तिष्क पर प्रभाव करनेवाले विष।
(Cerebral Poisons)।

मादक या संज्ञाहारि विष।
(Inebriants or Anaesthetic)।

मद्य (Alcohol)

परिचय :—

अलकोहल कई प्रकार के होते हैं जैसे अमिल (Amyl), इथिल (Ethyl), प्रॉपिल (Propyl), मिथिल (Methyl), बेन्फिल (Benzyl), इत्यादि। ओषधि के रूप में इथिल अलकोहल का प्रयोग होता है। शुद्ध मद्य को ऍबसोल्यूट (Absolute) अलकोहल कहते हैं, इसमें ९९ प्रतिशत इथिल अलकोहल होता है। मेथीलेटेड स्पिरिट (Methylated spirit) में ९५ प्रतिशत और रेक्टिफाइड स्पिरिट (Rectified spirit) में ९० प्रतिशत इथिल अलकोहल होता है। पीने के लिए कई प्रकार के मद्य काम में लाये जाते हैं। जिनके नाम नीचे लिखे हुये हैं और उनके सामने उनमें उपस्थित इथिल अलकोहल की आयतनानुसार (By volume) मात्रा भी लिखी हुई है :—

(१) ह्विस्की (Whisky)	४० प्रतिशत।
(२) रम (Rum)	५१ से ५६ प्रतिशत
(३) जिन (Gin)	५१ से ५६ प्रतिशत
(४) ब्राँडी (Brandy)	४० से ४० प्रतिशत
(५) मडेइरा (Madeira)	२२ प्रतिशत तक

(६) पोर्ट (Port)	२० प्रतिशत
(७) शेरी (Sherry)	१६ से १८ प्रतिशत
(८) शेम्पेन (Champagne)	१० से १३ प्रतिशत
(९) क्लेरेट (Claret)	८ से १२ प्रतिशत
(१०) एल (Ale)	३ से ७ प्रतिशत
(११) बीयर (Beer)	१ से ३ प्रतिशत

कुछ मुख्य मुख्य आसव और अरिष्टों के नाम और उनमें उपस्थित इथिल अलकोहल की मात्रा नीचे लिखी हुई है:—

(१) अभयारिष्ट	६ से ७ प्रतिशत
(२) अश्वगन्धारिष्ट	७ से ८ प्रतिशत
(३) अशोकारिष्ट	७ से ८ प्रतिशत
(४) खदिरारिष्ट	७ से ८ प्रतिशत
(५) दशमूलारिष्ट	९ से १० प्रतिशत
(६) मधुकारिष्ट	८ प्रतिशत
(७) रोहितकारिष्ट	७ से ८ प्रतिशत
(८) अरविंदासव	७ से ८ प्रतिशत
(९) उशीरासव	८ से ९ प्रतिशत
(१०) कुटजासव	८ से ९ प्रतिशत
(११) कुमार्यासव	६ से ९ प्रतिशत
(१२) जम्ब्वासव	९ प्रतिशत
(१३) द्राक्षासव	७ से ९ प्रतिशत
(१४) लोहासव	८ से ९ प्रतिशत

लक्षण:—

मुखमण्डल रक्त वर्ण का हो जाता है। मानसिक विभ्रम (Mental confusion) होता है। भाषण—क्रमहीन, अबद्ध और अस्पष्ट होता है। पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं। रोगी प्रलाप करने लगता है। शरीर की माँसपेशियाँ ढीली और अधिकार के बाहर होती हैं। रोगी चलने में लड़खड़ाता है। परावर्त्तन न हो जाते हैं। पूर्ण संज्ञाहीनता की अवस्था आ जाती है। प्रश्वास में मद्य का तीव्र

गन्ध होती है। शरीर का तापक्रम साधारण से कम हो जाता है। त्वचा शीतल और स्वेदयुक्त होती है। श्वासावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

कभी २ प्रारम्भिक लक्षणों के बाद हृल्लास और वमन होकर रोगी की दशा सुधरने लगती है। दशा सुधरने के ये लक्षण माने जाते हैं। मृत्यु के पूर्व कभी २ आक्षेप होते हैं। न्युमोनिया या फुफ्फुस-शोफ (Oedema) के उपद्रवों से भी मृत्यु होने की संभावना होती है।

घातक मात्रा—शुद्ध अलकोहल—१ से २½ छटाँक।

घातक काल:—१२ से २४ घण्टा।

चिकित्सा:—रोगी के चेहरे पर गरम या ठंडा पानी मार कर जगाए रखना चाहिए। यथाशीघ्र वमन कराकर या आमाशय का प्रक्षालन करके अशोषित विष को निकालना चाहिये। अवसाद, नाडीदौर्बल्य, श्वासावरोध इनकी सामान्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

जीर्ण विष (Chronic Poisoning)

लक्षण:—मद्य चिरकाल तक लगातार सेवन करने से उसके परिणामस्वरूप अनेक शारीरिक अङ्गों में स्थाई विकृति होती है। विशेषतया पाचकसंस्थान, यकृत् तथा नाडीसंस्थान के उपद्रव दिखाई देते हैं। अग्निमान्द्य, हृल्लास, वमन या दस्त ये पाचन की विकृति के लक्षण होते हैं। कामला उत्पन्न होती है। बोलने में जिह्वा लड़खड़ाती है और प्रान्तीय नाडीशोथ के कारण शाखाओं में कम्पन होते हैं। प्रथम स्मृतिनाश, सदसद्विवेक बुद्धि का नाश और अन्त में मानसरोग के लक्षण स्पष्ट होते हैं। यकृत् कोथ (Cirrhosis) के बाद यकृत्- शोष होने से दकोदर और सर्वांगशोफ ये उपद्रव होते हैं।

मदात्ययजन्य कम्पन (Delirium Tremeus):—मस्तिष्क पर मद्य का चिरकाल तक प्रभाव होने से यह अवस्था उत्पन्न होती है। इसका अकस्मात् दौरा सा आता है। मद्यपी व्यक्ति में अकस्मात् मद्य का अतियोग होने से, अकस्मात् मद्यपान रोकने से या तीव्र संक्रामक रोग या शारीरिक आघात के बाद दौरा होने की संभावना होती है। समय और स्थान का चित्तविभ्रम तथा चक्षुरिन्द्रिय तथा श्रवणेन्द्रियों के अर्थ-ग्रहण में विकृति होती है। पेशियों में कम्पन होते हैं। निद्रानाश होता है। आत्महत्या या परहत्या करने में या

अपनी या दूसरे की संपत्ति को हानि पहुँचाने में उद्युक्त होता है। संक्षेप में यह अवस्था मानसरोग के रूप में होती है जो चिरकालीन मदात्यय के परिणामस्वरूप उत्पन्न होता है।

चिकित्सा:—

रोगी को सामान्य जल, बार्ली का पानी तथा ग्लूकोज पर्याप्त मात्रा में देना चाहिये। आस्थापनबस्ति देने के बाद गुदाद्वारा कोष्ण सामान्य लवण द्रव का प्रयोग करना चाहिये। मानसिक उद्वेग के शमन के लिये पॅरॉल्डिहाइड (Paraldehyde) का योग्य मात्रा में प्रयोग करना चाहिये। हायोसाइन हायड्रोब्रोमाइड (Hyoscine Hydrobromide) का प्रयोग भी $\frac{१}{२००}$ ग्रेन की मात्रा में अधस्त्वक् इन्जेक्शन द्वारा कर सकते हैं।

मृत्यूत्तर रूप—

मृत्यूत्तर अधस्त्वक् वैवर्ण्य स्पष्ट होता है। आमाशय की श्लैष्मिक कला में प्रायः रक्ताधिक्य होता है और उसमें शोथ पाया जाता है। आमाशयिक पदार्थों में मद्य की गन्ध मालूम होती है। फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य होता है। मस्तिष्क में भी रक्ताधिक्य होता है।

क्लोरोफार्म (Chloroform)।

सूत्र ($CHCl_3$)

परिचय:—

यह एक वर्णरहित उड़नशील तरल पदार्थ है। इसका स्वाद किंचित् मधुर और दाहकारक होता है। इसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है। इसका विशिष्ट घनत्व १·४८५ से १·४९० तक होता है। यह जल के २०० भाग में घुलनशील है। इसके अतिरिक्त यह मद्य, ईथर, स्थिर और उड़नशील तैलों (Fixed & volatile oils) में भी सरलतापूर्वक मिल जाता है।

इसके निम्नलिखित योग महत्त्व के हैं:—

(१) स्पिरिट क्लोरोफार्म मात्रा ५ से ३० बूँद
(२) ॲक्वा क्लोरोफार्म मात्रा $\frac{१}{४}$ से $\frac{१}{२}$ छटाँक
(३) टिंचर क्लोरोफार्म कम्पाउन्ड मात्रा १५ से ६० बूँद
(४) टिंचर क्लोरोफार्म एट मार्फिया कम्पाउन्ड मात्रा ५ से १५ बूँद

शुद्ध क्लोरोफार्म हवा तथा सूर्यप्रकाश के सम्पर्क में आने से उससे कार्बोनिल क्लोराइड या फासजेन गॅस (Carbonyl chloride or Phosgene Gas); क्लोरीन तथा हायड्रोक्लोरिक ॲसिड ये विषैले पदार्थ बनते हैं। १ प्रतिशत मद्य मिलाकर नीले या आस्मानी रंग के बोतल में रखने से यह परिणाम नहीं होता। क्लोरोफार्म जल (Aque Chloroform) ४०० भाग पानी में १ भाग क्लोरोफार्म मिलाकर तथा स्पिरिट क्लोरोफार्म (Spirit Chloroform) २० भाग रेक्टिफाइड स्पिरिट में १ भाग क्लोरोफार्म मिलाकर बनते हैं।

लक्षण:—

क्लोरोफार्म के विषैले प्रभाव (१) उसके बाष्प सूंघने से तथा (२) पीने से इन २ प्रकारों से उत्पन्न होते हैं।

(१) बाष्प सूंघने से उत्पन्न होनेवाले लक्षण—

अभ्यास की सुविधा के लिये लक्षण ३ अवस्थाओं में विभाजित किये जाते हैं:—

(१) उत्तेजना की अवस्था (Excitement)।

(२) संज्ञानाश की अवस्था (Anaesthesia)।

(३) मस्तिष्क कार्यनाश की अवस्था (Paralysis)।

(१) उत्तेजना की अवस्था:—थोड़ा सा क्लोरोफार्म सुंघाते ही रोगी को गले में क्षोभ सा प्रतीत होता है। नेत्रों में और धीरे २ पूर्ण शरीर में उष्णता सी प्रतीत होती है। त्वचा में कुछ रेंगता सा प्रतीत होता है। दम घुटने लगता है और मानसिक विभ्रम (Corfusion) होने लगता है। इसी अवस्था में रोगी हँसने, रोने, चिल्लाने या गाली देने लगता है। साथ २ हाथ-पैर झाड़ने लगता है जिससे उसको यन्त्रित रखने की आवश्यकता होती है। श्वास-प्रश्वास तथा नाडी की गति बढ़ जाती है। नेत्रों के तारे प्रथम विस्फारित परन्तु अन्त में प्राकृतिक आकार के होते हैं। यह अवस्था पूर्ण होने के लिये लगभग ४ मिनिट लगते हैं।

(२) संज्ञा-नाश की अवस्था:—इस अवस्था में शल्यकर्म किया जाता है। शरीर की पेशियाँ ढीली पड़ती हैं। सभी परावर्तन नष्ट होते हैं। श्वास-प्रश्वास तथा हृदय की गति प्राकृतिक या उससे क्वचित् कम होती है। तापक्रम भी प्राकृतिक से कम होता है। नेत्रों के तारे किंचित् संकुचित रहते हैं। इस अवस्था में बाष्पों का सुंघाना बन्द करने पर भी यह अवस्था २० से ४० मिनिट तक या

उससे भी अधिक जारी रह सकती है और क्वचित् रोगी फिर से होश में नहीं आता और उसकी मृत्यु होती है।

(३) मस्तिष्क-कार्यनाश की अवस्था :—वाष्पों को सुंघाना द्वितीय अवस्था के आगे जारी रहने से यह अवस्था उत्पन्न होती है। शरीर की पेशियाँ पूर्णतया शिथिल होती हैं। मल तथा मूत्र का अनैच्छिक उत्सर्ग होने लगता है। शरीर और ओष्ठों में नीलिमा होती है और त्वचा पर अत्यधिक शीतल स्वेद होने लगता है। श्वास-प्रश्वास मन्द और अनियमित तथा नाड़ी भी दुर्बल और अनियमित चलती है। नेत्रों के तारे विस्फारित रहते हैं। हृत्क्रिया या श्वास-प्रश्वास रुकने से प्रायः मृत्यु होती है। इन्हीं कारणों से मृत्यु उपर्युक्त तीनों में से किसी भी अवस्था में हो सकती है।

यकृत्-मेदापक्रांतिजन्य कामला:—(Delayed Chloroform poisoning):—अस्थिमार्दव, चिरकालीन दौर्बल्य उत्पन्न करनेवाले रोग, यकृत् रोग, इन रोगों से पीड़ित रोगियों में तथा विशेषतया बच्चों में यह परिणाम होने की सम्भावना अधिक रहती है। क्लोरोफार्म सूंघने के २-३ दिन के बाद यकृत् के स्थान में स्पर्शासह्यता के साथ-साथ कामला हो जाता है। रोगी को अत्यधिक बेचैनी के साथ २ लगातार वमन होते हैं। नाड़ी की गति बढ़ती है। तन्द्रा, प्रलाप और त्वचा के नीचे रक्तस्राव ये उपद्रव होते २ मृत्यु होती है। इस अवस्था में मृत्यूत्तर परीक्षा के बाद यकृत्, हृदय तथा वृक्कों में मेदापक्रांति के परिवर्तन दिखाई देते हैं।

(२) क्लोरोफार्म पीने से होनेवाले लक्षण :—

मुंह, गला तथा आमाशय में क्षोभ उत्पन्न होकर तीव्र दाह होने लगता है। इसके बाद वमन और दस्त होने लगते हैं। वमन में क्लोरोफार्म की गन्ध रहती है और रक्त भी हो सकता है। इतना होते-होते लगभग १० मिनट के भीतर रोगी संज्ञाहीन तथा मूर्छित होता है। नेत्रों के तारे विस्फारित, श्वास-मन्द, नाड़ी दुर्बल, द्रुतगति और अनियमित तथा त्वचा में शीतलस्वेद होता है। हृदयगति या श्वास बन्द होने से मृत्यु होती है। फुफ्फुस-शोफ या आमाशयान्तरकला शोथ (Gastritis) के परिणाम-स्वरूप भी मृत्यु होती है। रोगी के बचने पर यकृतदाल्युदर के साथ २ कामला होती है।

चिकित्साः—

बाष्पों के सूंघने से विषैले लक्षण होने पर सुंघाना तुरन्त बन्द करना तथा जिह्वा को संदंश से या नीचे के जबड़े को आगे बढ़ाकर बाहर खींचना चाहिये। श्वास मार्ग को साफ रखना चाहिये और कृत्रिम श्वासक्रिया जारी रखनी चाहिये। श्वास-केन्द्र की उत्तेजना के लिए विद्युत का प्रयोग करना और ऑक्सीजन सुंघाना चाहिये। हृदय की उत्तेजना के लिए स्ट्रिक्नीन, या कॅफीन का प्रयोग करना, अड्रिनॅलिन का सीधे हृत्पेशी में इन्जेक्शन देना या अन्तमें हृत्पेशी का संकोच प्रारम्भ करने के लिए महाप्राचीराका भेदन करके उसके द्वारा हाथ से हृत्पेशी का पीडन करना, ये उपाय हैं।

यकृतमेदापक्रान्तिजन्य कामला की सामान्य सूत्रों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

पीने से विषैले परिणाम होने पर विषचिकित्सा के सामान्य सूत्रों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये।

घातक मात्राः—कनसेन्ट्रेटेड क्लोरोफार्म—१५ से ३० बूंद।

साधारण क्लोरोफार्म—युवा के लिये ४ से ६ ड्राम।

बालक के लिए—१ ड्राम (६० बूंद)।

घातक कालः—सुंघाने पर—२ मिनट। पीने पर—५ से ६ घण्टे।

क्लोरल हाइड्रेट (Chloral Hydrate)।

परिचय :—

यह एक वर्णरहित स्फटिकीय पदार्थ है। इसका स्वाद कटु और तीक्ष्ण होता है। इसमें एक विशेष प्रकार की तीक्ष्ण गन्ध होती है। वायु में खुला रख देने से यह धीरे-धीरे उड़ जाता है। यह क्लोरोफार्म के ३ भाग और जल के लगभग १ भाग में सरलतापूर्वक घुल जाता है। इसके अतिरिक्त ईथर और ९० प्रतिशत के मद्य में भी घुलनशील है। औषधि के रूप में इसको २½ से १० रत्ती तक की मात्रा में प्रयोग करते हैं।

लक्षण—

मुँह, गला और आमाशय में दाह होता है। तन्द्रा मालूम होती है। तदनन्तर

रोगी को गाढ़ निद्रा आ जाती है। मूर्च्छा उत्पन्न हो जाती है। मुखमण्डल नील वर्ण का होता है। पुतलियाँ संकुचित हो जाती हैं। नाड़ी दुर्बल, मन्द और क्रमहीन चलने लगती है। श्वासक्रिया मन्द, परिश्रमशील, उथली और खड़खड़ाहट के साथ होती है। त्वचा शीतल और स्वेदयुक्त होती है। शरीर का तापक्रम साधारण से कम हो जाता है। मांसपेशियाँ ढीली पड़ जाती हैं। हृत्केन्द्र (Cardiac centre) और श्वासकेन्द्र (Respiratory centre) का पक्षाघात हो जाता है। श्वासावरोध अथवा हृदयावसाद होकर मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा:—१५ से ६० रत्ती। घातक काल:—१० से १२ घंटे।

चिकित्सा:—

(१) वामक औषधियों द्वारा वमन कराना चाहिये।

(२) क्षारीय विलयन से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये।

(३) उत्तेजना के लिये स्ट्रिकनीन आदि इन्जेक्शन लगाने चाहिये।

(४) शरीर के ताप की रक्षा के लिये उष्णोदक से भरी बोतलों से सेंक करना चाहिये।

(५) पीने के लिये गरम चाय अथवा कॉफी देना चाहिये।

(६) श्वासावरोध के लिये आवश्यकतानुसार आक्सीजन सुंघाना अथवा कृत्रिम श्वास-क्रिया करनी चाहिये।

पेट्रोलियम (Petroleum)

परिचय:—

यह अमेरिका, रूस, बर्मा इत्यादि में पृथ्वी के अन्दर बालू की चट्टानों के नीचे पाया जाता है। इन चट्टानों को तोड़कर बड़े-बड़े नलों के द्वारा इसे बाहर निकाल कर एकत्र किया जाता है। इसको शुद्ध करके जलाने के काम में वा अन्य कार्यों में प्रयोग किया जाता है। शुद्ध किये हुये पेट्रोलियम को केरोसीन या मिट्टी का तेल कहते हैं। पेट्रोल तथा व्हसिलीन ये भी पेट्रोलियम के मुख्य घटक हैं। इसका विशिष्ट घनत्व ०-७९० से ०·८२५ तक होता है।

लक्षण:—मिट्टी का तेल या पेट्रोल पीने से निम्न लक्षण उत्पन्न होते हैं:—

मुँह, गला और आमाशय में दाहयुक्त पीड़ा होती है। प्रश्वास में तेल की गन्ध आती है। प्यास बहुत लगती है। शिरोभ्रम (Gidiness) होता है।

शिरोगौरव उत्पन्न हो जाता है। मुखमण्डल पीत अथवा नील वर्ण का होता है। वमन होती है जिसमें तेल की गन्ध रहती है। तन्द्रा मालूम होती है। मूर्च्छा उत्पन्न हो जाती है। हृदयावसाद होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

मिट्टी का तेल पीने से विषाक्त होने की दुर्घटना विशेषतया बच्चों में अधिक दिखाई देती है। पीने के बाद आमाशय से या अन्त्र से शोषित विष का प्रभाव विशेषतया नाडीसंस्थान पर विशेष होता है परन्तु पीते समय, वमन करते समय या चिकित्सा में आमाशय का प्रक्षालन करते समय मिट्टी के तेल का कुछ भाग श्वासमार्ग में और आगे श्वासनलिकाओं के अन्तिम भागों में (Alveoli) जाकर सभी भागों में क्षोभ तथा शोथ उत्पन्न होता है। श्वासनलिकाओं के अन्तिम भागों की दीवाल फटकर तेल का प्रभाव फुफ्फुसों पर होता है और बच्चों में उपद्रव स्वरूप ब्रांकोन्युमोनिया, न्युमोनिया, फुफ्फुसावरण शोथ, हृदयावरण शोथ, हृदयावरण के नीचे हवा भरना (Pneumo-Pericardium), फुफ्फुसावरण में हवा (Pneumo-Thorax) या फुफ्फुसों के बाहर या वक्षगुहा में हवा भरना (Emphysema) इत्यादि उपद्रव होते हैं।

युवा व्यक्ति में तेल के बाष्पों को सूंघने से, शिरःशूल, चक्कर आना, हृल्लास, चित्तविभ्रम, अत्यन्त थकावट, तन्द्रा और मूर्च्छा ये उपद्रव होते हैं। हृत्क्रियावरोध या श्वासावरोध से मृत्यु होने के पूर्व शरीर में नीलिमा और आक्षेप भी होते हैं।

घातक मात्रा:—$\frac{1}{2}$ छटाँक। **घातक काल:**—७ घंटे।

चिकित्सा:—यदि विष पीया हो तो—वामक औषधियों के द्वारा वमन कराना चाहिये। उष्णोदक से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। उत्तेजक औषधियाँ देनी चाहिये। यदि आवश्यकता हो तो कृत्रिम श्वास-क्रिया करनी चाहिये।

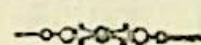
श्वासमार्ग में तेल पहुँचने से जो उपद्रव विशेषतया बच्चों में होते हैं उनको देखते हुए बच्चों में आमाशय-प्रक्षालन जहाँ तक हो सके नहीं करना चाहिये या तो अत्यन्त सावधानी से करना चाहिये, ताकि श्वासमार्ग में तेल न पहुँच सके (Aspiration).

पेट्रोलियम के बाष्प सूंघने से उत्पन्न विष में व्यक्ति को खुले हवा में रखकर कृत्रिम श्वास क्रिया करना, ऑक्सीजन सुंघाना तथा अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

पेट्रोलियम पीने से उत्पन्न विष में प्रारम्भ में आमाशय का प्रक्षालन करना हो तो पानी में थोड़ा खाने का सोडा डालकर प्रक्षालन करना अच्छा होता है। बाद में कुछ मात्रा में जैतून आमाशय में छोड़ना चाहिये।

श्वासमार्ग के उपद्रवों की चिकित्सा के लिये या प्रतिषेधक रूप में भी पेन्सिलिन इन्जेक्शन तथा आक्सीजन का प्रयोग प्रारम्भ करना हितावह होता है।

मृत्यूत्तर रूप—फुफ्फुसों और वायुनलिकाओं में तेल की गन्ध होगी। आमाशय और आँतों में भी पेट्रोलियम की गन्ध होती है।



ग्यारहवाँ अध्याय

मस्तिष्क पर प्रभाव करनेवाले विष।

(Cerebral Poisons)

(४) प्रलापक विष।

(Deliriant poisons)

1964. 1960.56

धतूरा

(Dhatura alba and Dhatura fastuosa)।

धतूरे के बीज और पत्तियाँ बहुत विषैली होती हैं। चोरी और डाका डालने के उद्देश्य से तथा स्त्रियों के साथ व्यभिचार और बलात्कार करने के लिये भी धतूरे का बहुत ज्यादा प्रयोग किया जाता है।

धतूरा २ प्रकार का होता है। श्वेत तथा काला। धतूरे के सर्वाङ्ग में तथा विशेषतया फल और बीजों में जो विषैला घटक होता है उसको धतूरिन (Dhaturin) कहते हैं। यह रासायनिक तथा क्रिया की दृष्टि से ॲट्रोपीन या हायोसायामिन (Hyoscyamine) के समान होता है।

लक्षण:—

फल या बीजों को कल्क या शर्बत के रूप में लेनेसे लगभग ½ घण्टे में ही

मुँह, गला तथा आमाशय में तीव्र शोष तथा दाह होता है । तीव्र तृष्णा लगती है। वमन होता है । और आमाशय में पीडा होती है । रोगी बोलने में असमर्थ होता है । साथ हो रोगी का चेहरा और नेत्र लाल हो जाते हैं, त्वचा शुष्क होकर शरीर का तापक्रम बढ़ता है । चक्कर आते हैं और पेशियाँ शिथिल होने से चलने में असमर्थ होता है । नेत्रों के तारे विस्फारित होते हैं और रोगी को एक वस्तु की जगह दो दिखाई देने लगती है । कभी २ शरीर का तापक्रम अत्यधिक बढ़ जाता है । नाडी प्रारम्भ में अच्छी रहती है परन्तु आगे चलकर दुर्बल तथा अनियमित हो जाती है ।

रोगी प्रलाप करने लगता है । कभी २ धीरे २ असंबद्ध प्रलाप करता है और कभी २ चिल्लाने और भागने लगता है । बिस्तरे या बदन के कपड़े नोचता है तथा हाथों की उंगलियों के सिरों से धागे खीचने जैसा हाथ चलाता है । रूप या शब्द के अभाव में कोई पदार्थ देखता है या स्वर सुनता है (Hallucinations) ।

योग्य चिकित्सा न होने पर तन्द्रा और प्रलाप की अवस्था पूर्ण मूर्च्छा में परिणत होती है और आक्षेप होकर मृत्यु होती है । हृत्कार्यावरोध या श्वासावरोध से मृत्यु होती है ।

घातक मात्रा :—बीज का चूर्ण—५ से ७½ रत्ती ।

घातक काल :—१२ से २४ घण्टे ।

चिकित्सा :—

वामक औषधियों का प्रयोग करके वमन कराना चाहिये । पोटॅशियम परमैंगनेट से या टॅनिक ॲसिड के द्रव से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये । प्रतिविष के रूप में पायलोकारपीन नाइट्रेट (Pilocarpine nitrate) का इन्जेक्शन ग्रेन $\frac{1}{10}$ से $\frac{1}{3}$ की मात्रा में लगाना चाहिये । यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इन्जेक्शन लगाया जा सकता है । उत्तेजना के लिये कार्डियाझोल (Cardiazol) दिया जा सकता है । शरीर के ताप की रक्षा के लिये उष्णोदक से भरी बोतलों से सेंक करना चाहिये । श्वासावरोध की अवस्था में कृत्रिम श्वास-क्रिया करनी चाहिये ।

प्रलाप और बेचैनी के लिये क्लोरोफार्म सुंघा सकते हैं । चेहरे पर ठण्डे

पानी को मारने से शान्ति मिल सकती है। उष्णोदक की आस्थापनबस्ति देने से विषोत्सर्ग में मदत होगी तथा रोगी को कुछ उत्तेजना पहुँचती है।

मृत्यूत्तर रूप :—

मुख और हाथ-पैर की अंगुलियों के नखों में नीलिमा होती है। आँखों की पुतलियाँ प्रसारित होती हैं। आमाशय के धतूरे के बीज अथवा उसके कण पाये जाते हैं। फुफ्फुस, आमाशय, यकृत्, प्लीहा, वृक्क, अन्त्र, मस्तिष्क इत्यादि आभ्यन्तरिक अङ्गों में थोड़ा बहुत रक्ताधिक्य होता है।

बेलाडोना (Belladona)

परिचय :—

इसके वृक्ष विदेशों में उत्पन्न होते हैं। जब इस वृक्ष में फूल आने लगते हैं, तब इसकी पत्तियों को तोड़कर एकत्र कर लिया जाता है। इसमें ०·३ प्रतिशत अलकलाइड होता है। इस वृक्ष की जड़ भी काम में आती है, जिसे सुखाकर एकत्र कर लिया जाता है। इसमें ०·४ प्रतिशत अलकलाइड होता है। इसकी पत्तियों और जड़ों में तीन प्रकार के अलकलाइड्स पाये जाते हैं। जिसके नाम निम्नलिखित हैं:—

(१) ऍट्रोपीन (Atropine)
(२) हायोसायमीन (Hyoscymine)
(३) बेलाडोनीन (Belladonnina)

बेलाडोना के निम्नलिखित योग विशेष महत्त्व के हैं :—

(१) पल्व (चूर्ण) बेलाडाना — मात्रा १/४ से १/२ रत्ती।
(२) ऐक्सट्रैक्ट् बेलाडोना सिक्कस — मात्रा १/८ से १/२ रत्ती।
(३) टिंचर बेलाडोना — मात्रा ५ से ३० बूंद।
(४) ऐक्सट्रैक्ट बेलाडोना लिक्विड — मात्रा १/४ से १ बूंद।
(५) ऐमप्लास्ट्रम बेलाडोना (प्रलेप)
(६) लिनीमेन्टम बेलाडोना (तैल)
(७) सपोज़ीटोरियम बेलाडोना (गुदवर्त्ति)।

लक्षण :—

मुखमण्डल रक्त वर्ण का हो जाता है। मुँह सूख जाता है। स्वरभेद होता है।

प्यास बहुत लगती है। आंखें रक्तवर्ण की हो जाती हैं। आँखों की पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं। त्वचा शुष्क और उष्ण होती है। शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है, लगभग १०७° फा० तक हो सकता है। नाड़ी पहले मन्द होती है किन्तु बाद में तीव्र और दुर्बल हो जाती है। श्वास-क्रिया पहले मन्द होती है किन्तु बाद में गहरी और जल्दी-जल्दी होती है। रोगी चलने में लड़खड़ाता है। शिरोभ्रम हो जाता है। प्रलाप करता है। बाद में रोगी को तन्द्रा मालूम होती है। अन्त में मूर्छित होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है। कभी २ मृत्यु के पूर्व आक्षेप भी होते हैं।

घातक मात्रा:—बेलाडोना-६० बूंद। एट्रोपीन सल्फेट $\frac{1}{२४}$ से $\frac{1}{२}$ रत्ती।

घातक-काल:—२४ घण्टे।

चिकित्सा:—इसकी सम्पूर्ण चिकित्सा धतूरे की ही तरह की जाती है।

मृत्यूत्तर रूप;—

श्वासावरोध के चिह्न मिलते हैं। समस्त आभ्यन्तरिक अङ्गों में रक्ताधिक्य होता है।

V. V. ... 1956-59

भाँग (Cannabis Indica)

परिचय —

भाँग के पौधे हरिद्वार, ऋषिकेश, पीलीभीत, इत्यादि बहुत से स्थानों में स्वतः उत्पन्न होते हैं। भारतवर्ष में भाँग का बहुत प्रयोग होता है। ओषधि के रूप में भाँग की पत्तियों का प्रयोग होता है किन्तु इस पौधे के पुष्प, पत्र, बीज, डण्ठल और गोंद—इन सबको निकालकर विभिन्न प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है, जैसा कि नीचे लिखा हुआ है :—

(१) **भांग**—यह पौधे की पत्तियों और डण्ठलों का मिश्रित चूर्ण होता है जो कि बाजार में भांग के नाम मिलता है।

(२) **गांजा**:—पौधे के फूलों को तोड़कर सुखाकर एकत्र करने पर जो वस्तु बनती है, उसे गाँजा कहते हैं। भारतवर्ष के साधू और संन्यासी इस गांजे को तम्बाकू के साथ मिलाकर चिलम में रखकर पीते हैं।

(३) **चरस**:—भाँग के पौधे की पत्तियों और शाखाओं से एक प्रकार का गोंद निकलता है, उसे एकत्र कर लिया जाता है और तम्बाकू में मिलाकर जो पदार्थ बनता है, उसे चरस कहते हैं।

(४) माजून :—भाँग की पत्तियों को सुखाकर चूर्ण करके शक्कर, दूध, घी, इत्यादि मिलाकर अवलेह बना लेते हैं। फिर यह सूखने पर मिठाई की भाँति प्रयोग की जाती है। विशेष तौर से होली के त्यौहार में हिन्दू लोग इस माजून को अधिक प्रयोग करते हैं।

विश्लेषण :—

इसमें एक प्रकार का गोंद—केनाबिनोन (Cannabinone), उड़नशील तैल, वसा, मोम ये घटक पाये जाते हैं। इसका मुख्य अलकलाइड केनाबिन (Cannabin) है।

भांग के योग :—

(१) एक्सट्रैक्ट केनाबिस इन्डिका मात्रा ½ से ½ रत्ती।
(२) टिंचर केनाबिस इन्डिका मात्रा ५ से १५ बूंद।

लक्षण:—इसकी दो अवस्थायें होती हैं:—

(क) उत्तेजना की अवस्था। (ख) निद्रावस्था।

(क) उत्तेजना का अवस्था :—रोगी के मन में कई प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं। व्यक्ति हर्षित होता है। मैथुन की इच्छा होती है। अधिक समय तक रोना, हँसना, गाना, चिल्लाना, बकना इत्यादि। कभी-कभी रोगी प्रलाप करने लगता है।

(ख) निद्रावस्था :—आँखों की पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं। सम्पूर्ण शरीर में अथवा उसके किसी भाग में गुरुता और संज्ञाहीनता उत्पन्न हो जाती है। सार्वाङ्गिक अवसन्नता-कभी-कभी। रोगी को निद्रा आ जाती है। जागने पर रोगी स्वस्थ हो जाता है। क्वचित् श्वासावरोध से मृत्यु होती है।

जीर्ण विष लक्षण।

भाँग का चिरकाल तक सेवन करने से अरुचि, उन्माद इत्यादि व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

घातक मात्रा :—ऐक्सट्रैक्ट—२½ से ३⅓ रत्ती। टिंचर—७½ बूंद।

घातक काल :—१२ से २४ घंटे।

चिकित्सा :—

आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये, या वामक ओषधियों का प्रयोग करके वमन कराना चाहिये। विरेचक ओषधियों का सेवन करा कर विरेचन कराना चाहिये। उत्तेजक ओषधियाँ देनी चाहिये और अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

कोकेन (Cocaine)

यह एरिथ्रोक्सिलॉन कोका (Erythroxylon Coca) नामक वृक्ष से निकाला हुआ अल्कलॉइड है। ये वृक्ष भारतवर्ष में जहाँ चाय के बगीचे हैं वहाँ या अन्य देशों में जैसे दक्षिण अमेरिका, जावा तथा सीलोन में भी होते हैं।

यह तिक्तरसयुक्त, रंग तथा गंधरहित स्फटिकीय पदार्थ होता है। जिह्वा या मुख की श्लैष्मिककला के संपर्क में आने से वे स्थान संज्ञाहीन हो जाते हैं। ओषधि मात्रा $\frac{१}{८}$ से $\frac{१}{४}$ ग्रेन है।

कोकेन हायड्रोक्लोर (Cocaine Hydrochloride) का उपयोग स्थानिक संज्ञाहरण के लिये शल्यशास्त्र के अनेक शाखाओं में होता है। मात्रा $\frac{१}{८}$ ग्रेन से $\frac{१}{४}$ ग्रेन। बीटा यूकेन (Beta eucaine), स्टोव्हेन (Stovaine) तथा नाव्होकेन (Novocaine) ये कोकेन जैसे ही परन्तु कृत्रिम-रीत्या बनाये हुये पदार्थ हैं।

लक्षण :—विषैले लक्षण अकस्मात उत्पन्न होने पर (Acute Poisoning) रोगी प्रथम अत्यधिक उत्तेजित होता है। चिल्लाने और दौड़ने लगता है और प्रलाप करता है परन्तु बाद में मस्तिष्क तथा सुषुम्ना के नाडी केन्द्रों का घात होने से तन्द्रा और मूर्च्छा होती है।

लक्षण धीरे २ प्रारम्भ होने पर मुँह तथा गले में शोष होता है उदर में तथा आमाशय में आकस्मिक संकोच होने से पीड़ा होती है। जिह्वा, हाथ तथा पैरों में शून्यता प्रतीत होती है। शिरःशूल, हृल्लास, तन्द्रा तथा बोलने में अशक्ति (Dysphagia) ये उपद्रव होते हैं। मुख और हाथ तथा पैरों पर नीलिमा (cyanosis) होती हैं और नेत्रों के तारे विस्फारित होते हैं। नाडी दुर्बल, तीव्र गतियुक्त तथा अनियमित होती है। श्वास-प्रश्वास भी अनियमित तथा उथले होते हैं। विशेषतया शिर और पूर्ण शरीर में शीतल स्वेद होता है।

प्रलाप तथा आक्षेप भी होते हैं। हृत्क्रिया या श्वास-प्रश्वास रुकने से मृत्यु होती है।

चिकित्सा :—अशोषित विष को वमन कराकर या आमाशय का प्रक्षालन करके निकालना चाहिये। रोगी को लिटाये रखना चाहिये। जिस स्थान में कोकेन द्रव लगाया हो उसको धोना या अधस्त्वक् इन्जेक्शन दिया हो तो वहां की बड़ी रक्तनलिओं को बाँधना चाहिए। उत्तेजना के लिए अमोनिया सुंघाना चाहिए। डिजिटॅलिस, स्ट्रिक्नीन, कॅफीन या कोरॅमिन इनका प्रयोग यथासमय करना चाहिये।

प्रलाप, आक्षेप और बेचैनी को कम करने के लिए क्लोरोफार्म सुंघाना चाहिये या फिनोबार्बिटल (Phenobarbital) जैसे ल्युमिनल (Luminal) का प्रयोग उचित समझा जाता है।

अमिल नॉइट्राइट (Amyl Nitrite) इसका प्रतिविष है। इसको सुंघाना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर कृत्रिम श्वास-क्रिया करना तथा ऑक्सीजन सुंघाना चाहिए।

कॅलशियम क्लोराइड (Calcium Chloride) का शिरा द्वारा प्रयोग करने से कोकेन का विषैला प्रभाव कम होता है।

कोकेन का जीर्ण विष।

(Chronic poisoning)।

चिरकाल तक कोकेन के प्रयोग का अभ्यास होने से अन्त में विषैले लक्षण उत्पन्न होते हैं।

लक्षण :—रोगी क्रमशः निर्बल तथा कृश होता जाता है। निद्रानाश होने से पाचन की विकृतियाँ भी होती हैं। साथ २ स्मृतिभ्रंश और सामान्य नीति-नियमों के अनुसार व्यवहारभ्रष्टता भी दिखाई देती है। रोगी अकेला चिन्तित बैठने लगता है। त्वचा के नीचे बालू के कण रेंगते हुए प्रतीत होते हैं (Magnan's Symptom)। या त्वचा के ऊपर कोई सूक्ष्म जन्तु या खटमल रेंगते प्रतीत होते हैं। (Cacaine bugs)। चिरकाल तक कोकेन खाने वालों के दांत तथा जिह्वा काले दिखाई देते हैं।

चिकित्सा :—कारण को धीरे २ हटाना तथा अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिए।

सुषुम्ना पर प्रभाव करनेवाले विष।

(Spinal Poisons)

कुचला (Strychnos Nux Vomica)।

परिचय :—

कुचला के वृक्ष पीलीभीत, मालाबार इन स्थानों पर अधिक संख्या में उत्पन्न होते हैं। इस वृक्ष के सभी अवयव जैसे पत्तियाँ, फल, बीज, छाल इत्यादि बहुत विषैले होते हैं। औषधि के लिए इसके बीजों को ग्रहण किया जाता है। जब ये बीज पक जाते हैं तो इनको वृक्ष से पृथक् करके सुखाकर संग्रह कर लिया जाता है। बीज तश्तरी की तरह बीच में गड्ढेदार और किनारे-किनारे चारो ओर कठिन और मोटा होता है। इनका व्यास १० से ३० मिलीमीटर तक होता है। बीज की मुटाई ४ से ६ मिलीमीटर तक होती है। बीज के किनारे गोल होते हैं। इनकी सतह राख की तरह वा कुछ कुछ भूरी होती है। इनमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती। इनका स्वाद बहुत कड़ुआ होता है।

विश्लेषण :—

(१) स्ट्रिकनीन (Strychnine)—०·२ से ०·५ प्रतिशत
(२) ब्रूसीन (Brucine)—०·५ से १ प्रतिशत।
(३) केफियो टैनिक ऐसिड (Caffeo-tannic acid)।
(४) लोगानीन (Loganin)—यह एक प्रकार की ग्लूकोसाइड (Glucoside) होती है।

कुचला के निम्नलिखित योग महत्त्व के हैं :—

(१) कुचला चूर्ण—मात्रा ½ से २ रत्ती तक
(२) ऐक्सट्रैक्ट नक्स वामिका सिक्कम—मात्रा ⅛ से ½ रत्ती तक
(३) ऐक्सट्रैक्ट नक्स वामिका लिक्विड-मात्रा १ से ३ बूंद तक
(४) टिन्चर नक्स वामिका—मात्रा १० से ३० बूंद तक।

लक्षण :—

मुंह में अत्यधिक कड़वा स्वाद मालूम होता है। गले में संकोच का सा अनुभव होता है। शरीर की मांसपेशियों में संकोच होता है। शरीर कमान की भांति मुड़ जाता है, केवल शिर का पीछे का भाग और एड़ी जमीन पर रहते

हैं। कुचला विष की क्रिया सुषुम्ना पर होने से शरीर की सभी पेशियों में एक साथ आक्षेप प्रारम्भ होते हैं। संकोचों के बीच में, प्रारम्भ में, पेशियाँ ढीली पड़ती हैं (Clonic Cotractions) परन्तु बाद में पेशिओं में कुछ संकोच बन जाता है। (Tonic Contraction)। शरीर धनुष की भाँति मुड़ जाता है (Opisthotonos) संकोच के समय शरीर कभी २ उदर की दिशा में (Emprosthotonos) या पार्श्व में (Plenrosthotonos) धनुष्वत् मुड़ जाता है। आँखें बाहर की ओर निकल आती हैं। आँखों की पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं। ऊर्ध्व और अधो हनु दृढ़ता से आपस में मिल जाते हैं। कभी २ मुँह से फेन गिरने लगता है। कभी २ रक्त भी आता है। संकोच के समय मुखपर नीलिमा रहती है। श्वास-प्रश्वास की पेशियों में तथा महाप्राचीरा में संकोच होने से आमाशय के पूर्व भाग में तीव्र पीड़ा होती है और श्वासकृच्छ्र भी होता है। मुख की पेशियों के संकोचों के कारण और ऊर्ध्व तथा अधोहन्विका के एक के ऊपर एक जकड़ने के कारण चेहरा एक विशिष्ट प्रकार से संकुचित तथा चिन्तित दिखाई देता है (Risus Sardonicus)। थोड़ा सा स्पर्श, तीव्र प्रकाश या तीव्र आवाज से भी पेशियों में आकस्मिक संकोच होने लगते हैं। आक्षेप काल—½ से २ मिनट तक होता है। दो आक्षेपों के बीच के समय का अन्तर १० से ३० मिनट तक होता है। आक्षेप—रोगी की मृत्यु अथवा स्वस्थ होने तक होते रहते हैं। श्वासावरोध होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा:—(१) कुचला चूर्ण—१५ से २५ रत्ती।
(२) टिंचर—२६० बूँद।
(३) ऐक्सट्रैक्ट—१½ रत्ती।
(४) स्ट्रिकनीन हाइड्रोक्लोराइड—½ से १ रत्ती।

घातक काल:—५ मिनट से ४ घंटे तक।

सापेक्षिक निदान:—कुचला विष तथा टिटेनस या धनुर्वात के लक्षणों में अत्यधिक साधर्म्य रहता है अतः इनमें भेद बोधक लक्षण तथा चिह्न निम्न सारणी में दिये गये हैं:—

कुचला विष

(१) विष सेवन के बाद ही तुरन्त लक्षण व्यक्त होने लगते हैं।

(२) लक्षण अकस्मात् प्रारम्भ होते हैं।

(३) मुख और ग्रीवा की मांसपेशियों पर अन्त में प्रभाव होता है, अतः जबड़े अन्त में जकड़ते हैं और मुख नहीं खुलता। शरीर की सभी पेशियों में एक साथ संकोच प्रारंभ होते हैं और अन्त में कभी २ हनुस्तम्भ होता है।

(४) आक्षेपों के बीच के समय में पेशियाँ पूर्णरूप से ढीली हो जाती हैं।

(५) लक्षणों की उत्तरोत्तर वृद्धि बहुत तीव्रता के साथ होती है और रोगी की या तो शीघ्र ही ४ से ६ घंटों में मृत्यु हो जाती है या फिर रोगी स्वस्थ होने लगता है।

(६) वमन और दस्त किये हुये पदार्थों का रासायनिक परीक्षण करने पर स्ट्रिक्नीन या कुचला विष मालूम किया जा सकता है।

धनुर्वात

(१) प्रायः शरीर पर आघात होने का इतिहास पहले मिलता है, बाद में लक्षण व्यक्त होते हैं।

(२) लक्षण शनैः शनैः आरम्भ होते हैं।

(३) मुख और ग्रीवा की पेशियाँ प्रथम प्रभावित होती हैं, अतएव प्रारम्भ से ही जबड़े जकड़ जाते हैं। और मुख बन्द हो जाता है। शरीर की अन्य पेशियों में क्रमशः आक्षेप होने लगते हैं।

(४) आक्षेपों के बीच के समय में पेशियाँ पूर्णरूप से ढीली नहीं होतीं और थोड़ी बहुत संकुचितावस्था में रहती हैं।

(५) रोग का क्रम मन्द होता है। रोगी की मृत्यु २४ घंटों में भी कभी नहीं होती। अच्छा होने में या मृत्यु के लिये कुछ दिन लगते हैं।

(६) व्रण के स्राव का सूक्ष्मदर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षण करने पर या उसकी 'जीवाणु सम्बर्धन-क्रिया' (Culture) करने पर धनुर्वात के जीवाणु (Bacillus Tetanus) पाये जा सकते हैं।

चिकित्सा:—

(१) वामक औषधियाँ देकर वमन कराना चाहिये। एतदर्थ ऍपोमार्फीन हायड्रोक्लोर का इन्जेक्शन लगाया जा सकता है ($\frac{1}{10}$ से $\frac{1}{6}$) ग्रेन ऍपोमार्फीन हायड्रोक्लोर से वमन कराने से अनेक बार उस रोगी में आगे संकोच की अवस्था उत्पन्न नहीं होती और रोगी को शान्ति मिलती है।

(२) टैनिकाम्ल से आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। यदि आवश्यकता पड़े तो क्लोरोफार्म सुँघाकर प्रक्षालन किया जा सकता है।

(३) कुचले के विष को निष्क्रिय करने के लिये टैनिकाम्ल खिलाना चाहिये।

(४) आक्षेप को रोकने के लिये क्लोरोफार्म सुँघाना चाहिये। फिनोबार्बिटल सोडियम (Pheno-Barbital Sodium) या तत्सदृश अन्य बार्बिटोन (Sodium Anytal ग्रेन 4) औषधि का शिरा द्वारा प्रयोग करने से आक्षेप रोकने में मदद होती है। आक्षेप रोकने के लिये कोई निद्रालु औषधि, शांतता तथा अंधेरा कमरा यह परिस्थिति अत्यावश्यक है।

(५) निद्रा लाने के लिये पोटशियम ब्रोमाइड तथा क्लोरल हाइड्रेट देना चाहिये। क्लोरल हाइड्रेट ३० ग्रेन की मात्रा में गुदा द्वारा या ५ ग्रेन की मात्रा में अधस्त्वक् इन्जेक्शन से दे सकते हैं।

(६) आवश्यकतानुसार आक्सीजन-व्यवस्था और कृत्रिम श्वासक्रिया करनी चाहिये।

मृत्यूत्तररूप:—

पेशियाँ संकुचित होती हैं। त्वचा के नीचे रक्तसंचय पाया जाता है। श्वासावरोध के चिह्न मिलते हैं।



बारहवाँ अध्याय

हृद्विष ।

(Cardiac Poisons) ।

तम्बाकू (Tobacco) ।

परिचयः— इसके वृक्ष छोटे होते हैं। इनकी पत्तियों को तोड़कर सुखाकर संग्रह कर लिया जाता है । इसमें चूना, सुपारी, इलायची इत्यादि मिलाकर चबाते हैं अथवा इससे सिगार बनाये जाते हैं। कुछ देशों में उच्चकोटि के तम्बाकू की खेती होती है । साधारण तम्बाकू की पत्तियों में शीरा इत्यादि मिलाकर पीने की तम्बाकू बनाई जाती है । इन्हीं से सुरती, चुरट इत्यादि भी तैय्यार होते हैं। तम्बाकू सूँघने, पीने और खाने के काम में लायी जाती है ।

लक्षण :— उत्क्लेश होने लगता है । वमन होती है । कभी २ दस्त भी होते हैं । त्वचा शीतल और स्वेदयुक्त होती है । नाड़ी दुर्बल, मन्द और क्रमहीन हो जाती है । पुतलियाँ प्रारम्भ में संकुचित होती हैं किन्तु बाद में प्रसारित हो जाती हैं। चक्कर आते हैं और पेशिओं में दौर्बल्य बढ़ता जाता है । अंत में मूर्च्छा उत्पन्न हो जाती है। मृत्यु के पूर्व कभी २ प्रलाप और आक्षेप होते हैं। हृदयावसाद होकर रोगी की मृत्यु हो जाती है ।

जीर्ण विष-लक्षण ।

तम्बाकू का चिरकाल तक सेवन करने से, तम्बाकू के कारखानों में लगातार काम करने वालों को भी अग्निमान्द्य, हृद्-दौर्बल्य, भूख न लगना, कभी २ वमन तथा दस्त, क्रमशः रक्त की कमी, अनियमित नाड़ी तथा हाथ-पैरों में कंपन ये लक्षण उत्पन्न होते हैं । क्रमशः दृष्टिमान्द्य बढ़ता जाता है । (Amblyopia) ।

घातक मात्रा :— तम्बाकू की पत्तियों का चूर्ण—३० से ६० रत्ती ।
निकोटीन—१ से २ बूँद ।

घातक काल :— तम्बाकू—१ घंटा, निकोटीन—३ से ५ मिनट ।

चिकित्सा :—

(१) वामक औषधियों के द्वारा वमन कराना चाहिये ।

(२) टैनिकाम्ल से या पोटैशियम आयोडाइड के साथ आयोडीन का पानी में घोल बनाकर आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये।

(३) उत्तेजना के लिए स्ट्रिकनीन आदि के इन्जेक्शन लगाये जा सकते हैं।

(४) आवश्यकतानुसार कृत्रिम श्वासक्रिया और ओषजन-व्यवस्था करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप:—

आमाशय में तम्बाकू के कण पाये जा सकते हैं। अन्नप्रणाली, आमाशय और आंतों की श्लैष्मिक कलाओं में शोथ और रक्ताधिक्य हो सकता है।

अश्वमार या कनेर (Oleander)

परिचय:—

कनेर श्वेत तथा पीला दो प्रकार का होता है। दोनों प्रकार के कनेर बगीचों में सुन्दरता बढ़ाने की दृष्टि से लगाये जाते हैं। इनके पुष्प पूजा के लिए काम में लाये जाते हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सा में ओषधि के रूप में कनेर का प्रयोग होता है। श्वेत कनेर को अंग्रेजी में 'निरीयम ओडोरम' (Nerium Odorum) अथवा 'ह्वाइट ओलियेन्डर' (White Oleander) कहते हैं।

इसके मुख्य अवयव निम्न हैं:—

(१) नेरीओडोरिन (Neriodorin)।

(२) नेरीओडोरीन (Neriodorein)।

(३) कराबिन (Karabin)।

पीत कनेर को अंग्रेजी में 'थिवेटिआ निरिफोलिआ' (Thevetia nerifolia) अथवा 'यलो ओलियन्डर' (Yellow Oleander) कहते हैं।

इसका मुख्य अवयव 'थिवेटिन' (Thevetin) है।

श्वेत कनेर के लक्षण:—

निगलने में या बोलने में अशक्ति, उदरशूल तथा मुख में फेनयुक्त अत्यधिक लालास्राव इन लक्षणों के साथ वमन होती है। विरेचन भी होते हैं। नाड़ी दुर्बल हो जाती है। श्वास-क्रिया जल्दी-जल्दी होती है। नेत्रों के तारे विस्फारित होते हैं। पेशियों में आक्षेप आने लगते हैं। तंद्रा होने लगती है और मूर्च्छा होकर मृत्यु हो जाती है।

पीत कनेर के लक्षण :—

मुँह में दाह होने लगता है। जिह्वा में झनझनाहट मालूम होती है। वमन होती है। पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं। नाड़ी मन्द और दुर्बल होती है। श्वास-क्रिया जल्दी जल्दी होती है। हृदयावसाद होकर मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा :—

श्वेत करवीर की जड़—१३/४ तोले।

कराबिन—११/२ रत्ती।

श्वेत करवीर के बीज—३ बीजों का चूर्ण।

पीत करवीर की जड़—१३/४ तोले।

पीत करवीर के बीज—८ से १० तक।

घातक काल :—अनिश्चित। कराबिन—१२ से २४ घंटे तक।

चिकित्सा :—

(१) अशोषित विषोत्सर्ग के लिए वमन कराना तथा पोटॅशियम परमैंगनेट के घोल से आमाशय को प्रक्षालन करना चाहिये।

(२) प्रतिविष के रूप में टैनिकाम्ल का घोल पिलाना चाहिये। और अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप :—

श्वेत करवीर :—आमाशय, अन्त्र, यकृत्, प्लीहा, वृक्क और फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य पाया जा सकता है।

डिजोटॅलिस (Digitalis)।

परिचय :—

डिजीटॅलिस के वृक्ष भारतवर्ष में बहुत कम होते हैं, अधिकतर ये पश्चिम के देशों में उत्पन्न होते हैं। इनकी पत्तियों को तोड़कर संग्रह कर लिया जाता है और बहुत जल्दी ५५ से ६० डिगरी तक के तापक्रम में तीव्रता से सुखाकर एकत्र किया जाता है। ये पत्तियाँ १० से ३० सेन्टीमीटर तक लम्बी और ४ से १० सेन्टीमीटर तक चौड़ी होती हैं। पत्तियां गोलाकार होती हैं और इसके ऊपर की सतह धुधले हरे रंग की रोयेंदार होती है किन्तु नीचे की सतह किंचित् पीत वर्ण की होती है। इसमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती। इसका स्वाद बहुत कड़वा होता है।

विश्लेषण :—

इसके निम्नलिखित मुख्य अवयव हैं :—

(१) डिजीटोक्सिन (Digitoxin)।
(२) डिजीटॅलिन (Digitalin)।
(३) डिजीटोनिन (Digitonin)।
(४) डिगोक्सिन (Digoxin)।
(५) डिजीटॅलीन (Digitalein)।
(६) जिटीक्सिन (Gitoxin)।
(७) जिटेलिन (Gitalin)।

डिजीटेलिस के निम्नलिखित योग विशेष महत्त्व के हैं :—

(१) डिजीटेलिस चूर्ण	मात्रा $\frac{१}{४}$ से $\frac{३}{४}$ रत्ती।
(२) डिजीटेलिस फाण्ट	मात्रा ८० से ३०० बूँद।
(३) डिजीटेलिन चूर्ण	मात्रा $\frac{१}{१२०}$ से $\frac{१}{६०}$ रत्ती।
(४) स्फटिकीय डिजीटेलाइन	मात्रा $\frac{१}{४८०}$ से $\frac{१}{१२०}$ रत्ती।
(५) डिजीटाक्सिन	मात्रा $\frac{१}{१२००}$ से $\frac{१}{१२०}$ रत्ती।
(६) डिजालेन	मात्रा ५ से १५ बूँद।
(७) डिजीटेलिस कम्पाउन्ड वटिका	मात्रा १ से २ गोली।
(८) डिगोक्सिन	मात्रा $\frac{१}{१२०}$ से $\frac{१}{८०}$ रत्ती।
(९) टिञ्चर डिजीटेलिस	मात्रा ५ से १५ बूँद।

लक्षण :—

डिजिटेलिस के विषैले लक्षण प्रारम्भ में पाचनसंस्थान पर तथा बाद में हृत्पेशी पर दिखाई देते हैं। उत्क्लेश होने लगता है। कण्ठ शुष्क होकर तीव्र प्यास लगती है। वमन होती है। विरेचन भी होता है। साथ २ उदर में शूल होता है। चक्कर आते हैं और हृत्पूर्व भाग में प्रपीडनवत् पीड़ा होती है। शिर में भी शूल होता है। पुतलियाँ प्रसारित हो जाती हैं। नाडी मन्द हो जाती है और उसकी गति प्रति मिनट २५ तक हो सकती है, नाडी की गति प्रथम बढ़ती है परन्तु बाद में नाड़ी मन्द तथा अनियमित होती है। श्वासकृच्छ्र होता है और श्वास-प्रश्वास की संख्या भी अत्यधिक कम हो जाती है। दृष्टिमांद्य तथा

अन्यदृष्टि-अर्थग्रहण में विकृति होती है। तन्द्रा प्रारम्भ होकर बाद में मूर्च्छा उत्पन्न हो जाती है। त्वचा शीतल और स्वेदयुक्त होती है। क्वचित् मूत्राघात हो जाता है और मृत्यु के पूर्व कभी २ प्रलाप और आक्षेप भी होते हैं। हृत्कार्यावरोध होकर मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्राः—

(१) डिजीटॅलिस चूर्ण	२½ माशे
(२) डिजीटॅलिस क्वाथ	१ छटांक
(३) टिंचर डिजीटॅलिस	२ से ३ तोले
(४) डिजीटॅलिन चूर्ण	½ से ¾ रत्ती
(५) स्फटिकीय डिजीटॅलिस	⅛ से ¼ रत्ती
(६) डिजीटॉक्सिन	1/12 से ⅛ रत्ती

घातक कालः—२४ घण्टे।

चिकित्साः—

अशोषित विष के उत्सर्ग के लिए वमनकारी औषधि का प्रयोग या आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। बाद में टॅनिक ॲसिड युक्त क्वाथ से विरेचन कराना उचित है। चाय या कॉफी पर्याप्त मात्रा में देना चाहिये। रोगी को लिटा कर रखना तथा अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये। वत्सनाभ (Aconite) की क्रिया डिजिटॅलिस के प्रतिविष के रूप में होती है परन्तु यह स्वयं नाडी—केन्द्रों पर विषैला प्रभाव करता है। अतः वत्सनाभ का प्रतिविष के रूप में प्रयोग विशेष सावधानी से करना चाहिए।

वत्सनाभ (Aconite)।

वत्सनाभ के वृक्ष की जड़ को संग्रह कर सुखाकर काम में लाते हैं। इसकी जड़ ४ से १० सेन्टीमीटर तक लम्बी होती है। इसका एक सिरा मोटा होता है और उसकी चौड़ाई १ से ३ सेण्टीमीटर तक होती है। इसका रंग गहरा भूरा होता है। इसके अन्दर एक लसदार पदार्थ होता है। वत्सनाभ में एक विशेष प्रकार की थोड़ी गन्ध होती है। इसमें किञ्चित् स्वाद भी होता है और जिह्वा में झनझनाहट और अवसुन्नता उत्पन्न कर देता है।

विश्लेषण :—

इसके निम्नलिखित मुख्य अवयव हैं :—

(१) ॲकोनाइटीन (Aconitine)।

(२) ऍकोनाइन (Aconine)
(३) पिक्रेकोनाइटीन (Picraconitine)
(४) अकोनाइटिक एसिड (Aconitic acid)
(५) श्वेत सार (Starch)

वत्सनाभ के निम्नलिखित योग विशेष महत्त्व के हैं:—

(१) टिंचर ऍकोनाइट — मात्रा २ से ५ बूंद।
(२) लिनीमेन्ट ऍकोनाइट।
(३) लिनीमेन्ट ए० बी० सी०।

लक्षण:—

मुख, ओष्ठ, जिह्वा, गला इत्यादि सम्पर्क में आने वाले सभी भागों में झनझनाहट, दाह और शून्यता उत्पन्न हो जाती है।

अत्यधिक लालास्राव होता है। जी मचलाता है। वमन होने लगती है। उदर में शूल होता है। दस्त प्रायः नहीं होते, त्वचा शीतल और स्वेदयुक्त होती है। पूरे शरीर में झनझनाहट होकर रोगी बेचैन होता है। नाड़ी दुर्बल, मन्द और क्रमहीन हो जाती है। पुतलियाँ कभी संकुचित हो जाती हैं किन्तु कभी प्रसारित भी होती हैं। श्वास-क्रिया कठिनता से होती है। श्वास-प्रश्वास की गति मन्द होती है। पेशियों में अत्यधिक दुर्बलता आ जाती है। त्वचा में कंपकपी झनझनाहट और अवसन्नता उत्पन्न हो जाती है। रोगी बहुत बेचैन सा मालूम होता है और उसका चेहरा उतरा हुआ दिखलाई पड़ता है। कभी-कभी आक्षेप होते हैं। रोगी की मानसिक स्थिति मृत्यु के समय तक ठीक रहती है और उसमें थोड़ी बहुत चेतनता बनी रहती है। श्वासावरोध होकर या कभी २ हृदयावसाद से रोगी की मृत्यु हो जाती है।

घातक मात्रा:—

टिंचर ऍकोनाइट — ६० बूंद।
वत्सनाभ की जड़ का चूर्ण — ४ माशे।

घातक काल:—१ से ४ घण्टे तक।

चिकित्सा:—

(१) आमाशय का प्रक्षालन करना चाहिये। एतदर्थ टैनिकाम्ल के १ प्रतिशत का घोल अथवा पाशविक चारकोल (Animal Charcoal) का

जलीय विलयन काम में लाया जाता है। पोटॅशियम आयोडाइड के साथ आयोडीन का पानी में घोल बनाकर उससे भी आमाशय-प्रक्षालन कर सकते हैं।

(२) शारीरिक ऊष्मा के रक्षार्थ अभ्यङ्ग अथवा सेंक करना चाहिए।

(३) आवश्यकतानुसार कृत्रिम श्वास-क्रिया अथवा ओषजन व्यवस्था करनी चाहिए।

(४) अट्रोपीन का इन्जेकशन $\frac{1}{20}$ रत्ती की मात्रा में देना चाहिये। यदि आवश्यकता पड़े तो कुछ समय के पश्चात् पुनः इन्जेकशन लगाया जा सकता है।

(५) उत्तेजक ओषधियाँ जैसे शराब, डिजीटॅलिस, स्ट्रिकनीन इत्यादि देना चाहिये। योग्य अवस्था में हापरटॉनिक सलाइन का सिराद्वारा प्रयोग करना चाहिए।

मृत्यूत्तर रूप:—

आमाशय, यकृत्, प्लीहा, वृक्क, फुफ्फुस और मस्तिष्क की श्लैष्मिक कलाओं में रक्ताधिक्य और शोथ पाया जा सकता है।

हाइड्रोसियानिकाम्ल (Hydrocyanic Acid)।

परिचय:—

एसिड हाइड्रोसियानिक डिल एक वर्णरहित तरल पदार्थ है। यह उड़नशील होता है और इसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है। इसका विशिष्ट घनत्व ०·९९७ है। इसमें २ प्रतिशत (मात्रा में) हाइड्रोजन सायनाइड रहता है।

पोटॅशियम सायनाइड वर्णरहित अथवा किंचित् श्वेत वर्ण का स्फटिकीय पदार्थ होता है। चित्र बनाने (फोटोग्राफी) और चांदी वा सोना चढ़ाने के विलयनों में डालकर अधिक प्रयोग किया जाता है। भारतवर्ष के नगरों और शहरों में शिक्षित युवक पोटॅशियम सायनाइड खाकर आत्महत्या करते हुये अधिक देखे जाते हैं।

एसिड हाइड्रोसियानिक डिल एलोपैथिक चिकित्सा में ओषधि के रूप में २ से ५ बूँद तक की मात्रा में प्रयोग की जाती है।

लक्षण:—

यह सद्यः प्राणहर विष है। मुंह और आमाशय में पहुँचते-पहुँचते विषैले लक्षण प्रारम्भ होते हैं। विषाक्त होने के लिये ७-८ मिनट से अधिक कभी भी

नहीं लगता। रोगी को चक्कर आने लगते हैं और पेशियों में अत्यधिक शिथिलता और दौर्बल्य के कारण रोगी चलने में असमर्थ रहता है और चलने का प्रयत्न करने पर लड़खड़ाता है। नेत्र खुले सतेज रहते हैं। तारे विस्फारित रहते हैं परन्तु उनका प्रकाश-परावर्तन जाता रहता है। रोगी धीरे २ मूर्च्छित होता है और श्वास-प्रश्वास मन्द तथा प्रश्वास की अवस्था प्रदीर्घ होने लगती है। हनुस्तम्भ होता है। नाडी तीव्रगतियुक्त दुर्बल या उसको प्रतीत करना कठिन होता है। त्वचा पर शीतल स्वेद तथा चेहरे पर नीलिमा होकर मल-मूत्र का अनैच्छिक उत्सर्ग होने लगता है। शारीरिक धातुओं में ऑक्सीजन की कमी होकर मृत्यु होती है। ऐसा माना जाता है कि इस एसिड के साथ हिमोग्लोबिन के मिलने से सियानमेट्हिमोग्लोबीन (Cyanmet haemoglobin) नामक पदार्थ बनता है जिसके साथ ऑक्सीजन नहीं मिल पाता इससे शारीरिक सेलोंमें ऑक्सीजन की कमी होती है।

विष की अत्यल्प मात्रा शरीर में पहुँचने से रोगी को मुख तथा गले में कटु स्वाद के साथ २ जलन होने लगती है और गला रुंधता सा प्रतीत होता है। चक्कर आते हैं, जी मचलाता है। शिर और हृत्पूर्व भाग में शूल होने लगता है। विचार करने में तथा चलने-फिरने में अशक्ति होती है। और धीरे २ तन्द्रा होकर मूर्च्छा में परिणत होती है, मुख से फेन निकलता है। चेहरा फूलता सा रहता है, नेत्र विस्फारित और तारे भी विस्फारित तथा प्रकाश-परावर्तन रहित होते हैं। नाखून नीले होते हैं। मृत्यु के पूर्व आक्षेप और मल-मूत्र का अनैच्छिक उत्सर्ग होने लगता है। कभी २ वमन होती है और वमन के बाद दशा कुछ सुधरने लगती है।

पोटॅशियम सायनाइड की क्रिया दाहक (Corrosive) क्षार के समान होती है।

फोटोग्राफर्स और चाँदी-सोने का काम करने वाले तथा हायड्रोसायनिक एसिड या पोटॅशियम सायनाइड के साथ लगातार काम करने वालों में 'जीर्णविष' के लक्षण होते हैं। शिरःशूल, चक्कर आना, अग्निमान्द्य, हृल्लास, विबन्ध, मुख से दुर्गन्ध, श्वास-कृच्छ्र ये सामान्य लक्षण हैं। शरीर में क्रमशः रक्त की कमी होती है।

घातक मात्रा:—

एसिड हाइड्रोसियानिक डिल	३० बूँद।
पोटाशियम सायनाइड	१½ से २½ रत्ती तक।
एनहाइड्रस प्रूसिक एसिड	¼ से ½ रत्ती तक।

घातक काल:—२ से १० मिनट तक।

चिकित्सा:—अधिक मात्रा में विष-सेवन किये जाने पर चिकित्सा प्रायः असम्भव होती है, किन्तु थोड़ी मात्रा में सेवन करने पर जब विष-प्रभाव मन्द होता है, तब निम्नलिखित चिकित्सा करनी चाहियेः—

सर्व प्रथम वामक औषधियों के द्वारा वमन कराना चाहिये। एतदर्थ एपोमार्फीन का इन्जेक्शन, ज़िंक सल्फेट इत्यादि प्रयोग किये जा सकते हैं। साथ २ 'हाइड्रोजन परआक्साइड' (Hydrogen Peroxide) अथवा पोटॅशियम परमैंगनेट के विलयन (Dilute Solution) से आमाशय का प्रक्षालन् करना चाहिये। पोटॅशियम सायनाइड से विषाक्त होने पर प्रक्षालन के द्रव में ह्विनिगर डालने से लाभ होता है।

उत्तेजना के लिये ॲट्रोपीन सल्फेट (Atropine Sulphate) अथवा स्ट्रिक्नीन इत्यादि के इञ्जेक्शन दिये जाने चाहिये।

श्वासावरोध की अवस्था में कृत्रिम श्वास–क्रिया करनी चाहिये। और ऑक्सीजन सुंघाना चाहिये। अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप:—

चिकित्सा करने के लिये समय मिलने पर निम्न रासायनिक प्रतिविष पिलाना चाहिये। इससे प्रूशियन ब्लू (Prussian Blue) नामक निष्क्रिय योग बनता है।

रासायनिक प्रतिविष:—

फेरस सल्फेट का २३ प्रतिशत का पानी में घोल	१ औंस।
कॉस्टिक पोटॅश का ५ प्रतिशत पानी में घोल	१ औंस।
मॅग्नेशियम ऑक्साइड का चूर्ण	३० ग्रेन।

सब एक में मिलाकर पिलाना चाहिये।

सोडियम थायोसल्फेट का १० प्रतिशत घोल लेकर उसमें से १० सी० सी० की मात्रा में सिरा द्वारा देने से इनसे सोडियम सल्फोसायनेट (Sulphocyanate of Sodium) नामक लवण बनता है जो शरीर के लिये विषैला नहीं होता। ग्लूकोज तथा इन्सुलिन का सिरा द्वारा प्रयोग करने से लाभ हो सकता है।

पोटॅशियम सायनाइड से विषाक्त होने पर शुद्ध जल में १ प्रतिशत प्रमाण में मिथिलिन ब्लू (Methylene Blue) का घोल बनाकर उसमें से ५० सी० सी० की मात्रा में सिरा द्वारा इन्जेक्शन देना चाहिये। रक्त के हिमोग्लोबीन के साथ इसके मिलने से सियानमेट हीमोग्लोबीन बनता है जो रक्तस्थित स्वतन्त्र सायनाइड के साथ मिलकर उसको निष्क्रिय बनाता है। आमाशय-प्रक्षालन के पानी में सोडाबायकार्ब मिलाकर आमाशय प्रक्षालन करना चाहिये।

मृत्यूत्तर रूप:—

(क) बाह्य :—

त्वचा नील वर्ण की होगी। नाखून नीले होंगे। जबड़े बन्द होंगे। आँखें खुली होंगी और बाहर की ओर को निकली हुई होंगी। पुतलियाँ प्रसारित होती हैं। मुँह पर फेन पाया जा सकता है।

(ख) आभ्यन्तरिक :—

शवच्छेदन करते समय विष की गन्ध आती है। सिरायें फूली हुई होती हैं और उनमें गहरा लाल या चमकदार लाल खून होता है। आमाशय, अन्त्र, अन्नप्रणाली और मुख की श्लैष्मिक कलायें क्षतयुक्त होती हैं और उनमें रक्ताधिक्य होता है। कभी २ कलाओं के नीचे रक्तस्राव भी पाया जाता है।

श्वास-नलिकाओं में रक्तमिश्रित फेन पाया जाता है। यकृत्, प्लीहा, वृक्क, फुफ्फुस, मस्तिष्क इत्यादि समस्त आभ्यन्तरिक अङ्गों में रक्ताधिक्य होता है।



तेरहवाँ अध्याय

श्वास-प्रश्वास-प्रभावक विष ।

(Asphyxiants)

कार्बन डाइ आक्साइड ।

(Carbon dioxide) ।

परिचय :—

यह वर्णरहित और गन्धरहित वायव्य पदार्थ है । इसका स्वाद किंचित् मधुर होता है । वायु की अपेक्षा यह डेढ़ गुनी भारी होती है । श्वास-प्रश्वास के समय जो वायु फुफ्फुसों से बाहर निकलती है, उसमें इस गैस का कुछ अंश रहता है । लकड़ी, कागज, कपड़ा वा अन्य ऐन्द्रिक पदार्थों के जलने और सड़ने से यह गैस अधिक परिमाण में उत्पन्न होती है । किण्वीकरण (Fermentation) के समय भी यह गैस बनती है । आकस्मिक दुर्घटनाओं से जैसे किसी मिल, फैक्टरी, मकान, गांव या जङ्गल में आग लगने से कार्बन डाइ आक्साइड के गैसीय वातावरण में रहने वाले व्यक्तियों की मृत्यु हो जाती है ।

लक्षण :—

शिरःशूल होने लगता है । शिर में गुरुता उत्पन्न हो जाती है । चक्कर आते हैं । कण्ठ और शंखदेश की सिराएं फूल जाती हैं । कर्णनाद होता है । पेशियों में दुर्वलता आ जाती है । तन्द्रा होकर धीरे-धीरे मूर्च्छा में परिणत होती है । श्वास-क्रिया जल्दी २ और खड़खड़ाहट के साथ होती है । आक्षेप होने लगते हैं और तदनन्तर रोगी की श्वासावरोध के कारण या मस्तिष्कगत रक्ताधिक्य के कारण प्रायः मृत्यु होती है ।

चिकित्सा:—

स्थान परिवर्तन—रोगी को खुले स्थान में और शुद्ध वायु में रखना चाहिये । कृत्रिम श्वास-क्रिया के साथ २ ऑक्सीसन-व्यवस्था करनी चाहिये । आवश्यकता पड़ने पर विद्युत्-स्पर्श, मालिश और रक्तमोक्षण भी करना चाहिये ।

पुराने कुंए या अनाज रखने के गहरे स्थानों में शुद्ध हवा न पहुँचने से और

कार्बन डाय आक्साइड हवा से भारी होने से इन स्थानों के तल के पास एकत्रित रहता है। ऐसे स्थानों में किसी व्यक्ति के विषाक्त होजाने से इन स्थानों में एक पाइप को तल तक पहुंचाकर उससे तल में आक्सीजन या शुद्ध हवा पहुंचाई जाती है इससे कार्बन डाय आक्साइड ऊपर आने के साथ २ विषाक्त व्यक्ति को शुद्ध हवा मिलती है और उसकी मदद करने वाले व्यक्तियों को भी विषैले गैस से हानि नहीं होती है।

मृत्यूत्तर रूप:—

(क) बाह्य:—

मुखाकृति पीत अथवा नील वर्ण की होती है। पुतलियाँ प्रसारित होती हैं।

(ख) आभ्यन्तरिक:—

हृदय का दाहिना भाग गहरे पतले रक्त से भरा होता है और वाम भाग रिक्त होता है। मस्तिष्क और फुफ्फुसों की श्लैष्मिक कलाओं में रक्ताधिक्य होता है।

कार्बन मॉनोक्साइड।

(Carbon monoxide)।

परिचय :—

यह एक वायव्य पदार्थ है जो कि अधिकतर कोयले के जलने से उत्पन्न होता है। कार्बन डाइ आक्साइड की अपेक्षा यह अधिक तीव्र भयङ्कर होती है। और जलने से जो धुआँ उत्पन्न होता है, उसमें यह अधिक मात्रा में रहती है और इसी कारण से किसी धुयें से भरे हुए बन्द कमरे में कुछ देर तक रहने से व्यक्ति की बहुत जल्दी मृत्यु हो जाती है। क्लोरिन के साथ मिलने से कार्बोनिल क्लोराइड या फासजेन (Phosgen) नामक विषैला गैस बनता है। रक्त के रंजक पदार्थ के साथ मिलने से इससे कार्बोक्सिहिमोग्लोबीन (Carboxy-haemoglobin) बनता है जो शरीर में अलग नहीं होता इससे रक्त के रंजक पदार्थ के साथ ऑक्सीजन मिलने नहीं पाता। कार्बन मॉनोक्साइड, ऑक्सीजन की अपेक्षा लगभग २०० गुना अधिक रक्त के रंजक पदार्थ के साथ मिलने की क्षमता रखता है इससे कार्बन मॉनोक्साइड की उपस्थिति में ऑक्सीजन रक्त के रंजक पदार्थ के साथ नहीं मिल पाता।

लक्षण:—

अकस्मात् अत्यधिक गॅस सूंघने से रोगी तत्काल संज्ञाहीन होकर मूर्च्छित होता है और शुद्ध हवा में जाने पर भी वह आठ दिन तक भी मूर्च्छित रह सकता है। फुफ्फुस-शोफ या न्युमोनिया से मृत्यु होती है।

थोडी मात्रा में गॅस सूंघने से चक्कर आना, शिरःशूल, हृल्लास तथा क्वचित् वमन होते हैं। क्रमशः पेशिओं में शैथिल्य तथा तन्द्रा बढ़ती जाती है। नेत्रों के तारे विस्फारित रहते हैं। मृत्यु के पूर्व मूर्च्छा और क्वचित् आक्षेप भी होते हैं।

इस विष से अच्छा होने पर भी मस्तिष्क के कार्य में स्थायी विकृति उत्पन्न होती है और सुषुम्ना और प्रान्तीय नाडियों में भी अनेक विकृतियाँ दिखाई देती हैं।

मोटरों के कारखानों में, जहाँ गॅस बनते हैं ऐसे मकानों में या जहाँ रसोई बनती है या कोई पदार्थ जलाया जाता है परन्तु व्हेन्टिलेशन का योग्य प्रबन्ध नहीं है ऐसे जगहों पर चिरकाल तक काम करने से जीर्ण विष के लक्षण होते हैं। पाचन संस्थान के लक्षण जैसे—अरुचि, हृल्लास, विबन्ध इत्यादि या नाडी-संस्थान के लक्षण जैसे शिरःशूल, चक्कर आना, स्मृतिनाश, मानसिक कार्य करने में अशक्ति, प्रांतीय नाडीशोथ ये लक्षण होते हैं। सामान्यतया पेशिओं में बढ़ती हुई कृशता तथा शरीर में रक्त की कमी ये लक्षण भी होते हैं।

चिकित्सा—श्वास-केन्द्र को उत्तेजित करने के लिये तथा ऑक्सीजन को शरीर में पहुंचाने के लिये (१) रोगी को शुद्ध हवा में ले जा कर कृत्रिम श्वास-क्रिया प्रारम्भ करना (२) ५ प्रतिशत कॉर्बन डाय ऑक्साइड के साथ ऑक्सीजन को सुंघाना तथा (३) ॲड्रीनलिन का $\frac{1}{2}$ से १ सी. सी. की मात्रा में अधस्त्वक् और २५ प्रतिशत कोरॅमिन के द्रव को ५ सी. सी. की मात्रा में सिरा द्वारा इन्जेक्शन देना चाहिये। इनको लक्षणों की तीव्रता के अनुसार $\frac{1}{2}$ से १ घण्टे में पुनः देना चाहिये। अन्य लाक्षणिक चिकित्सा करनी चाहिये।

श्वास-प्रश्वास ठीक होने पर भी रोगी को पूर्ण विश्राम में रख कर गरम चाय या कॉफी देना चाहिये और मानसिक स्थायी विकृतियों पर ध्यान देना उचित है।

